# मेरी प्रिय कहानियां

आचार्य चतुरसेन

आचार्य जी की अब तक लिखी
सैंकड़ों कहानियों में से उनकी अपनी
पसन्द की विभिन्न विषयों की तीस उत्कृष्ट
कहानियां—प्रत्येक कहानी पर वक्तव्य सहित

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

| | | |
|---|---|---|
| मूल्य | : | छः रुपये (६·००) |
| प्रथम संस्करण | : | फरवरी, १९५९ |
| प्रकाशक | : | राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली |
| मुद्रक | : | इंडिया प्रिंटर्ज़, दिल्ली |

# प्रकाशक की ओर से

कहानी-लेखक जब दस-पन्द्रह कहानियां लिख लेता है तो वे पुस्तकाकार में प्रकाशित हो जाती हैं। इस तरह के कितने ही कहानी-संग्रह कहानी-लेखकों के मिल सकते हैं। इन संग्रहों में कला की दृष्टि से सभी स्तरों की कहानियों का समावेश होता है। किन्तु लेखक की कला पूर्ण परिपक्व हो चुकी हो और सैकड़ों कहानियां वह लिख चुका हो, उनमें से वह अपनी पसन्द की कुछ कहानियां छांट दे, उनकी पृष्ठभूमि आदि पर स्वयं प्रकाश डाले, तो ऐसा संकलन पाठक और आलोचक दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण होगा।

प्रस्तुत संकलन 'मेरी प्रिय कहानियां' में आचार्य चतुरसेन की अपनी पसन्द की तीस कहानियां हैं। आचार्य जी ने स्वयं विषयानुसार इनका विभाजन किया है और इनके सम्बन्ध में टिप्पणियां भी लिखी हैं। हमारे विचार में इस प्रकार के संकलन की उपादेयता निर्विवाद है।

इसी प्रकार अन्य श्रेष्ठ कहानी-लेखकों की प्रिय कहानियां भी प्रकाशित की जा रही हैं। हमें पूर्ण विश्वास है, इस नए आयोजन का साहित्य-जगत् में अभिनन्दन होगा।

# कहानी-क्रम

# बौद्ध कहानियां

- अम्बपालिका
- प्रबुद्ध
- भिक्षुराज

# अम्बपालिका

अम्बपालिका कहानी आचार्य ने सन् १९२८ में लिखी थी। हिन्दी में अम्बपालिका से सम्बन्धित यह सर्वप्रथम ही कहानी है। इसके बाद अम्बपालिका को लेकर अनेक कहानियां और उपन्यास भी लिखे गए तथा आचार्य ने आगे इसी आधार पर अपनी अमर रचना 'वैशाली की नगरवधू' लिखी। जिस समय यह कहानी लिखी गई थी उस समय लेखक की दृष्टि में कथा का आधार बहुत अस्पष्ट था। उसका बाद में जो परिष्कार हुआ वह तो नगरवधू में व्यक्त है। परन्तु यह कहानी बिना संशोधन किए वैसी की वैसी ही दी जा रही है। इसमें लेखक के भीतर का उदीयमान साहित्यकार झांक रहा है।

मुज़फ्फरपुर से पश्चिम ओर जो पक्की सड़क जाती है, उसपर मुज़फ्फरपुर से लगभग १८-२० मील पर 'बसौढ़' नामक एक बिलकुल छोटा सा गांव है, जिसमें ३०-४० घर भूमिहार ब्राह्मणों के और कुछ घर क्षत्रियों के बच रहे हैं। इस गांव के चारों ओर कोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियां ढेर की ढेर मिलती हैं, जो इस बात की स्मृति दिलाती हैं कि यहां कभी कोई बड़ा भारी समृद्धिशाली नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में ढाई हज़ार वर्ष पूर्व यहां एक विशाल नगर बसा था, जिसका नाम वैशाली था, और जो प्रबल प्रतापी लिच्छविगण तन्त्र के शासन में था।

वैशाली लिच्छविगण तन्त्र की एक प्रधान नगरी और रियासत थी। नगर व्यापारियों, जौहरियों, शिलपकारों और भिन्न-भिन्न प्रकार के देश-विदेश के यात्रियों से परिपूर्ण था। 'श्रेष्ठि चत्वर' नगर का प्रधान बाज़ार था, जहां जौहरियों और बड़े-बड़े व्यापारियों की कोठियां थीं और जिनकी व्यापारिक शाखाएं समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थीं। दुकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए, पान कुचरते हंस-हंसकर ग्राहकों से बातें करते। जौहरी, पन्ना, लाल, मूंगा, मोती, पुखराज, हीरा और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों को सान चढ़ाते, स्वर्ण-आभरणों में रंगीन रत्न जड़ते और मोती गूंथते थे। गन्धी लोग केसर के थैले हिलाते थे। चन्दन के

तेलों में भिन्न-भिन्न सुगन्ध मिलाकर इत्र बनाए जाते और नागरिक उनका खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दुकानों पर बगदाद और फ़ारस के व्यापारी लम्बे-लम्बे लबादे पहने, भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलियां संकरी और तंग थीं और उनमें गगन-चुम्बी अट्टालिकाएं खड़ी थीं, जिनके अन्धेरे तहखानों में इन धन-कुबरों का बड़ा भारी कोष और द्रव्य रखा रहता था।

सन्ध्या-समय सुन्दर श्वेत बैलों के रथों पर, जिनपर बढ़िया सुनहरा काम हुआ रहता था, नागरिक सैर करने राजपथ पर निकलते थे। इधर-उधर हाथी झूमते हुए बढ़ा करते थे और उनपर उनके अधिपति रत्नाभरणों से सज्जित अपने दासों तथा शरीर-रक्षकों से घिरे हुए चला करते थे।

अभी दिन निकलने में देरी थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड़ रही थी, पर मार्ग में अंधेरा था। राजमहल के तोरण पर अभी तक प्रकाश जल रहा था। चारों ओर प्रतिहार पड़े सो रहे थे। उनमें से केवल एक भाला टेककर खड़ा नींद में झूम रहा था। तोरण के इधर-उधर कई कुत्ते पड़े सो रहे थे।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजवर्गी इधर से उधर आने-जाने लगे। प्रतिहाररक्षी सेना का एक नवीन दल तोरण पर आ पहुंचा। उसमें से एक दण्डधर ने आगे बढ़कर भाले के सहारे खड़े-खड़े ऊंघते मनुष्य को पुकारकर कहा—महानामन ! सावधान होओ और घर जाकर विश्राम करो। महानामन ने सजग होकर अपने दीर्घ काय का और भी विस्तार करके एक ओर की अंग-ड़ाई ली और यह कहकर कि—तुम्हारा कल्याण हो, वह अपना भाला धरती पर टेकता हुआ तीसरे तोरण की ओर बढ़ गया। पश्चिम की ओर पुराना प्रासाद और राजमहल का उपवन था, जिसकी देख-रेख महानामन के सुपुर्द थी। यहीं उसकी छोटी सी कुटिया थी, जहां वह अपनी प्रौढ़ा पत्नी के साथ १७ वर्ष से एकरस—आंधी-पानी, सर्दी-गर्मी में रहता था।

वह नींद में झूमता हुआ ऊंघ रहा था। अब भी प्रभात का प्रकाश धुंधला था। उसने अपनी कुटी के पास एक कदली वृक्ष के नीचे, आम्रकुंज में एक श्वेत वस्तु पड़ी रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ

वस्त्रों में लिपटा अपना अंगूठा चूस रहा है। आश्चर्य-चकित होकर महानामन ने शिशु को उठा लिया। देखा, कन्या है। उसने अपनी स्त्री को पुकारकर उसे वह कन्या देकर कहा—देखो, आज इस प्रकार अपने जीवन की पुरानी साध मिटी।

वह कन्या—उस दरिद्र लिच्छवि महानामन के उस दरिद्रावास में शशिकला की भांति बढ़ने लगी। उसका नाम रक्खा गया अम्बपालिका।

वैशाली से उत्तर-पश्चिम २५ कोस पर, एक छोटे से गांव में, एक किनारे पर एक साधारण घर था। उसके द्वार पर एक वृद्ध प्रातःकाल बैठा दातुन कर रहा था। पूर्व के द्वार पर से पैर की आहट सुनकर उसने पीछे को देखा, एक चम्पक पुष्प की कली के समान एकादशवर्षीया, अति सुन्दरी बालिका, जिसके घुंघराले बाल लहलहा रहे थे, दौड़ती-दौड़ती बाहर आई और वृद्ध को देख उससे लिपटने को लपकी, पर पैर फिसलने से गिर गई। वह गिरकर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक, दौड़कर बालिका को उठाया, उसकी धूल झाड़ी; बालिका ने रोना रोककर कहा—बाबा, घर में आटा बिलकुल नहीं है, हम लोग क्या खाएंगे? वृद्ध ने उसे गोद में उठाते हुए कहा—कुछ चिन्ता नहीं, मैं अभी गेहूं पिसवाने की व्यवस्था करता हूं। बालिका ने कहा—गेहूं का भी तो एक दाना नहीं है। वृद्ध क्षण भर अवाक् रहा। उसने कहा—तब ठहर, मैं अभी शिकार मार लाता हूं। बालिका ने रोककर कहा—नहीं नहीं, मैं पक्षी का मांस नहीं खाऊंगी।

वृद्ध महानामन लिच्छवि था और कन्या थी अम्बपालिका। वृद्ध की पत्नी का स्वर्गवास हुए ८ साल व्यतीत हो गए थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख, महानामन ने राज-सेवा छोड़कर अपने ग्राम में आकर बालिका की सेवा-शुश्रूषा अबाधरूप से करने का निश्चय कर लिया था। वह गत आठ वर्षों से इसी गांव में रहता था। अम्बपालिका को उसने इस तरह पाला जैसे पक्षी चुग्गा दे-देकर अपने शिशु पक्षी को पालता है। परन्तु खेद है, धीरे-धीरे उसकी छोटी सी कमाई की क्षुद्र पूंजी, यत्न से खर्च करने पर भी समाप्त हो ही गई। और फिर धीरे-धीरे पत्नी के स्मृति-रूप दो-चार क्षुद्र आभूषण भी उदर-गुहा में पहुंच चुके। अब आज क्या किया जाय? अब तो आटा भी नहीं,

एक दाना गेहूं भी नहीं। वृद्ध की प्राणों की पुतली इस प्रश्न पर चिन्तित हो रही है। यह और भी कष्ट का प्रश्न था। पर वृद्ध ने हंसकर कहा—अच्छा, अच्छा, मैं अभी गेहूं लिए आता हूं। इतना कहकर वृद्ध ने बालिका के तड़ातड़ ३-४ चुम्बन लिए और उसे गोद से उतारते-उतारते दो बूंद आंसू गिरा दिए। बालिका भीतर गई और वृद्ध चिन्तामग्न बैठ गया। अन्ततः उसने एक बार फिर महाराज की सेवा में उपस्थित होकर पुरानी नौकरी की याचना करने का निश्चय किया। उसके बाहु का पौरुष तो थक चुका था। परन्तु क्या किया जाय, कन्या का विचार सर्वोपरि था। फिर भी वृद्ध के अति गम्भीर होने का यही मात्र कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा में बल था : बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी : बालिका का अप्रतिभ सौन्दर्य। सहस्राधिक बालिकाएं भी क्या उस पारिजात-कुसुम-तुल्य कुन्द-कलिका के समान थीं? किस पुष्प में उतनी गन्ध, कोमलता और सौन्दर्य था? उसे भय था कि राज-नियमानुसार वह विवाह से वंचित करके कहीं नगर-वेश्या न बना दी जाय; क्योंकि लिच्छ-विगण तन्त्र में यह कानून था कि राज्य की जो कन्या अत्यधिक सुन्दरी होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न होने दिया जाकर नागरिकों के लिए सुरक्षित रक्खा जाया करता था। वास्तव में इसी भय से महानामन राजधानी छोड़कर भागा था, जिससे किसीकी दृष्टि उस बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था। महानामन ने राजधानी में एक बार जाने का निश्चय किया!

वैशाली की ओर जाने वाली सड़क पर वर्षा के कारण बड़ी कीचड़ हो रही थी। कहीं-कहीं तो नालों का पानी कच्ची सड़क को तोड़कर सड़क पर नदी की तरह बह रहा था। अभी वर्षा हो चुकी थी। वृद्ध और उसकी पुत्री दोनों भीग गए थे, पर धीरे-धीरे बढ़े चले जा रहे थे। हवा बन्द थी, गर्मी बढ़ गई थी और दूरस्थ पर्वतों की चोटियों में अस्त होते हुए सूर्य को देख-देखकर वृद्ध डर रहा था। निकट किसी बस्ती के चिह्न न थे। यदि यहीं चौपट में अंधेरा हो गया तो कहां रात कटेगी, बच्ची खाएगी क्या, यही वृद्ध के भय का कारण था। वह लाठी टेकता-टेकता धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह स्वयं बहुत थक गया था और बालिका तो क्षण-क्षण में विश्राम की इच्छा प्रकट कर रही थी। बालिका ने कहा—पिता! अब मैं और नहीं चल सकती, मेरे पैरों में देखो, लोहू बह

रहा है, वे फट गए हैं। वृद्ध ने स्नेह से उसे चुमकारकर कहा—बस, अब थोड़ी दूर और; निकट ही कहीं गांव या बस्ती मिलने पर ठहरने में सुभीता रहेगा। पर बालिका और कुछ पग चलकर मार्ग में ही एक ऊंची जगह पर बैठ गई। वृद्ध भी निरुपाय हो, पास ही बैठ गया। अन्धकार ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया।

सहसा बालिका ने चौंककर कहा—पिताजी, देखो, घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दे रहा है! बुड्ढे ने उठकर दूर तक दृष्टि करके देखा। सड़क के निकट एक घना सेमल का वृक्ष था, जिसके नीचे घोर अन्धकार था। वृद्ध कन्या का हाथ पकड़, वहीं जा छिपा। आकाश में अब भी बादल घिर रहे थे और फिर ज़ोर की वर्षा होने के रंग-ढंग दीख पड़ते थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक जाती थी। थोड़ी देर बाद बहुत से सवार वहां तक आ पहुंचे। वर्षा भी शुरू हो गई। सवारों ने निश्चय किया कि उस वृक्ष के नीचे आश्रय लें।

वृद्ध भय से बालिका को छाती में छिपाए वृक्ष की जड़ में चिपककर बैठ गया। सहसा बिजली की चमक में अश्वारोहियों ने वृक्ष के निकट मनुष्य-मूर्ति देखकर कहा—अरे! वृक्ष के निकट यह कौन है? वृद्ध वहां से हटकर चुपचाप खेत में जाने लगा। तत्क्षण एक बर्छा आकर उसकी छाती को विदीर्ण कर गया। वृद्ध एक चीत्कार करके धरती पर गिर गया। बालिका ज़ोर से चिल्ला उठी।

अश्वारोही दल ने निकट जाकर देखा—मृत पुरुष वृद्ध और निरस्त्र है। पर कन्या को देखते ही बर्छा फेंकने वाले सवार ने कहा—वाह! बूढ़े को मारकर रत्न मिला! इसमें किसीका साझा नहीं है?

बालिका भय और शोक से चिल्ला उठी। अश्वारोही ने उसकी परवा न कर, उसे उठाकर घोड़े पर रख लिया और वे आगे बढ़े।

वैभवशालिनी वैशाली का जो 'श्रेष्ठि-चत्वर' नामक बाज़ार था। उसके उत्तर कोण पर एक विशाल प्रासाद, जिसके गुम्बजों का प्रकाश रात्रि को गङ्गा पार से भी दीखता था। बाहर का सिंहद्वार विशाल पत्थरों का बनाया गया था, जिसे उठाना और जोड़ना दैत्यों का ही काम हो सकता था। इन पत्थरों पर स्थापत्यकला और शिल्प की सूक्ष्म बुद्धि खर्च की गई थी। ड्योढ़ी पर गहरा हरा रंग किया हुआ था और ऊंचे महराबदार फाटक पर फूलों की गुंथी हुई

सुन्दर मालाएं लटक रही थीं। पहले आंगन में प्रवेश करने पर श्वेत अट्टालिकाओं की पंक्ति दीख पड़ती थी। उनकी दीवारों पर कांच की तरह चमकदार श्वेत पलस्तर किया गया था। सीढ़ियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के खुदरंग बहुमूल्य पत्थर लगे थे, और खिड़कियों में बिल्लौर के किवाड़ थे, जिनमें श्रेष्ठि-चत्वर की बहार बैठे ही बैठे दीख पड़ती थी। दूसरे आंगन में गाड़ी, बैल, घोड़े हाथी बंधे थे और महावत उन्हें चावल-घी खिला रहे थे। तीसरे आंगन में अतिथि-शाला तथा आगत जनों के ठहरने का प्रबन्ध था। यहां बहुत सुन्दर विशाल पत्थरों के खम्भों पर महराब खड़े हुए थे। चौथे आंगन में नाट्यशाला और गायनभवन था। पांचवें आंगन में भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्पकार और जौहरी लोग नाना प्रकार के आभूषण बना और रत्नों को घिस रहे थे। छठे आंगन में भिन्न-भिन्न देश के पशु-पक्षियों का अद्भुत संग्रह था। सातवां आंगन बिलकुल श्वेत पत्थर का बना था, और उसमें सुनहरा काम हो रहा था। इसमें दो भीमकाय सिंह स्वर्ण की मेखलाओं से दृढ़तापूर्वक बंधे थे और चांदी के पात्रों में पानी भरा उनके निकट धरा था। गृह-स्वामिनी अम्बपालिका इसी कक्ष में विराजती थी।

सन्ध्या हो गई थी। परिचारक और परिचारिकाएं दौड़-धूप कर रही थीं, कोई सुगन्धित जल आंगन में छिड़क रही थी, कोई धूप जलाकर भवन को सुवासित कर रही थी, कोई सहस्र दीप-गुच्छ में सुगन्धित तेल डालकर प्रकाशित करने में व्यस्त थी। बहुत से माली तोरण और अलिन्द पर ताज़े पुष्पों के गुलदस्ते और मालाओं को सजा रहे थे। अलिन्द में दण्डधर अपने-अपने स्थानों पर भाला टेके स्थिर भाव से खड़े थे। द्वारपाल तोरण पर अपने द्वार-रक्षक दल के साथ सशस्त्र उपस्थित था।

क्षण भर बाद प्रासाद भांति-भांति के रंगीन प्रकाशों से जगमगा उठा। भांति-भांति के रंगीन फव्वारे चलने लगे और ऊन पर प्रकाश का प्रतिबिम्ब इन्द्र-धनुष की बहार दिखाने लगा। धीरे-धीरे प्रतिष्ठित नागरिक कोई पालकी में, कोई रथ पर और कोई हाथी पर चढ़कर प्रथम तोरण पारकर आने लगे। परिचारक-गण दौड़-दौड़कर अतिथियों को सादर उतारकर भीतरी अलिन्द में पहुंचाने तथा उनकी सवारियों की व्यवस्था करते लगे। हाथी-घोड़े, रथ, पालकी

आदि वाहनों का तांता लग गया। उनकी भीड़ से बाहर का विशाल प्राङ्गण भर गया।

सातवें तोरण के भीतर श्वेत पत्थर के एक विशाल सभा-भवन में अम्ब-पालिका नागरिक युवकों की अभ्यर्थना कर रही थी। यह भवन एक टुकड़े के ६४ हरे रंग के पत्थर के खम्भों पर निर्मित हुआ था, और इसपर रंगीन रत्नों को जड़कर फूल-पत्ती, पक्षी तथा वन के दृश्य बनाए गए थे। छत पर स्वर्ण का पत्तर मढ़ा था, जहां पर बारीक खुदाई और रंगीन मीना का काम हो रहा था। इस विशाल भवन में दुग्ध-फेन के समान उज्ज्वल वर्ण का अति मुलायम और बहुमूल्य बिछावन बिछा था। थोड़े-थोड़े अन्तर से बहुत सी वेदियां पृथक्-पृथक् बनी थीं, जहां कोमल उपाधान, मद्य के स्वर्ण-पात्र और प्यालियां, जुआ खेलने के पासे तथा अन्य विनोद-सामग्री, भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रंथ, बहुमूल्य चित्र तथा अन्य बहुत सी मनोरंजन की सामग्री थी।

महाप्रतिहार अलिन्द तक अतिथि युवकों को लाता, वहां से प्रधान परि-चारिका उसे कक्ष तक ले आती। कक्ष-द्वार पर स्वयं अम्बपालिका साक्षात् रति के समान आगत जनों का हाथ पकड़कर स्वागत करती, एक वेदी पर ले जाकर बैठाती, सुगन्ध और पुष्प-मालाओं से सत्कार करती तथा अपने हाथ से मद्य ढालकर पिलाती थी। उस स्वर्ग-सदन में, रूप-यौवन और जीवन के आलोक में, अर्द्ध रात्रि तक नित्य ही माधुर्य और आनन्द का प्रवाह बहता था। सैकड़ों दासियां दौड़-धूप करके याचित वस्तु तत्काल जुटा देतीं। फिर कुछ ठहरकर संगीत-लहरी उठती। कोमल तन्तु-वाद्य गम्भीर मृदंग के साथ वैशाली के श्रेष्ठ पुत्रों, राजवर्गियों और कुमारों के हृदयों को मसोस डालता था। वाद्य की ताल पर मोम की पुतली के समान कुमारियां मधुर स्वर में स्वर-ताल और मूर्च्छनामय संगीत-गान करतीं, और नर्तकियां ठुमककर नाचती थीं। उस स्वप्न-सौन्दर्य के दृश्य को युवक सुगन्धित मद्य के घूंट के साथ पीकर अपने जन्म को धन्य मानते थे।

अम्बपालिका अब २० वर्ष की पूर्ण युवती थी। उसका यौवन और सौन्दर्य मध्याकाश में था। और लिच्छविगण तन्त्र के राजा ही नहीं, मगध, कोशल और विदेश के महाराजा तक उसके लिए सदैव अभिलाषी बने रहते थे। इन सभी महानृपतियों की ओर से रत्न, वस्त्र, हाथी आदि भेंट में आते रहते थे और

अम्बपालिका अपनी कृपा और प्रेम के चिह्न-स्वरूप कभी-कभी ताजे फूलों की एकाध माला तथा कुछ गन्ध द्रव्य उन्हें प्रदान कर दिया करती थी।

विधाता ने मानो उसे स्वर्ण से बनाया था। उसका रंग गोरा ही न था, उसपर सुनहरी प्रभा थी—जैसी चम्पे की अविकसित कली में होती है। उसके शरीर की लचक, अङ्गों की सुडौलता वर्णन से बाहर की बात थी। उस सौन्दर्य में विशेषता यह थी कि समय का अत्याचार भी उस सौन्दर्य को नष्ट न कर सकता था। जैसे मोती का पर्त उतार देने से भीतर से नई आभा, नया पानी दमकने लगता है, उसी प्रकार अम्बपालिका का शरीर प्रतिवर्ष निखार पाता था। उसका कद कुछ लम्बा, देह मांसल और कुच पीन थे। तिसपर उसकी कमर इतनी पतली थी कि उसे कटिबन्धन बांधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चैतन्य थे, मानो प्रकृति ने उन्हें नृत्य करने और आनन्द-भोग करने को बनाया था।

उसके नेत्रों में सूक्ष्म लालसा की झलक और दृष्टि में गजब की मदिरा भर रही थी। उसका स्वभाव सतेज था, चितवन में दृढ़ता, निर्भीकता, विनोद और स्वेच्छाचारिता साफ झलकती थी। उसे देखते ही आमोद-प्रमोद की अभिलाषा प्रत्येक पुरुष के हृदय में उत्पन्न हो जाती थी।

जैसा कहा जा चुका है, उसकी रंगत पर एक सुनहरी झलक थी; गाल कोमल और गुलाबी थे; ओठ लाल और उत्फुल्ल थे, मानो कोई पका हुआ रसीला फल चमक रहा हो। उसके दांत हीरे की तरह स्वच्छ, चमकदार और अनार की पंक्ति की तरह सुडौल, कुच पीन तथा अनीदार थे। नाक पतली, गर्दन हंस जैसी, कन्धे सुडौल, वाहु मृणाल जैसी थी। सिर के बाल काले, लम्बे और घुंघराले तथा रेशम से भी मुलायम थे। आंखें काली और कंटीली, उंगलियां पतली और मुलायम थीं। उनपर उसके गुलाबी नाखूनों की बड़ी बहार थी। पैर छोटे और सुन्दर थे। जब वह ठसक के साथ उठकर खड़ी हो जाती तो लोग उसे एकटक देखते रह जाते थे। उसकी भुजाओं और देह का पूर्व भाग सदा खुला रहता था।

वैशाली में बड़ी भारी बेचैनी फैल गई। अश्वारोही दल के दल नगर के तोरण से होकर नगर से बाहर निकल रहे थे। प्रतिहार लोग और किसीको न

बाहर निकलने देते थे और न भीतर घुसने देते थे। तोरण के इधर-उधर बहुत से नागरिक सेना का यह अकस्मात् प्रस्थान देख रहे थे। एक पुरुष ने पूछा—क्यों भाई, जानते हो, यह सेना कहां जा रही है? उसने कहा—न, यह कोई नहीं जानता। अश्वारोही दल निकल गया। पीछे कई सेना-नायक धीरे-धीरे परामर्श करते चले गए।

क्षण भर में सम्वाद फैल गया। मगध के प्रतापी सम्राट् शिशुनागवंशी बिम्बसार ने वैशाली पर चढ़ाई की। गंगा के दक्षिण छोर पर दुर्जय मागध सेना दृष्टि के उस छोर से इस छोर तक फैली हुई थी। इस सेना में १० हज़ार हाथी, ५० हज़ार अश्वारोही और पांच लाख पैदल थे।

वैशाली के लिच्छविगण तन्म का प्रताप भी साधारण न था। गंगा के उत्तर कोण पर देखते-देखते सैन्य-समूह एकत्रित हो गया। लिच्छवियों के पास ८ हज़ार हाथी, १ लाख अश्वारोही और ६ लाख पैदल थे।

तीन दिन तक दोनों दल आमने-सामने डटे रहे। तीसरे दिन लिच्छवि लोगों ने देखा, उस पार डेरों की संख्या कम हो गई है। निपुण सैनिक सहस्रों घाट से पार आने की तैयारी कर रहे हैं, यह समझने में देर न लगी। दोपहर होते-होते मगध सेना गंगा पार करने लगी। लिच्छवि-सेना चुपचाप खड़ी रही। ज्यों ही कुछ सेना ने भूमि पर पैर रखा त्यों ही वैशाली की सेना जय-जयकार करते बढ़ चली, मानो सहस्र उल्कापात हुए हों। मेघ-संघर्षण की तरह घोर गर्जना करके दोनों सेनाएं भिड़ गईं। मागध सेना की गति रुक गई। बाण, बर्छे और तलवारों की प्रलय मच गई। उस दिन, दिन भर संग्राम रहा। सूर्यास्त देख, दोनों सेनाएं पीछे को फिरीं।

२ मास से नगर का घेरा जारी है। बीच-बीच में युद्ध हो जाता है। कोई पक्ष निर्बल नहीं होता। नगर की तीन दिशाएं मागध-शिविर से घिरी हैं। बीच में जो सबसे बड़ा डेरा है, उसके ऊपर सोने का गरुड़ध्वज अस्त होते सूर्य की किरणों से अग्नि की तरह दमक रहा है। उसके आगे एक स्वर्ण-पीठ पर गौर वर्ण सम्राट् विराजमान हैं। निकट एक-दो विश्वासी पार्श्वद हैं। सम्राट् अति सुन्दर, बलिष्ठ और गम्भीरमूर्ति हैं। नेत्रों में तेज और स्नेह, दृष्टि में वीरत्व

और औदार्य तथा प्रतिभा में अदम्य तेज प्रकट हो रहा है। सम्राट् आधे लेटे हुए कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। एक कर्णिक नीचे बैठा उनके आदेशानुसार लिखता जाता है। एक दण्डधर ने आगे बढ़कर पुकारकर कहा—महानायक युवराज भट्टारकपादीय गोपालदेव तोरण पर उपस्थित हैं। सम्राट् ने चौंककर उधर देखा और भीतर बुलाने का संकेत किया। साथ ही कर्णिक और मन्त्री को विदा किया।

गोपालदेव ने तलवार म्यान से खींच शीश से लगाई और फिर विनम्र निवेदन किया—महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सब व्यवस्था ठीक है। देवश्री पधारने का कष्ट करें। सम्राट् के नेत्रों में उत्फुल्लता उत्पन्न हुई। वे उठकर वस्त्र पहनने के लिए पट-मण्डप में घुस गए।

वैशाली के राजपथ जनशून्य थे, दो प्रहर रात्रि जा चुकी थी, युद्ध के आतंक ने नगर के उल्लास को मूर्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अन्धकारमयी रात्रि में भयानक भूत-से प्रतीत होते थे। धीरे-धीरे दो मनुष्य-मूर्तियां अन्धकार का भेदन करती हुई वैशाली के गुप्त द्वार के निकट पहुंचीं। एक ने द्वार पर आघात किया, भीतर प्रश्न हुआ—संकेत ?

मनुष्य-मूर्ति ने कहा—अभिनय !

हल्की चीत्कार करके द्वार खुल गया। दोनों मूर्तियां भीतर घुसकर राजपथ छोड़, अन्धेरी गलियों में अट्टालिकाओं की परछाईं में छिपती-छिपती आगे बढ़ने लगीं। एक स्थान पर प्रहरी ने बाधा देकर पूछा—कौन ? एक व्यक्ति ने कहा—आगे बढ़कर देखो। प्रहरी निकट आया। हठात् दूसरे व्यक्ति ने उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। दोनों फिर आगे बढ़े। अम्बपालिका के द्वार पर अन्ततः उनकी यात्रा समाप्त हुई। द्वार पर एक प्रतिहार मानो उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। संकेत करते ही उसने द्वार खोल दिया और आगन्तुकगण को भीतर लेकर द्वार बन्द कर लिया।

आज इस विशाल राजमहल सदृश भवन में सन्नाटा था। न रंग-बिरंगी रोशनी, न फव्वारे, न दास-दासी गणों की दौड़-धूप। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतिहार के साथ जा रहे थे। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा, एक और मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—इधर से पधारिए

श्रीमान् ! प्रतिहार वहीं रुक गया। नवीन व्यक्ति स्त्री थी और वह सर्वांग काले वस्त्र से ढांपे हुए थी। दोनों आगन्तुक कई प्राङ्गण और अलिन्द पार करते हुए कुछ सीढ़ियां उतरकर एक छोटे से द्वार पर पहुंचे जो चांदी का था और जिसपर अतिशय मनोहर जाली का काम हो रहा था और उसी जाली में से छन-छनकर रंगीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा : एक बहुत बड़ा कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि उतना बड़ा नहीं, जहां नागरिक जनों का प्रायः स्वागत होता था, परन्तु सजावट की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह समस्त भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बड़े-बड़े बिल्लौर के अठपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हूबहू प्रतिबिम्ब सहस्रों की संख्याओं में दीखता था। बड़े-बड़े और भिन्न-भिन्न भावपूर्ण चित्र टंगे थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। समस्त कक्ष भीनी सुगन्ध से महक रहा था। धरती पर एक महामूल्यवान् रंगीन बिछावन था जिसपर पैर पड़ते ही हाथ भर धंस जाता था। बीचोंबीच एक विचित्र आकृति की सोलह-पहलू सोने की चौकी पड़ी थी, जिसपर मोर-पंख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चन्दोवा तन रहा था। और पीछे रंगीन रेशम के परदे लटक रहे थे, जिसमें ताजे पुष्पों का शृंगार बड़ी सुघड़ाई से किया गया था। निकट ही एक छोटी सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का एक बड़ा सा पात्र धरा हुआ था।

हठात् सामने का परदा उठा और उसमें से वह रूप-राशि प्रकट हुई जिसके बिना अलिन्द शून्य हो रहा था। उसे देखते ही आगन्तुकगण में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हटकर कक्ष से बाहर हो गया, दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा खड़ा रहा। अम्बपालिका आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत रेशम की पोशाक पहने हुए थी। वह इतनी बारीक थी कि उसके आर-पार साफ़ दीख पड़ता था। उसमें से छनकर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रंग कमर तक ही था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी। इसलिए उसकी कमर के ऊपर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग साफ दीख पड़ते थे।

विधाता ने उसे किस क्षण में गढ़ा था ! हमारी तो यह धारणा है कि कोई

चित्रकार न तो वैसा चित्र ही अङ्कित कर सकता था और न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

उस भुवन-मोहनी की वह छटा आगन्तुक के हृदय को छेदकर पार हो गई। गहरे काले रंग के बाल उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कंधों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुथा हुआ आभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आंखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्ब-फल जैसे अधर-ओष्ठ और अनार-दाने के समान उज्ज्वल दांत, गोरा और गोल चिबुक बिना ही शृंगार के अनुराग और आनन्द बखेर रहा था। अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व की वह वैशाली की वेश्या ऐसी ही थी।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख साफ देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला सा बहुमूल्य रंगीन शाल लपेटे हुए थी। हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अंगूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी और गोरी-गोरी गोल कलाइयों में नीलम की पहुंची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान बारीक उज्ज्वल परिधान के नीचे, सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्भुत घांघरा था, जो उस प्रकाश में बिजली की तरह चमक रहा था। पैरों में छोटी-छोटी लाल रंग की उपानत् थीं, जो सुनहरी फीते से कस रही थीं।

उस समय कक्ष में गुलाबी रङ्ग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपालिका का मानो परदा चीरकर इस रूप-रंग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत हुआ। वह अभी तक स्तब्ध खड़ा था। धीरे-धीरे अम्बपालिका आगे बढ़ी। उसके पीछे १६ दासियां एक ही रूप और रंग की, मानो पाषाण-प्रतिमाएं ही आगे बढ़ रही थीं।

अम्बपालिका धीरे-धीरे आगे बढ़कर आगन्तुक के निकट आकर झुकी और फिर घुटने के बल बैठ, उसने कहा—परमेश्वर, परम वैष्णव, परम भट्टारक, महाराजाधिराज की जय हो! इसके बाद उसने सम्राट् के चरणों में प्रणाम करने को सिर झुका दिया। दासियां भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महाप्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ाकर अम्बपालिका को ऊपर उठाया। अम्बपालिका ने निवेदन किया—महाराजा-

विराज पीठ पर विराजें। सम्राट् ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका, वे पीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपालिका ने नीचे धरती में बैठकर सम्राट् का गन्ध, पुष्प आदि से सत्कार किया। इसके बाद उसने अपनी मद-भरी आंखें सम्राट् पर डालकर कहा—महाराजाधिराज ने बड़ी अनुकम्पा की, बड़ा कष्ट किया।

सम्राट् ने किंचित् मोहक स्वर में कहा—अम्बपाली! यदि मैं यह कहूं कि केवल विनोद के लिए आया हूं तो यह यथार्थ बात नहीं। मैं तुम्हारे रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर स्थिर नहीं रह सका, और इस कठिन युद्ध में व्यस्त रहने पर भी तुम्हें देखने के लिए शत्रुपुरी में घुस आया, परन्तु तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है।

अम्बपालिका—(लज्जित-सी होकर ज़रा मुस्कराकर) मैं पहले ही सुन चुकी हूं कि देव स्त्रियों की चाटुकारी में बड़े प्रवीण हैं।

सम्राट्—चाटुकारी नहीं, अम्बपालिके! तुम वास्तव में रूप और गुण में अद्वितीय हो।

अम्बपालिका—श्रीमान्, मैं कृतार्थ हुई! इसके बाद वह अपने मुक्ता-विनिन्दित दांतों की छटा दिखाते हुए सम्राट् की सेवा में खड़ी हुई। सम्राट् ने प्याला ले और उसे खींचकर बगल में बैठा लिया। सङ्केत पाते ही दासियों ने क्षण-भर में गायन-वाद्य का सरंजाम जुटा दिया। कक्ष सङ्गीत-लहरी में डूब गया और उस गम्भीर निस्तब्ध रात्रि में मगध के प्रतापी सम्राट् उस एक वेश्या पर अपने साम्राज्य को भूल बैठे!

एक वर्ष बीत गया। प्रतापी लिच्छवि-राज मगध-साम्राज्य के आगे मस्तक नत करने को बाध्य हुए। अब वैशाली में वह उमंग न थी। अम्बपालिका का द्वार सदैव बन्द रहता था। द्वार पर कड़ा पहरा था। कोई व्यक्ति न उसे देख सकता था, न उससे मिल सकता था। उसके बहुत से युवक मित्र उस युद्ध में निहत हुए थे। पर जो बच रहे थे वे अम्बपाली के इस परिवर्तन पर आश्चर्यान्वित थे। वे किसी भी तरह उसका साक्षात् न कर सकते थे। दूर-दूर तक यह बात फैल गई थी।

अम्बपालिका के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सैनिक और अनुचरों में से भी केवल दो व्यक्ति थे जो अम्बपाली को देख सकते और उससे बात-

कर सकते थे। एक प्रधान परिचारिक यूथिका, दूसरा एक वृद्ध दण्डधर जिसे भीतर-बाहर सर्वत्र आने की स्वतन्त्रता थी। सम्राट् का आगमन केवल इन्हीं दोनों को मालूम था और ये दोनों ही यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपालिका को सम्राट् से गर्भ है।

यथासमय पुत्र प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर ही प्रकट हुआ। और वह पुत्र उसी दण्डधर ने गुप्त रूप से राजधानी में जाकर मगध-सम्राट् की गोद में डालकर, अम्बपालिका का अनुरोध सुनाकर कहा—महाराजाधिराज की सेवा में मेरी स्वामिनी ने निवेदन किया है कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट् आपके चरणों में समर्पित हैं। सम्राट् ने शिशु को सिंहासन पर डालकर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल नयन से कहा—मगध के भावी सम्राट् को झटपट अभिवादन करो। दण्डधर ने कोश से तलवार निकाल, मस्तक पर लगाई और तीन बार जयघोष करके तलवार शिशु के चरणों में रख दी। सम्राट् ने तलवार उठाकर वृद्ध की कमर में बांधते-बांधते कहा—अपनी स्वामिनी को मेरी यह तुच्छ भेंट देना। यह कहकर उन्होंने एक वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी, यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

भगवान् बुद्ध वैशाली में पधारे हैं और अम्बपालिका की बाड़ी में ठहरे हैं। आज हठात् अम्बपालिका के महल में हलचल मच रही है। सभी दास-दासी, प्रतिहार, द्वारपाल दौड़-धूप कर रहे हैं। हाथी, घोड़े, पालकी, रथ सज रहे हैं। सवार शस्त्र-सज्जित हो रहे हैं। अम्बपालिका भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही है। एक वर्ष बाद आज वह फिर सर्व-साधारण के सम्मुख निकल रही है। समस्त वैशाली में यह समाचार फैल गया है। लोग झुण्ड के झुण्ड उसे देखने राजमार्ग पर डट गए हैं। अम्बपालिका एक श्वेत हाथी पर सवार होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे है, उसके पीछे अश्वारोही दल है और उसके बाद हाथियों पर भगवान् की पूजा-सामग्री। सबके पीछे बहुत से वाहन, कर्मचारी और पौरगण।

अम्बपालिका एक साधारण पीत-वर्ण परिधान धारण किए अधोमुख बैठी है। एक भी आभूषण उसके शरीर पर नहीं है। बाड़ी से कुछ दूर ही उसने

सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह पैदल भगवान् के निवास तक पहुंची, पीछे १०० दासियों के हाथ में पूजन-सामग्री थी।

तथागत बुद्ध की अवस्था ८० को पार कर गई थी। एक गौरवर्ण, दीर्घकाय, श्वेतकेश, कृश, किन्तु बलिष्ठ महापुरुष पद्मासन से शान्त मुद्रा में एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। सहस्रावधि शिष्यगण दूर तक मुण्डितशिर और पीत वस्त्र धारण किए स्तब्ध-से श्रीमुख के प्रत्येक शब्द को हृत्पटल पर लिख रहे थे। आनन्द नामक शिष्य ने निवेदन किया— प्रभु ! अम्बपालिका दर्शनार्थ आई है। तथागत ने किंचित् हास्य से अपने करुण नेत्र ऊपर उठाए। अम्बपालिका धरती में लोटकर कहने लगी—प्रभो ! त्राहि माम् ! त्राहि माम् !

भगवान् ने कहा—कल्याण ! कल्याण ! आनन्द ने कहा—उठो अम्बपाली ! महाप्रभु प्रसन्न हैं। अम्बपाली ने यथाविधि भगवान् का अर्घ्यदान, पाद्य मधुपर्क से पूजन किया और चरण-रज नेत्रों में लगाई, फिर हाथ बांध सम्मुख खड़ी हो गई।

भगवान् ने हंसकर कहा—अब और क्या चाहिए अम्बपाली ?

'प्रभो ! भगवन् ! इस अपदार्थ का आतिथ्य स्वीकार हो, इन चरण-कमलों की देवदुर्लभ रज-कण किङ्करी की कुटिया को प्रदान हो।'

प्रभु ने करुण स्वर में कहा—तथास्तु ! भिक्षुगण सहस्र कण्ठ से जयोल्लास में चिल्ला उठे। परन्तु यह क्या ? उस नाद को विदीर्ण करता हुआ एक और नाद उठा। भगवान् ने पूछा—आनन्द ! यह क्या है ? 'प्रभो ! लिच्छविराजवर्ग और अमात्यवर्ग श्रीपाद-पद्म के दर्शनार्थ आ रहा है।' प्रभु हंस पड़े। अम्बपालिका हट गई। प्रतापी लिच्छविराजागण, राजकुमार, अमात्यवर्ग और अन्तःपुर ने एकसाथ ही भगवान् के चरणों में महान् मस्तक झुका दिए। भगवान् ने कहा—कल्याण ! कल्याण !!

महाराज ने पद-धूलि मुकुट पर लगाकर कहा—महाप्रभु ! यह तुच्छ राजधानी इन चरणों के पधारने से कृतकृत्य हुई। परन्तु प्रभो ! यह वेश्या की बाड़ी है, श्रीचरणों के योग्य नहीं। प्रभु के लिए राजप्रासाद प्रस्तुत है और राजवंश प्रभु-पद-सेवा को बहुत उत्सुक है। भगवान् ने हंसकर कहा—तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अन्तर है ? तथागत समदृष्टि है।

'प्रभो ! तब कल का आतिथ्य राज-परिवार को प्रदान कर कृतार्थ करें।

'वह तो मैं अम्बपाली का स्वीकार कर चुका !'

राजा निरुत्तर हुए। वे फिर प्रणाम कर लौटे। कुछ श्वेत वस्त्र धारण किए थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण पहने थे।

अम्बपालिका रथ में बैठकर लौटी। उसने आज्ञा दी—मेरा रथ लिच्छवि महाराजाओं के बराबर हांको। उनके पहिए के बराबर मेरा पहिया और उनके धुरे के बराबर मेरा धुरा रहे, तथा उनके घोड़े के बराबर मेरा घोड़ा।

लिच्छवियों ने देखकर क्रोध-मिश्रित आश्चर्य से पूछा—अम्बपालिके, यह क्या बात है ? तू हम लोगों के बराबर अपना रथ हांक रही है ?

उसने उत्तर दिया—मेरे प्रभु ! मैंने तथागत और उनके शिष्यवर्ग को भोजन का निमन्त्रण दिया है और वह उन्होंने स्वीकार किया है।

उन्होंने कहा—हे अम्बपाली ! हमसे एक लाख स्वर्ण-मुद्रा ले और यह भोजन हमें कराने दे।

'मेरे प्रभु, यह सम्भव ही नहीं है !'

'तब १०० ग्राम ले और यह निमन्त्रण हमें बेच दे।'

'नहीं स्वामी ! कदापि नहीं।'

'आधा राज्य ले और यह निमन्त्रण हमें दे दे।'

'मेरे प्रभु ! आप एक तुच्छ भूखण्ड के स्वामी हैं, पर यदि समस्त भूमण्डल के चक्रवर्ती भी होते और अपना समस्त साम्राज्य मुझे देते तो भी मैं ऐसी कीर्ति की जेवनार को नहीं बेच सकती थी।'

लिच्छवि राजाओं ने तब अपना हाथ पटककर कहा—हाय ! अम्बपालिका ने हमें पराजित कर दिया, अम्बपालिका हमसे बढ़ गई। अम्बपालिके ! तब तुम स्वच्छन्दता से हमसे आगे रथ हांको। अम्बपालिका ने रथ बढ़ाया। गर्द का एक तूफान पीछे रह गया।

दस सहस्र भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्ध ने अम्बपालिका के प्रासाद को आलोकित किया। वैशाली के राज-मार्ग में नगर के प्राण आ जूझे थे। महापुरुष बुद्ध और उनके वीतरागी भिक्षु भूमि पर दृष्टि दिए पैदल धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नगर के श्रेष्ठिगण दूकानों से उठ-उठकर मार्ग की भूमि को भगवान् के चरण रखने से पूर्व अपने उत्तरीय से झाड़ रहे थे। कोई नागरिक भीड़ से निकलकर

पथ पर अपने बहुमूल्य शाल बिछा रहे थे। महाप्रभु बिना कुछ कहे एकरस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। वह महान् संन्यासी, प्रबल वीतरागी महाप्राण वृद्धपुरुष श्रेष्ठ जय-जयकार की प्रचण्ड घोषणा से भी जरा भी विचलित नहीं हो रहा था। उसकी दृष्टि मानो पृथ्वी में पाताल तक घुस गई थी। पौर स्त्रियां झरोखों से खील और पुष्प-वर्षा कर रही थीं। अम्बपालिका का तोरण आते ही चार दण्डधरों ने दौड़कर पथ पर कौशेय बिछा दिया। द्वार में प्रवेश करने पर सर्वत्र कौशेय बिछा था। अनगिनत कर्मचारी भिक्षुगण के सम्मानार्थ दौड़ पड़े। पीत-वसनधारी मुण्डित भिक्षु नक्षत्रों की तरह उस विशाल प्राङ्गण में, महाजनसमूह में चमक रहे थे।

अतिथि-शाला में भगवान् के पहुंचते ही अम्बपालिका ने २०० दासियों के साथ स्वयं आकर तथागत के चरणों में सिर झुकाया और वहां से वह अपने अञ्चल से पथ की धूल झाड़ती हुई प्रभु को भीतरी अलिन्द तक ले गई। इस समय प्रभु के साथ केवल आनन्द चल रहे थे।

प्राङ्गण के मध्य में एक चन्दन की चौकी पर शुद्ध आसन बिछा था। अम्बपालिका के अनुरोध पर प्रभु वहां विराजमान हुए। अम्बपालिका ने अर्घ्य-पाद्य दान करके भोजन प्रस्तुत करने की आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलते ही अम्बपालिका स्वयं स्वर्ण-थाल में भोजन ले आई। अनेक प्रकार के चावल और रोटियां थीं। अम्बपालिका सेवा में करबद्ध खड़ी रही। भगवान् ने मौन होकर भोजन किया और तृप्त होकर कहा— बस।

अम्बपालिका के नेत्रों से अश्रुधारा बही। प्रभु ज्यों ही शुद्ध होकर आसन पर विराजे, अम्बपालिका ने पृथ्वी में गिरकर प्रणाम किया।

भगवान् ने कहा—अम्बपालिका, अब और तेरी क्या इच्छा है?

'प्रभु एक तुच्छ भिक्षा प्रदान हो?'

*तथागत ने गम्भीर होकर कहा—वह क्या है?*

'प्रभो! आज्ञा कीजिए, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय प्रदान करे।' आनन्द ने उत्तरीय उतारकर अम्बपालिका को दे दिया। क्षण भर के लिए अम्बपालिका भीतर गई परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी वस्त्र से अंग लपेटे आ रही थी। उस बौद्ध भिक्षु के प्रदान किए एकमात्र वस्त्र को छोड़कर उसके पास न कोई और वस्त्र था न आभरण। उसके नेत्रों में अविरल अश्रुधारा बह रही थी। भगवान् विमूढ़

उसका व्यापार देख रहे थे। वह आकर भगवान् के सम्मुख फिर लोट गई।

भगवान् ने शुभ हस्त से उसे स्पर्श करके कहा—उठो, उठो ! हे कल्याणी ! तुम्हारी इच्छा क्या है ?

'महाप्रभु ! अपवित्र दासी की धृष्टता क्षमा हो। यह महानारी-शरीर कलङ्कित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ सङ्कल्प से मैं वंचित रही; प्रभो, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का संचय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्यहृदया रहकर अब तक जीवित रही हूं, यह कैसे कहूं। मेरे जीवन में दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फलस्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट् की राजमाता हूं, परन्तु भगवन् ! आज के महान् पुण्य-योग के फलस्वरूप अब मैं इससे भी उच्च पद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाषा करती हूं। महाप्रभु प्रसन्न हों। जब भगवान् की चरण-रज से यह घर पवित्र हुआ, तब यहां विलाप और पाप कैसा ? उसकी सामग्री ही क्यों, उसकी स्मृति ही क्यों ?

'इसलिए भगवान् के चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा—महल, अटारी, धन, कोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित है। प्रभु ने भिक्षु का उत्तरीय मुझे भिक्षा में दिया है, मेरे शरीर की लज्जा-निवारण को यह बहुत है स्वामिन् ! आज से अम्बपाली भिक्षुणी हुई। अब यह इस भिक्षा में प्राप्त पवित्र वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी। हे प्रभु ! आज्ञा हो।'

इतना कहकर अविरल अश्रुधारा से भगवत्-चरणों को धोती हुई, अम्बपालिका बुद्ध की चरण-रज नेत्रों से लगाकर उठी, और धीरे-धीरे महल से बाहर चली। महावीतराग बुद्ध के नेत्र आप्यायित हुए। उन्होंने 'तथास्तु' कहा और खड़े होकर उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण ! कल्याण !! सहस्र-सहस्र कण्ठ से 'जय अम्बपालिके, जय अम्बपालिके' का गगन-भेदी नाद उठा। सहस्रों नर-नारी पीछे चले। अम्बपालिका उस पीत परिधान को धारण किए, नीचा सिर किए, पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे-धीरे नगर से बाहर जा रही थी और उसके पीछे समस्त नगर उमड़ा जा रहा था। खिड़कियों से पौर वधुएं पुष्प और खील-वर्षा कर रही थीं।

भगवान् ने कहा—हे आनन्द, यह स्थान बौद्ध भिक्षुओं का प्रथम विहार

होगा। बौद्ध भिक्षु यहां रहकर सन्मार्ग का अन्वेषण करेंगे—यही तथागत की इच्छा है।

आनन्द ने सिर झुकाया। भिक्षु-मण्डल जय-नाद कर उठा। बुद्ध भगवान् धीरे-धीरे उठकर नगर के राजमार्ग से आते हुए अम्बपालिका की बाड़ी में आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। कुछ दूर एक वृक्ष की जड़ में अम्ब-पालिका स्थिर बैठी थी। भगवान् को स्थित देख वह उठी और धीर भाव से प्रभु के सम्मुख आकर खड़ी हुई। भगवान् ने उसकी ओर देखा। अम्बपालिका ने विनयावनत होकर कहा—

**'बुद्धं सरणं गच्छामि**
**धम्मं सरणं गच्छामि**
**संघं सरणं गच्छामि'**

तथागत स्थिर हुए। उन्होंने तत्काल पवित्र जल उसके मस्तक पर सिंचन किया और पवित्र वाक्यों का उपदेश देकर कहा—भिक्षुओ ! महासाध्वी अम्ब-पालिका भिक्षुणी का स्वागत करो।

फिर जयनाद से दिशाएं गूंज उठीं और अम्बपालिका तथागत तथा अन्य वृद्ध भिक्षुगण को प्रणाम कर वहां से चल दी और फिर वैशाली के पुरुष उसे न देख सके !!

# प्रबुद्ध

अमिताभ बोधिसत्त्व गौतम बुद्ध की प्रभाव-सत्ता की समता विश्वमानवों में केवल ईसा कर सकता है, वह भी आंशिक। तिसपर गवेषणाएं ऐसी हैं कि कहा जाता है—ईसा बौद्ध शिष्य है। गौतम बुद्ध ने ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व भारत में जन्म लेकर जिस धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया वह विश्व का सर्व-प्रथम सर्व-सभ्य विश्व-धर्म था। सारे संसार की सभ्य, अर्धसभ्य जातियों को उसने संयम, प्रेम, त्याग और अहिंसा का संदेश दिया और जिस काल सामन्तशाही तथा स्वेच्छा-जीवन ही रूढ़िवाद बना हुआ था, धर्म और जीवन को उसने व्यावहारिक और सरल रूप दिया। मनुष्य की जाति को उसने वह दिव्य चक्षु दिया जिससे वह ज्ञानावलोकन कर अपना और औरों का भला कर सके। प्रस्तुत कहानी में उसी दिव्यात्मा के जीवन-रेखाचित्र भाव-ध्वनि में अंकित हैं। यह कहानी अब से कोई चालीस साल पूर्व सन् १९१६ में लिखी गई थी। उन दिनों हिन्दी में बौद्ध साहित्य का अध्ययन विरल था और आचार्य के साहित्य-प्रांगण में प्रवेश का भी प्रभात था। इस दृष्टि से कहानी में उदीयमान भावी महान् साहित्यकार के दर्शन होते हैं। कहानी में भाव-कल्पना और मानसिक घात-प्रतिघात का प्रभावशाली और गम्भीर प्रदर्शन है। तथा कथनोपकथनशैली में सतेज प्रवाह है जो भावों और विचारों के अद्भुत एकत्व का प्रकटीकरण करता है—कहानी में महाप्राण बुद्ध के अंतर्द्वन्द को साकार किया गया है।

वृद्ध महाराज शुद्धोदन विशेष प्रसन्नवदन दिखाई पड़ रहे थे। वे प्रासाद के भीतरी अलिन्द में एक स्फटिक मणि की पीठ पर बैठे थे। उन्होंने सम्मुख कुछ दूर पर खड़े हुए प्रतिहार को पुकारकर कहा—अरे! देख तो युवराज सिद्धार्थ अभी मृगया से लौटे या नहीं?

प्रतिहार ने आगे बढ़ और धरती पर बल्लम टेककर कहा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव, महाभट्टारकपादीय महाकुमार अभी-अभी मृगया से लौटे हैं, और वे वायुमण्डल में विश्राम कर रहे हैं।

'अच्छा-अच्छा, महानायक प्रबुद्धसेन और महामात्य विजयादित्य को यहां भेज दो।'

प्रतिहार ने नत-मस्तक हो प्रस्थान किया। महाराज ने चंवरवाहिनी को संकेत से निकट बुलाकर कहा—जा, राजमहिषी से कह दे कि आज ही तो भाण्ड-वितरण का दिन है, सभी राजकुमारियां आ गई होंगी। वे स्वयं उनकी सुश्रूषा करें। ऐसा न हो कि किसीको खिन्न होने का अवसर मिले।

महानायक प्रबुद्धसेन ने अलिन्द में आ स्थिर भाव से सम्मुख खड़े होकर और खड्ग को उष्णीष से लगाकर पुकारा—परम परमेश्वर, परम वैष्णव······

महाराज ने बीच में ही हंसकर कहा—महानायक, आज सभी सेना सज्जित करनी चाहिए। ज्यों ही कुमार सिद्धार्थ अन्तिम भाण्ड वितरण करें, त्यों ही जयघोष और सैनिक अभिवादन होना चाहिए। आज ही कुमार सिद्धार्थ सेना को पताका प्रदान करेंगे।

महानायक ने नत-मस्तक होकर कहा—महाराज की जय हो। समस्त सेना सज्जित होकर भट्टारकपादीय महाराजकुमार के अन्तिम भाण्ड-वितरण की प्रतीक्षा कर रही है।

महामात्य विजयादित्य ने आ, नत-जानु होकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने प्रफुल्ल-वदन होकर कहा—महामात्य! अब तो समय उप-स्थित है, फिर विलम्ब क्यों? सभी राजकुमारियां आ तो गईं? तुम कुमार सिद्धार्थ को तृतीय अलिन्द में ले जाओ, वहीं भाण्ड-वितरण किया जाएगा। हां, तुम कुमार के सर्वथा निकट रहना और उनकी गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना। नेत्रों का तारतम्य और ओष्ठ-प्रस्फुरण, गूढ़ मनोगत भावों को प्रदर्शित कर देगा। ज्यों ही तुम देखो, कुमार किसी कन्या के प्रति आकर्षित हुए हैं, त्यों ही तुम शङ्ख-ध्वनि करना, और पुरोहित को शुभ-संवाद देकर मेरे निकट भेज देना। इतना कहकर महाराज हंस दिए।

वृद्ध महामात्य भी हंसे। उन्होंने कहा—जो आज्ञा, परन्तु कोली राजकन्या यशोधरा अभी तक नहीं आई हैं। वह···

बीच में ही एक दण्डधर ने उपस्थित हो, उच्च स्वर से जयनाद करके कहा—कोली राजकन्या भट्टारकपादीय महाराजकुमार से भाण्ड-प्रसाद पाने की अभिलाषा से आई हैं। वे द्वार पर उपस्थित हैं।

महाराज ने हठात् खड़े होकर कहा—जाओ जाओ, राजमहिषी से कहो कि वे राजनन्दिनी का यथेष्ट स्वागत करें।

महामात्य ने नत-मस्तक होकर कहा—तो अब मैं जाता हूं।

'शिवास्ते पन्थान: सन्तु !'

महाराज फिर अलिन्द में अकेले रह गए। उस समय न जाने कितनी सुखद स्मृतियां उनके हृत्पिण्ड को विकसित कर रही थीं।

वायु-मण्डप की एक स्वच्छ शिला पर राजकुमार सिद्धार्थ विषण्णवदन बैठे थे। उनके शरीर पर केवल एक उत्तरीय और अधोवस्त्र था। वे मानो किसी गहन चिन्ता में मग्न थे। वसंत की मृदुल वायु उनके काक-पक्ष को लहरा रही थी। कुसुम-गुच्छ झूम-झूमकर सौरभ बिखेर रहे थे। तप्त स्वर्ण के समान उनकी शरीर-कान्ति उन महीन वस्त्रों से बिखरी पड़ती थी। उनका मुख, चिन्तन की गम्भीर भावना के कारण प्रस्फुटित्त कैशोरावस्था की उत्फुल्लता से रहित हो गया था; पर उसका अप्रतिम सौन्दर्य कुछ और ही रंग ला रहा था। उनकी सुडौल गर्दन, विशाल वक्षस्थल, प्रलम्ब बाहू और केहरी जैसी ठवन असाधारण थी। सुकोमल हृद्गत भाव, सुकुमार देह और पुंस्त्व का उद्गम एक अलौकिक मिश्रण बना रहा था। वे शिलाखण्ड पर बैठे दोनों हाथों में जानु देकर सम्मुख पुष्करिणी में खिले एक कमल पुष्प पर बारम्वार मत्त भ्रमर का प्रणय-आक्रमण देख रहे थे। परन्तु उस विनोद का कुछ प्रभाव उनके हृदय पर था—यह नहीं कहा जा सकता। उनकी दृष्टि भ्रमर पर थी अवश्य, पर वे किसी गूढ जगत् में विचर रहे थे। कभी-कभी उनके होंठ फड़क उठते और कोई शब्द-ध्वनि उनमें से निकल जाती थी। वे इतने मग्न थे कि कब कौन उनके निकट आ खड़ा हुआ है, यह उन्हें ज्ञात ही नहीं हुआ।

पीछे से स्पर्श पाकर उन्होंने चौंककर देखा और सम्भ्रान्त भाव से खड़े होकर वे आगत वृद्ध पुरुष को प्रणाम करते हुए बोले—आर्य की उपस्थिति का कुछ भी भान नहीं हुआ !

वृद्ध महापुरुष ने हंसकर कहा—होगा कैसे, तुम स्वयं उपस्थित रहो तब न ? क्षणभर भी एकान्त हुआ, और तुम गम्भीर चिन्तन में मग्न हुए। कुमार ! क्या प्रतापी शाक्यवंश के एकमात्र उत्तराधिकारी के लिए यह उचित है ?

'आर्य क्षमा कीजिए। मैं भविष्य में इसका ध्यान रखूंगा; परन्तु...... आज मेरी परीक्षा हो गई न ?'

'आशातीत ! तुम्हारे जैसे अन्यमनस्क शिष्य से मुझे इतनी आशा न थी। सभी कहते थे कि कुमार लक्ष्य-वेध न कर सकेंगे। तुम अभ्यास ही कब करते थे ? परन्तु आज तुम्हारा हस्त-लाघव देखकर मैं गद्गद हो गया। कुमार ! मैं धन्य हुआ। तुम शाक्यवंश के दीपक होगे। मैं भविष्यवाणी करता हूं—तुम अप्रतिम योद्धा······' वृद्ध पुरुष कुमार के कन्धे पर स्नेह से हाथ रखकर उपर्युक्त वचन कह रहे थे।

कुमार ने बीच में ही बात काटकर कहा—आर्य ! पुरजन फिर तो मेरी परीक्षा की हठ न करेंगे ?

'कभी नहीं, वे पूर्ण सन्तुष्ट हैं, सर्वत्र ही तुम्हारी अप्रतिम शस्त्रकला की चर्चा हो रही है। पर तुम क्या विशेष थके हुए हो ?'

'तनिक भी नहीं।'

'तब यह एकान्त-सेवन क्यों ? यह गम्भीर चिन्तन क्यों ? और यह विषण्ण मुखमुद्रा क्यों ?'

'आर्य अत्यन्त स्नेह के कारण ऐसा विचार करते हैं। परन्तु······अरे ! महामात्य इधर ही आ रहे हैं—आर्य, हमें आगे बढ़कर अमात्यवर का अभिवादन करना चाहिए।'

दोनों व्यक्ति वायु-मण्डप के द्वार तक बढ़ आए। महामात्य ने हंसकर कहा—आयुष्मन् ! आज तुम आखेट में विजय प्राप्त कर आए। इस समाचार से अन्तःपुर में विशेष उल्लास हो रहा है; महिषी की इच्छा है कि आज सभी राजकुमारियां समुपस्थित हैं, कुमार उन्हें अपने हाथों से रत्न-भाण्ड प्रदान कर उन्हें प्रतिष्ठित करें।

कुमार ने सलज्ज भाव से कहा—माता की जैसी आज्ञा। तीनों व्यक्ति धीरे-धीरे प्रासाद की ओर चल दिए।

उषा की आलोकित रश्मि-रेखा की तरह सबके अन्त में कोलराजनन्दिनी यशोधरा ने कक्ष में प्रवेश किया, मानो उन्हें देखते ही कुमार सिद्धार्थ का चिर-निद्रित यौवन जागरित हो उठा। वे धीरे-धीरे सौरभ, आलोक और शोभा बिखेरती हुई व्यास-पीठ तक पहुंचकर कुमार के सम्मुख खड़ी हो गईं; वे सिमट रही थीं और झुक रही थीं, न जाने अविकसित यौवन के भार से अथवा लज्जा

के भार से। वे सम्मुख खड़ी होकर भूमि पर दृष्टि गड़ाए पद-नख से धरती पर बिछे स्फटिक-प्रस्तर पर रेखा खींचने का व्यर्थ प्रयास कर रही थीं।

कुमार चित्र-लिखित से देखते रह गए। वे जागरित भी प्रसुप्त-से थे। कुमार के निकट खड़े अमात्यवर ने कहा—राजनन्दिनी को भाण्ड-प्रदान करो आयुष्मन्।

कुमार ने घबराकर इधर-उधर देखा और अस्त-व्यस्त स्वर में कहा—शुभ्रे! तुमने अति विलम्ब किया, भाण्ड तो सभी वितरण हो चुके।

राजनन्दिनी क्षण भर उसी तरह खड़ी रहीं। फिर उन्होंने ऋतु प्रणाम करके लौटने का उपक्रम किया।

कुमार असंयत होकर आगे बढ़े और कण्ठ से मणिमाला निकालकर उन्होंने कुमारी के गले में डाल दी। कुमारी ने दृष्टि उठाकर कुमार के प्रदीप्त स्वर्ण-मुख की ओर देखा। वे पत्ते की तरह कांपने लगीं और उनका मुख प्रस्वेद से भीग गया। कुमार जड़वत् खड़े थे। हठात् महामात्य ने शंख-ध्वनि की। क्षण भर में भुशुण्डिकाएं गर्ज उठीं। उसके बाद ही विविध वाद्य-ध्वनि से राजप्रासाद गुंजायमान हो गया।

कुमार ने विचलित होकर कहा—आर्य! यह क्या हुआ? पर उन्होंने देखा, कक्ष में वे हैं और पुष्प-भार से झुकी हुई लतिका के समान राजनन्दिनी यशोधरा हैं। उन्होंने साहस करके कहा—राजनन्दिनी क्या प्रतिदान की अभिलाषा रखती है?

कुमारी के अधरोष्ठ में एक क्षीण हास्य-रेखा और कपोलों पर लाली आई और गई। उन्होंने नत-जानु होकर महाराजकुमार को अभिवादन किया और उसके बाद वहां से चली गईं।

क्या हम प्रेम की व्याख्या करें? उस प्रेम की, जहां शरीर-सम्पत्ति प्रेम का माध्यम नहीं है; जहां केवल प्राणों में प्राणों का लय है; जो नेत्रपटल पर नहीं तौला जाता; केवल आत्मा जिसमें विभोर होती है; जो जीवन से मृत्यु तक और मृत्यु से परे भी वैसा ही पारिजात-कुसुम की तरह अक्षय विकसित रहता है; वासना का यहां सम्पर्क नहीं; भोग और तृप्ति का यहां प्रसंग नहीं; अभिलाषा और अरुचि दोनों ही यहां नहीं; जहां सुख नहीं, आनन्द है; जहां कुछ भी

प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं—सब कुछ प्राप्त है। इस पृथ्वी-तल पर दाम्पत्य जीवन में यह प्रेम किस महाभाग ने प्राप्त किया ?

गौतम ने यशोधरा का आंचल खींचकर कहा—गोपा प्रिये ! अब बस करो, चंगेरी तो भर चुकी। अब इन पुष्पों को लताओं में इसी तरह विकसित छोड़ दो। ये कल तक तो खिले रह सकेंगे ? देखो जिन डालियों के पुष्प तुम तोड़ चुकी हो वे कितनी अशोभनीय हो गई हैं ?

'होने दो, आर्यपुत्र ! ये कल फिर फूलों से लद जाएंगी। यह तो प्रकृति का स्वभाव है। आप व्यर्थ ही इतना विषाद करते हैं।'

'व्यर्थ ? नहीं प्रिये ! इन कुसुम-लतिकाओं के प्रति तुम्हारा आचरण नितान्त निष्ठुर है। अभी प्रातःकाल तो तुम इन्हें अपने हाथों सींच रही थीं—सो क्या इसीलिए ?'

'और नहीं तो क्या ? आर्यपुत्र क्या मुझे ऐसी ही निःस्वार्थ समझे बैठे हैं ?—मैंने सींचा है तो फूल भी चुनूंगी। यह तो जगत् की गति ही है। और यह निष्ठुर आचरण क्या इतना ही ? अभी तो मैं रुचि से गूंथकर माला बनाऊंगी। ये यूथिका, चम्पा और कुन्द क्या यों ही अस्त-व्यस्त चंगेरी में पड़े रहेंगे, जैसे आर्यपुत्र के विचार पड़े रहते हैं ?'

'उलाहना मत दो प्रिये ? तुम्हें तो उदार होना ही चाहिए। तुम राजनन्दिनी हो, हाय हाय ! क्या तुम इन कोमल पुष्पों को सुई से विद्ध भी करोगी ?'

'आर्यपुत्र ! देखते रहें, मैं एक-एक को विद्ध करूंगी। मैं राजनन्दिनी हूं, पालन करना, कर ग्रहण करना और दण्ड-भय से शासन और सुव्यवस्था बनाए रखना मेरा कर्तव्य है। जल-सिंचन करके मैंने पालन किया, पुष्पचयन करके कर ग्रहण कर रही हूं, और अब सूची-शस्त्र के बल से सुव्यवस्थित करके माला बनाऊंगी। फिर आर्यपुत्र के वक्षस्थल पर वह सुशोभित होगी। और मेरे परिश्रम का वेतन मुझे प्राप्त होगा,'—इतना कहकर गोपा हंस पड़ी।

महाराजकुमार सिद्धार्थ ने उसे दृढ़ता से पकड़कर कहा—पर मैं विद्रोह करूंगा, अब मैं तुम्हें अधिक यह कर-शोषण नहीं करने दूंगा, प्रिये ! चाहो तो मुझे दण्ड दो।

'अच्छी बात है ? मैं तुम्हें बांधकर डाले देती हूं।'

इतना कहकर गोपा ने अपने दृढ़ भुज-पाश में कुमार को बांध लिया।

महाराजकुमार के अन्तस्तल में सदैव जागरित प्रबुद्ध सत्ता उस मद से क्षण भर को मूर्छित हो गई। उन्होंने पत्नी-श्रेष्ठ को प्रगाढ़ आलिंगन करके चुम्बन किया।

गोपा ने हंसकर कहा—आर्यपुत्र ! स्मरण रखें कि यह अनुग्रह वेतन में नहीं काटा जाय, पुरस्कारमात्र समझा जाय ?

राजकुमार हंस पड़े। उन्होंने कहा—गोपा प्रिये ! उस दिन तो तुम इतनी चपला न थीं, जिस दिन भाण्ड-वितरण······

'आर्यपुत्र के पास इसी बात का क्या प्रमाण है कि मैं बालिका हूं ?' गोपा ने बात काटकर कहा।

'वही तो हो प्रिये ! यह नेत्र और यह अधरोष्ठ, इन्हें क्या मैं भूल जाऊंगा ? ओह, इन्हींने तो मुझे ठगा।'

राजकुमार मानो एक गम्भीर चिन्तन में पड़ गए।

गोपा ने ब्याज कोप से कहा—आर्यपुत्र को भ्रम हुआ है। वे थीं राजनन्दिनी यशोधरा—कोलकुमारी, और मैं हूं भगवती गोपा—शाक्यसिंहासन की युवराज्ञी।

'अच्छा अच्छा प्रिये ! अब चलो, प्रासाद में चलें, सूर्य अस्त हो रहा है ; तुम्हें शीत का भय है।'

'जो आज्ञा आर्यपुत्र !'

'अर्द्धरात्रि तो कब की व्यतीत हो गई। त्रिशिरा नक्षत्र आकाश के मध्य-भाग में आ गए। आर्यपुत्र क्या शयन न करेंगे ?'

'ओह प्रिये ! तुम अभी तक जाग रही हो ?'

'सारा संसार मोहमयी निद्रा में शयन कर रहा है।'

'हाय ! यह कैसे दुःख का विषय है ?'

'कैसा घोर अन्धकार है ?'

'पर मेरा हृदय प्रकाशित है।'

'मेरे प्रभु ! तुम्हारे इतने निकट होने पर भी मैं उस प्रकाश की एक किरण भी नहीं देखती।'

'मैं उसे संसार के प्राणिमात्र को दिखाने की बात सोच रहा हूं प्रिये।'

'इस स्तब्ध अन्ध निशा में ?'

'अन्ध निशा तो मानवहृदय में ओतप्रोत है। तुम समझती हो जब सूर्योदय होगा, तब वह छिन्न-भिन्न हो जाएगी ?'

'मैं मूर्ख स्त्री और क्या सोचूंगी ?'

'नहीं गोपा, आत्मप्रतारणा की आवश्यकता नहीं ; पर इस बात को तो सोचो। मानव-आत्मा न जाने कब से उसी प्रकार से सो रही है जैसे इस समय संसार। और वह उसी प्रकार अन्धकार में व्याप्त है जैसे इस समय पृथ्वी। यह निद्रा और अन्धकार कुछ समय में दूर हो जाएगा, उषा का उदय होगा, जगत् सुन्दर हो जाएगा, प्रकृति भांति-भांति के रंग का शृंगार करेगी, आलोक से आकाश और भूलोक शोभायमान होगा, आह ! कैसी सुन्दर बात है, परन्तु मानव-हृदय का अन्धकार और सुषुप्ति तब भी दूर न होगी। यह अक्षय अन्धकार, यह चिर-मोह-निद्रा मनुष्य पर शाप है। मनुष्य-जाति के इस दुर्भाग्य पर तुम्हें करुणा नहीं आती ?'

'और इस अनन्त मानव-समुदाय में अकेले आर्यपुत्र जागरित हैं ?'

'प्रिये ! व्यंग्य क्यों करती हो ?'

'अच्छा, आर्यपुत्र ! इस अन्धकार में जागरित होकर किस सौभाग्य की आशा करते हैं ? इस अन्धकार में तो जागरित पुरुष की अपेक्षा सुख से सोए पुरुष ही अधिक भाग्यशाली हैं ?'

कुमार ने उत्तेजित होकर गोपा का हाथ पकड़ लिया। कहा—किन्तु, यदि उनका कभी प्रभात न हो तो ? उस निद्रा का कभी अवसान न हो तो ?

गोपा विचलित हुई, निरुत्तर हुई। वह पति के निकट बैठकर कुछ सोचने लगी।

सिद्धार्थ ने कहा—प्रिये ! यदि मैं अपने प्रकाश की रेखा से इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सकूं ? जागरित होकर मानव-समाज सुन्दर आलोक देखे तो, गोपा ? क्या हमारा जीवन धन्य न होगा ?

'अवश्य।'—गोपा ने दृढ़ता से कुमार का हाथ पकड़कर कहा।

'तब इसके लिए हृदय विदीर्ण करना पड़ेगा।'

'विदीर्ण ?'

सिद्धार्थ कुछ न बोले। दोनों महाप्राण आन्दोलित हो रहे थे। 'हृदय

विदीर्ण करना होगा ?'···गोपा का माथा घूमने लगा। वह ज़ोर से कुमार का आलिंगन करके रोने लगी। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह न सकती थी; वह बहुत दिन से एक आशङ्का को मन से दूर करने की चेष्टा कर रही थी, पर कर नहीं सकती थी। कुमार के भाव को वह कुछ समझ न सकी, पर 'हृदय विदीर्ण' होने की भावना वह सह न सकी—वह पति के वक्ष-स्थल पर गिरकर फूट-फूटकर रो उठी।

एक बार महाराजकुमार की अन्तर्हित प्रबुद्ध सत्ता फिर मूर्छित हुई। उन्होंने गोपा को गाढ़ा आलिंगन करके बारम्बार उसका चुम्बन किया। धीरे-धीरे दोनों प्राणी शयनकक्ष की ओर चले गए।

'देखो प्रिये, यह क्या हो रहा है ?' कुमार ने मुर्झाकर डाली पर झुके एक पुष्प की ओर संकेत करके कहा।

गोपा ने देखा और वह आश्चर्य-चकित हो कुमार की तरफ देखकर बोली—आर्यपुत्र का अभिप्राय क्या है ?

'अभी कुछ देर पूर्व सूर्य की किरणों ने इस पुष्प को छुआ, यह खिल पड़ा। सूर्य तो अस्त हो रहा है, और यह मुर्झा रहा है; अब यह सूखकर झड़ जाएगा।' यह कहकर उन्होंने पत्नी की ओर देखा।

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा को एकटक देख रही थी। कुमार ने फिर कहा—गोपा प्रिये ! मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही है। उनकी दृष्टि गोपा के मुख से हटकर एक बार दोलायमान हुई और फिर वह दूर क्षितिज पर डूबते हुए सूर्य पर अटक गई। मुख पर कुछ हास्य-रेखा आई, पर वह गई नहीं। वे जड़वत् वैसे ही बैठे रहे।

गोपा घबरा गई। उसने कहा—आर्यपुत्र अब और क्या विचार रहे हैं ?

कुमार ने चौंककर कहा—ओह कुछ भी तो नहीं, प्रिये ! आज मैं नगर में गया था। वहां मैंने राजपथ पर एक पुरुष देखा, वह एक लाठी के सहारे बड़े कष्ट से चल रहा था। उसके नेत्र इतने विभ्रम थे कि उनकी अपेक्षा नेत्र न होते तो हानि न थी; दांत सभी गिर गए थे। उससे उसका मुख तो विकृत हो ही गया था, वाणी भी अस्पष्ट हो गई थी; उसकी खाल काली होकर लटक गई थी। और हड्डियां चमक रही थीं। उसका अंग-अंग कांप रहा था। वह बड़े चाव से

मेरी ओर देख रहा था। मैं उसके निकट गया। उसने कांपते-कांपते हाथ ऊपर उठाकर मेरा अभिवादन किया और कहा—कुमार! एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुन्दर था और एक दिन तुम भी ऐसे ही हो जाओगे। मैंने सोचकर देखा। प्रिये! उसका कथन सत्य हो सकता है।

गोपा कुमार की ओर देखती रही; उसके होंठ कांपकर रह गए। कुमार बोले—कुछ आगे चलने पर एक और हृदयद्रावक दृश्य देखा। एक पुरुष को लोग उठाकर ले जा रहे थे। मैंने उन्हें रोककर पूछा : यह क्या है? उन्होंने कहा : यह मर गया है। मैंने उसे देखा, वह न हिल सकता था, न बोल सकता था; उसमें प्राण नहीं था। वे उसे भस्म करने को ले जा रहे थे। एक ने कहा : अन्त में सभी को ऐसा होना पड़ेगा।

राजकुमार हठात् उठ खड़े हुए। उन्होंने शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखा। उनके हृदय को मानो कोई ज़ोर से मन्थन कर रहा था। उन्होंने कातर कण्ठ से गुनगुनाकर कहा—वह कैसी भयानक दशा है? राजा और रंक यहां विवश हैं? क्या इस दुःख से छूटने का कोई उपाय ही नहीं है? फिर तो ये सुख, राजप्रासाद, धन और अधिकार विडम्बना मात्र हैं? जब ये चिरस्थायी ही नहीं जब उस अवश्यम्भावी अवस्था के प्रतिकार में ये समर्थ ही नहीं तब?—उन्होंने ज़ोर से पुकारकर कहा—गोपा प्रिये! तब?

गोपा कुमार की मुख-मुद्रा और भाव-भङ्गी से डर गई। उसने त्रस्त स्वर में कहा—आर्यपुत्र, क्या सोच रहे हैं?

'प्रिये! कोई गूढ़ वस्तु कहीं छिपी है!'

'इस राज-सम्पदा से, अधिकारसत्ता से भी अधिक?'

'हां।'

'इस यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक?'

'हां।'

'आपकी इस चिरकिङ्करी से भी अधिक?'

'ओह, गोपा प्रिये, ठहरो! वह गूढ़ वस्तु हमें प्राप्त करनी चाहिए।'

'और वह है कहां?'

'मैं उसे ढूंढूंगा, वह मनुष्य मात्र के दुःख को दूर करने की तालिका होगी।' उनके होंठ फड़कने लगे और नेत्र उन्मीलित हो गए।

गोपा एक बार कम्पित हुई। उसने कुमार का हाथ पकड़कर उठाया और कहा—आर्य पुत्र ! नगर-निरीक्षण तो आपने किया, अब मेरी सारिका का निरीक्षण भी कीजिए। देखिए यह आपकी तरह मेरा नाम पुकारना सीख गई है। आज आपको उस मयूर के जोड़े को स्वयं भोजन कराना होगा। इसके सिवाय आज आप अन्धकार-निरीक्षण न कर सकेंगे ? अभी से शयन-कक्ष में रहना होगा।

बहुत चेष्टा करने पर उसके होठों पर हास्य आया। कुमार ने अन्यमनस्क होकर कहा—अच्छा प्रिये ! तुम्हारी ही बात रहे।

'पुत्र ! हे भगवान् ! यह नया बन्धन उत्पन्न हो गया ! गोपा क्या कम थी ? वह आनन्द और हास्य का मधुर अमृत एक क्षण भी मुझे नीरस नहीं रहने देना चाहता। परन्तु जो स्वभाव से नीरस है, वह सरस होगा कैसे ? गोपा के प्रेम-पाश को तोड़ने में मैं कितना बल लगा चुका, वह टूटा नहीं। अब यह पुत्र ? अरे ! कैसा सुन्दर है यह। इसे केवल एक बार देखने के लिए मैंने समस्त संयम नष्ट कर दिया। वह स्वर्ण की दीप्त कान्ति धारण करने वाला अर्द्धनिमीलित नेत्र, छोटा सा मुख, मानो मेरी ही एक सजीव छाया—मुझसे पृथक् परन्तु मेरे प्राणों की एक कोर ! मैंने प्राण दिया और गोपा ने शरीर। गोपा के समान ही सुन्दर और प्रिय, कोमल और रुचिर। अरे ! वह मेरा पुत्र है। हम दोनों के प्राण और शरीर जिस महायोग में एक राशि पर आए, वह इन्द्रियातीत आनन्द का आदान-प्रदान जिस क्षण हुआ, उसकी ऐसी स्थायी स्मृति ? गोपा ! जादूगरनी, यह क्या किया ? उस एक क्षण के करोड़वें हिस्से की आनन्द-लहर को तूने ऐसा स्थिर बना दिया ? मैंने उसे गोद में उठाया। गोपा का वह मूक अनुरोध और वह अप्रतिम उल्लास ? गोपा के नेत्रों में मानो उसके प्राण ही आ गए थे। उसने उसे मेरी गोद में दिया और मेरे चरण-चुम्बन किए—यह इतनी विनय क्यों ? तब की गोपा प्रिया अब मातृ-भाव में आप्लावित हुई ! अच्छा ठहरो, उसके नेत्र कैसे थे ? गोपा ने कहा था, ठीक मेरे जैसे ! अरे ! कहीं मैंने ही जन्म नहीं ले लिया ? नहीं तो उस अबोध बालक पर मेरी इतनी ममता क्यों होती ? मेरा उसका परिचय कबका है ?'

राजकुमार को कोमल शय्या पर नींद न आई। वे चुपचाप उठकर उपवन

में टहलने लगे। उनके विचारों में फिर उत्तेजना उत्पन्न हो गई। वे पुत्र की बात को सोचते-सोचते चिन्ता में मग्न हो गए— ऐं ! यह कैसा सुख, यह कैसा सौभाग्य, जिसमें निद्रा का भी नाश हो गया ? सारा संसार तो सो रहा है। यही तो चिन्तनीय विषय है, जो सुख है, वह भी दुःख का मूल है कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जो मानव-जीवन की इस कठिन व्याधि का उपाय जानता हो। राजकुमार एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठकर जीवन, मरण और उत्पत्ति के विचार में मग्न हो गए।

उस अभेद्य अन्धकार में मानो उनके दिव्य चक्षु खुल गए। उनसे उन्होंने देखा : संसार का सुख दुःखदायी, मृत्यु अनिवार्य और भवितव्य है, पर यह जानकर भी लोग अज्ञान के अन्धकार में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, और सत्य की खोज नहीं करते। कुमार का हृदय अगाध दया से भर गया।

हठात् राजकुमार ने देखा, सम्मुख वृक्ष के नीचे एक गम्भीर महापुरुष खड़े हैं। कुमार ने पूछा—तुम कौन हो ? और कहां से आते हो ?

'मैं श्रमण हूं, बुढ़ापे के दुःखों और रोगों की पीड़ा तथा मृत्यु के भय से मैं घर-द्वार का परित्याग करके निकला हूं; मैं मुक्ति का अन्वेषक हूं; क्योंकि संसार के सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, केवल सत्य ही सदा साथ रहता है। प्रत्येक वस्तु बदलती रहती है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं है। मैं अक्षय आनन्द को चाहता हूं, मैंने संसार त्याग दिया है। मैं भिक्षा मांगकर खा लेता हूं। मैंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, मैं अपने उद्देश्य में तत्पर हूं।'

'मैं भी इन्द्रियों के विषयों की निस्सारता को अच्छी तरह समझ गया हूं। मुझे भोग से घृणा हो गई है। मेरा जीवन मुझे शून्य दीखता है। क्या तुम कह सकते हो कि इस अशान्त जगत् में कहीं शान्ति मिल सकती है ?'

'जहां उष्णता है वहां शीतलता भी है। पर महान् सुख के लिए महान् परिश्रम भी करना होगा। पापविद्ध व्याकुल आत्मा को उस कल्याण-मार्ग का शोध करना चाहिए जो निर्वाण की ओर जाय। निर्वाण-सरोवर में स्नान करने से सारे पाप धुल जाएंगे।'

'आह ? तुम्हारा समाचार शुभ है। मेरे पिता और पत्नी मुझे राजकाज में लगाना चाहते हैं। वे घराने की कीर्ति के इच्छुक हैं, वे कहते हैं कि यह समय धर्मजीवी बनने के लिए उपयुक्त नहीं।'

'आह, यही समय है जब मोह का अन्धकार आत्मा पर छाया हुआ है।'

'महाश्रमण ! धर्मान्वेषण का समय आ गया, मैं उन सब बन्धनों को तोड़े डालता हूं जो धर्म-प्राप्ति में बाधक हैं।'

राजकुमार ने एक बार उच्च अट्टालिका की ओर देखा। श्रमण ने कहा—कुमार सिद्धार्थ ! तुम्हारी जय हो ! तुम महान् हो ! तुम तथागत हो ! देखो, सत्य को पराकाष्ठा तक पहुंचाना। जिस प्रकार सूर्य सब ऋतुओं में स्थिर होकर अपने नियमित मार्ग पर चलता है, उसी प्रकार तुम भी सत्य-पथ पर अटल रहना। तुम 'बुद्ध' होगे, तुम लक्षावधि मनुष्यों की बुद्धि को शुद्ध करोगे, तुम जगत् के पथ-प्रदर्शक होगे।

सिद्धार्थ ने देखा, महापुरुष यह कहते-कहते अन्तर्धान हो गए। वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—मैंने सत्य का साक्षात् कर लिया। मैं अब बन्धनों को तोड़ूंगा। मैं बुद्ध-पद प्राप्त करूंगा।

वे धीरे-धीरे गम्भीर चिन्तन करते हुए अलिन्द की ओर लौटे।

माता और पुत्र सुख-नींद में बेसुध सो रहे थे। गोपा के अरुण अधर पर हास्य की रेखा फैल रही थी, और उनके बीच कुन्दकली के समान दांत चमक रहे थे। वह किस सुख-स्वप्न को देख रही है ?—कुमार क्लान्त-भाव से खड़े-खड़े यही सोचने लगे। गोपा का एक हाथ शिशु के वक्ष पर था। उस सुगन्धित कक्ष में शिशु का छोटा किन्तु अतिमनभावन मुख दीप्त हो रहा था। सिद्धार्थ का हृदय भर आया। उन्होंने प्रण किया : मैं संकल्प पर स्थिर रहूंगा। फिर भी उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। वे बोले—और यह शोकावेग कितना दुर्धर्ष है? इस धारा के वेग को रोकना कितना कठिन है ? कुमार आगे बढ़कर शय्या के पास घुटनों के बल बैठ गए। एक बार उन्होंने शिशु का मुंह चूमने का उपक्रम किया, पर जागने के भय से वे वैसे ही बैठे रहे। गोपा की सुख-निद्रा पर उनकी दृष्टि थी। अश्रु वेग से उमड़ रहे थे। अन्त में उन्होंने हृदय में वह साहस सञ्चित किया जो पृथ्वी पर कभी किसी तरुण ने नहीं किया था। वे धीरे से उठे। उन्होंने दोनों हाथों की मुट्ठी बांधकर आकाश में स्तब्ध तारागणों की ओर देखा, और फिर एक दृष्टि गोपा के स्निग्ध यौवन और शिशु के अज्ञात मोह पर डाली और चल दिए।

पृथ्वी पर अंधकार छा रहा था। उन्होंने फाटक पर आकर देखा, चन्न उपस्थित है।

'चन्न, क्या तुम जागरित हो?'

'परम परमेश्वर महाभट्टारकपादीय युवराज की जय हो?'

'चन्न, एक घोड़ा तो ले आओ।'

'जो आज्ञा।'

तारों के क्षीण प्रकाश में वह महान् राजकुमार राजपाट, सुख-भोग और ऐश्वर्य पर लात मारकर महान् प्रकाश की खोज में जा रहा था।

'चन्न! बस, अब आवश्यकता नहीं। तुम घोड़ा लेकर राजधानी लौट जाओ।'

'स्वामिन्, मैं आपको प्राण रहते न छोड़ूंगा।'

'चन्न! लो ये बहुमूल्य वस्त्र भी तुम ले जाओ। अब कहो: तुम्हारा स्वामी कौन है?'

'महाराज-युवराज! यह आप क्या कह रहे हैं?'

'ठहरो।' युवराज ने तलवार से अपने सुन्दर केश-गुच्छ काटकर तलवार चन्न के सम्मुख रखकर कहा—लो इसे भी संभालो।

चन्न धरती पर गिरकर रोने लगा। वह बोला—प्रभु! मैं कदापि-कदापि न जाऊंगा।

'चन्न! वत्स! हठ मत करो। शोक भी मत करो, आनन्दित हो। मैं सत्य की खोज में जा रहा हूं। मैं जगत् को आनन्द प्रदान करूंगा। जाओ वत्स! पिताजी और गोपा को धैर्य प्रदान करना।'

एक आन्तरिक तेज से दीप्त पुरुष की तरह सिद्धार्थ चल दिए। चन्न पछाड़ खाकर गिर पड़ा। सिद्धार्थ के नेत्र सत्य के प्रचण्ड उत्साह से देदीप्यमान हो रहे थे। उनका यौवन-सौन्दर्य उस पवित्र तेज में परिवर्तित हो गया था, जो उनके श्रीमुख पर दृष्टिगोचर हो रहा था।

राजगृह महानगरी जनपूर्ण हो रही थी। प्रतापी बिम्बसार वहां के सम्राट् थे। जब मध्याह्नकाल होता—गृहस्थ भोजन कर चुकते—वीतरागी सिद्धार्थ

भिक्षा-पात्र हाथ में लिए नगर की गलियों में भिक्षा मांगने निकलते। वह प्रभावान् मुखमण्डल, विनम्र गति, पृथ्वी पर झुके हुए नेत्र और ओष्ठसम्पुट से मृदुध्वनि से निकलने वाला 'कल्याण' शब्द नगरवासियों के लिए अपूर्व था। वे प्रत्येक घर से एक ग्रास भोजन ग्रहण करते थे, और बारह ग्रास लेकर नगर के बाहर चले जाते थे। जनपथ और राज-पथ पर उनके पीछे भीड़ लगी रहती। आबाल वृद्ध उनके लिए मार्ग छोड़ देते, उनके भिक्षा-पात्र में ग्रास डालकर कृतार्थ होते, और सोचते : कोई महान् मुनि नगर में आए हैं।

सम्राट् बिम्बसार ने सुनकर गुप्तचरों के द्वारा जाना कि शाक्यवंश का राजपुत्र राजपाट त्याग वनवासी हुआ है। वह राजकीय वस्त्र पहन, स्वर्णमुकुट सिर पर धारण कर, अमात्यों सहित उससे मिलने आया। मुनि सिद्धार्थ वृक्ष के नीचे गम्भीर मुख-मुद्रा किए बैठे थे। बिम्बसार ने प्रणाम कर कहा—आपके हाथ में राज्य-रश्मि शोभा देती है, भिक्षा-पात्र नहीं। आपका तारुण्य इस तपस्या के योग्य नहीं। श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों को शक्ति-सम्पन्न होना चाहिए। धर्म खोकर धनी होना उत्तम नहीं, पर धन, धर्म और बल को प्राप्त कर जो इन्हें दूरदर्शिता से भोग करे वह मेरा गुरु है।

मुनि सिद्धार्थ ने आंख उठाकर सम्राट् को देखा और कहा—राजन् ? आप धार्मिक और विवेकी हैं, आपका कथन सत्य है; पर मैं सारे बन्धनों से पृथक् हो चुका हूं। क्योंकि मैं निर्माण का इच्छुक हूं। जिसे उस सच्चे ज्ञान की अभिलाषा है, उसे उन सब बातों से विरक्त हो जाना चाहिए जो उसके चित्त को अपनी ओर खींचती हैं। उसके लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अधिकार और वासनाओं का त्याग करना परमावश्यक है। मैंने वैभव की असारता को समझ लिया है, और अब मैं अमृत के धोखे विष-पान नहीं करूंगा। सम्राट्! आप मुझपर करुणा करने का कष्ट न उठाइए। करुणा के पात्र वे हैं जो संसार की चिन्ता में दिन-रात व्याकुल रहते हैं, जिनके हृदय में न शान्ति है और न मन में एकाग्रता। हे राजन्, कहिए तो, एक राजा और भिक्षुक की मृतक देह में क्या अन्तर है?

सम्राट् बिम्बसार ने बद्धाञ्जलि होकर प्रणाम किया और कहा—हे त्यागी! आप धन्य हैं! आपकी कामना पूर्ण हो। परन्तु आप पूर्ण बुद्ध होने पर एक बार मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर कृतार्थ अवश्य करें।

मुनि सिद्धार्थ ने सम्राट् की प्रार्थना को स्वीकार किया।

'हे विद्वानो ! क्या आप ही प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता आराद और उदरक हैं ! मैं आपसे आत्मा के विषय की जिज्ञासा करने आया हूं !'

'हे मुनि ! हम वही हैं। तुम्हें जो संशय हो, कहो।'

'मैं यह जानना चाहता हूं कि आत्मा क्या है ?'

'आत्मा वह है जो देखता, चखता, सूंघता और छूता है; फिर भी वह न तुम्हारा शरीर है न आंख, कान, नाक और न मुख। आत्मा वह है जो त्वचा द्वारा छूता है, जिह्वा से रस लेता है, आंख से देखता, और कान से सुनता है।'

'हे विद्वानो ! आत्मा की मुक्ति क्या है ?'

'जिस प्रकार पक्षी पिंजरे से छूटकर स्वतन्त्रता प्राप्त करता है, उसी प्रकार आत्मा सब बन्धनों और उपाधियों से छूटने पर मुक्त हो जाता है।'

'परन्तु क्या उष्णता अग्नि से भिन्न है ? मनुष्य रूप, रस, बासना, संस्कार, बुद्धि, चित्त आदि का सङ्घात है; यही सङ्घात तो 'मैं' है; वही 'मैं' तो आत्मा है। तब वह भिन्न सत्ता कैसे हुई ? और जब तक वह 'अहं' शेष है, तब तक तुम्हारी वास्तविक मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।'

'परन्तु मुनि ! क्या तुम अपने चारों ओर कर्म-फल को नहीं देखते ? वह कौन सी बात है जिसने मनुष्यों के आचार, विचार, अधिकार, जाति और वैभव में भिन्नता उत्पन्न कर दी है ? वह कर्म-फल ही तो है।'

'कर्म-फल तो है ही, पर आत्मवाद का आधार क्या है ? संसार में कोई काम, वस्तु, फल या विचार नहीं हो सकता, यदि उसके पूर्व उसका कारण विद्यमान् न हो। किसान जो बोवेगा, फसल पर वही काटेगा। परन्तु 'अहं' की भिन्न सत्ता और उसका शरीरोत्तर गमन, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? क्या मेरी व्यक्ति-विशेषता प्रवृत्ति और मन—दोनों का संघात नहीं है ? क्या मेरे व्यक्ति-वैशिष्ट्य में शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियां सम्मिलित नहीं हैं ? यदि किसी मनुष्य के अन्दर से भूख-प्यास, चलना, फिरना, रोना-हंसना आदि निकाल दिए जाएं तो फिर उसकी मनुष्यता की क्या सार्थकता रह गई ? इन प्राकृत और दैहिक बातों के बिना मनुष्य यथार्थ में क्या है ? जिस प्रकार कल का 'मैं' आज के 'मैं' का पूर्वज है, और कल के 'मैं' ने आज के 'मैं' में जन्म लिया है,

एवं आज का 'मैं' कल के 'मैं' में फिर जन्म लेगा, उसी प्रकार पूर्व-जन्मों का अनादि प्रवाह चल रहा है।'

'हे मुनि ! तुम अभी मूर्ख हो।'

'हे विद्वानो ! तुम अभी मनन करो।'

कुमार सिद्धार्थ वहां से चल दिए। उस बिल्व-वन में पांच तपस्वी कठोर तप कर रहे थे। मुनि सिद्धार्थ ने भी तप करना शुरू किया। छह वर्ष के कठोर तप से उनका शरीर सूखकर लकड़ी के समान हो गया, वे मृतप्राय हो रहे थे, परन्तु उन्होंने सोचा—खेद है कि इन उपवासों और व्रतों से मुझे कुछ भी शान्ति नहीं मिली। यह सब मिथ्या है। वे उठे, उन्होंने स्नान किया, परन्तु दुर्बलता के कारण गिर पड़े। गोप-कन्या नन्दा ने दया कर उन्हें खीर दी, जिससे उनके शरीर में बल का संचय हुआ। वे तपश्चर्या छोड़कर धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। अन्ततः वहां से भी चल दिए।

बोधि-वृक्ष निकट आ गया। मुनि ने उसे देखा। पृथ्वी कम्पायमान होने लगी। जगत् में प्रकाश छा गया। मार—जो विषयों का पोषक, और मृत्यु का प्रेरक है, तथा सत्य का शत्रु है—आया। उसकी तीनों लुभावनी पुत्रियां अपनी राक्षसी सेना के साथ थीं। सम्मुख आए मार ने भयानक गर्जना की। मुनि बोधि-वृक्ष के नीचे शान्त बैठे रहे। उसकी तीनों पुत्रियों ने उनपर बाण फेंके। पर प्रबल जितेन्द्रिय के हृदय में कोई तामसी इच्छा न उत्पन्न हुई। तब समस्त दुष्ट आत्माओं ने उनपर एकसाथ आक्रमण किया, पर नारकीय ज्वालाएं सुगन्धित पवन के झोंकों में परिवर्तित हो गईं, वज्रपात ने कमल पुष्प का रूप धारण कर लिया। मार पराजित होकर भागा। एक अलौकिक तेज दिशाओं में व्याप्त हो गया।

मुनि सिद्धार्थ ध्यान-मग्न थे। वे संसार की विपत्तियों, कष्टों और दुष्कर्मों के बुरे परिणामों को प्रत्यक्ष देख रहे थे। वे सोच रहे थे—संसार की यह कैसी विचित्र गति है ? वे एकाएक बोल उठे—धर्म सत्य है, धर्म ही मनुष्य को अज्ञान, पाप और दुःखों से बचाता है। जीवन-विकास की बारह कड़ियां हैं, जिन्हें द्वादश निदान कहते हैं। सत्यचतुष्टय ये हैं—(१) दुःख, (२) दुःख का कारण, (३) दुःखों की समाप्ति, (४) अष्टांग मार्ग (जिनपर चलने से दुःखों का नाश होगा)। मुनि सिद्धार्थ इस सिद्धान्त को प्राप्त करके बुद्ध हो गए। वे बोले—

धन्य है वह जिसने धर्म को समझ लिया। धन्य है वह जो किसीको हानि नहीं पहुंचाता। धन्य है वह जिसने पापों पर विजय प्राप्त की है! वही महा-पुरुष है—ज्ञानी है, बुद्ध है।

बुद्ध इन सिद्धान्तों की प्राप्ति से उदीयमान तेज से दिप रहे थे। वे शान्त और गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। दो व्यक्तियों ने आकर उनके चरणों में सिर रख दिया।

'हे मनुष्यो! तुम्हारा कल्याण हो! तुम कौन हो?'

'हे प्रभु, मेरा नाम तपुस है और इसका मल्लिका; हम व्यापारी हैं। यह चावल की रोटी और शहद हमारे पास है; इसे ग्रहण कर कृतार्थ करें।'

'हे सज्जनो! मैंने तुम्हारा भोजन ग्रहण किया। बुद्ध-पद प्राप्त होने पर यह मेरा प्रथम भोजन हुआ। हे धर्मात्माओ! तुम तथागत बुद्ध के प्रथम शिष्य बने। तथागत बुद्ध का कथन है—जगत् का कोई अन्याय, अत्याचार और पाप स्वार्थ से रहित नहीं। सारे दोषों का मूल स्वार्थी मन के अन्दर है। पाप न धरती में है, न आकाश में; न हवा में, न पानी में; न रात में, न दिन में; वह स्वार्थी मनुष्य के मन में है। ज्ञान तो तभी मिल सकता है जब स्वार्थ की निस्सारता और अस्थिरता का पूर्ण ज्ञान हो जाय। मनुष्य उच्च और आदर्श जीवन तभी प्राप्त कर सकता है जब उसे यह निश्चय हो जाय कि स्वार्थ-त्याग के बिना कोई मनुष्य आत्मिक जीवन के पवित्र सुख को अनुभव नहीं कर सकता। यथार्थ सुख स्वार्थ-परायणता और विषय-भोग में नहीं है, कृत्रिमता और आडम्बर को दूर करने में है।'

इतना कहकर बुद्ध मौन हो गए। दोनों व्यापारियों ने चरणों में गिरकर कहा—हे प्रभु, हम बुद्ध की शरण हैं, हम बुद्ध के धर्म को ग्रहण करते हैं।

बुद्ध ने नेत्र उठाकर देखा, और दोनों हाथ ऊंचे करके कहा—कल्याण! कल्याण!!

मगध में हलचल मच गई थी। सभी की जिह्वा पर एक ही बात थी: शाक्य मुनि पतियों को बहकाकर पत्नियों से अलग करता है। वह वंशों का नाश करता है।

बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यों सहित राजगृह में पधारे थे। भिक्षु जब नगर में निकलते तब लोग कहते—देखें, अब किसकी बारी आती है!

सारिपुत्र और मौद्गलायन, अश्वजित्, आचार्य महाकश्यप और उनके भ्राता—सभी भगवान् बुद्ध के शिष्य हो गए थे। जो प्रख्यात और तत्त्वदर्शी था, राजगृह का वह महाधनपति यशस भी बुद्ध की शरण जा चुका था, और उसके महाधनवान् चारों मित्र, जो काशी में रहते थे, उसके अनुयायी वन चुके थे।

मगध के सम्राट् बुद्ध के दर्शन को पधारे। सहस्रावधि मनुष्य उनके साथ थे। वे लाखों की सम्पदा भेंट को लाए थे। राजा के साथ उसके सभी मन्त्री और सेनानायक थे। उन्होंने देखा: जटिलों के आचार्य महाकश्यप के साथ भगवान् बुद्ध बैठे हैं। सम्राट् ने चकित होकर सोचा कि शाक्य मुनि ने क्या कश्यप को अपना आध्यात्मिक गुरु माना है या कश्यप गौतम का शिष्य हो गया है?

बुद्ध ने सम्राट् के संशय को समझकर कहा—कश्यप! तुमने कौनसा ज्ञान प्राप्त किया है, और वह कौनसी बात है जिसने तुमको अग्नि-पूजा और कष्ट-दायक तपश्चर्या छोड़ने के लिए बाध्य किया है?

कश्यप ने कहा—अग्नि की उपासना से दुःखों और प्रपञ्चों के चक्र में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। अब मैंने इसे त्याग दिया है। तपस्याओं और पशु-बलिदानों के स्थान में मैं सर्वोच्च निर्वाण की प्राप्ति के लिए लगा हूं।

तब बुद्ध ने आंख उठाकर सम्राट् की ओर देखा और कहा—जो अपने 'अहं' रूप को जानता है, और समझता है कि इन्द्रियां अपने-अपने कार्यों को किस प्रकार करती हैं, वह स्वार्थ और अहंकार के फेर में नहीं पड़ता और अभय शान्ति उपलब्ध करता है। संसार को 'मैं' का ख्याल है। मेरा शरीर, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा रूप, मेरा शत्रु, उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे धोखा दिया, उसने मुझे बदनाम किया, इत्यादि संकल्प-विकल्प ही समस्त झूठे भयों और दुष्ट भावों के उत्पादक हैं। कोई कहते हैं कि यह 'मैं' मृत्यु के पश्चात् स्थिर रहता है। कोई कहता है, उसका अन्त हो जाता है परन्तु वे दोनों भूल पर हैं। इन्द्रियों का पदार्थों के सन्निकर्ष से ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे सूर्य की शक्ति से शीशे में अव्यक्त अग्नि व्यक्त हो जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियां और पदार्थों के

मिलने से स्मृति आदि का क्रमशः विकास होता है और चेतन शक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के बदलने से उस सत्ता का प्रादुर्भाव होता है जिसे 'अहं' कहते हैं। बीज से अंकुर फूटता है, परन्तु अंकुर से बीज नहीं फूटता। दोनों एक नहीं हैं। इस प्रकार 'अहं' एक भ्रम है, 'मैं' क्षणिक है। वह क्षण-क्षण में बदलता है। जो इस तत्त्व को समझेगा वह काम, क्रोध लोभ, मोह को क्षणिक परिणाम समझ, उन्हें दबाने की कोशिश करेगा। स्वार्थ की प्रबल प्रवृत्ति को रोको और फिर तुम मन की उस निश्चय अवस्था को प्राप्त करोगे जो पूर्ण शान्ति, परम पुरुषार्थ, और सत्य ज्ञान की दात्री है।

—माता जिस प्रकार बच्चे के लिए प्रतिक्षण आत्मबलिदान करती है, उसी प्रकार सत्य-ज्ञाता विवेकी को शुद्ध हृदय से परहित की सदा कामना करनी चाहिए। यह भावना जितनी प्रौढ़ होगी उतना ही निर्वाण-पद निकट होगा। यही बौद्ध धर्म है।

बुद्ध जब उपदेश देकर शान्त हुए तब सम्राट् ने नतमस्तक होकर कहा—भगवन् ! जब मैं राजकुमार था तब पांच भावनाएं मेरे मन में थीं : (१) मैं राजा होऊं, वह पूरी हुई; (२) पवित्रात्मा बुद्ध मेरे ही शासन-काल में मेरे राज्य में पधारें, वह भी पूरी हुई; (३) मैं उनकी सेवा में उपस्थित होकर उनका सत्कार करूं, यह भी पूर्ण हुई; (४) मैं भगवान् का पवित्र उपदेश सुनूं, यह भी पूरी हुई; (५) मैं भगवान् के धर्म को समझ सकूं, वह भी पूर्ण हुई। प्रभो ! आपका सत्य महान् है। आप उस बात को स्थापित करते हैं जो अब तक अस्त-व्यस्त रही है। आपने उसे व्यक्त किया जो अब तक अव्यक्त था। आपने उन्हें मार्ग बताया जो अब तक भटके थे। आप अन्धकार में पड़े हुओं के लिए दीपक जलाते हैं। आज मैं बुद्ध की शरण लेता हूं ; संघ की शरण लेता हूं ; धर्म की शरण लेता हूं।

बुद्ध ने कृपा-दृष्टि से सम्राट् को देखा और समस्त उपस्थित मण्डल बुद्ध-धर्म में दीक्षित हो गया।

कपिलवस्तु में उल्लास था। पिता का आतिथ्य स्वीकार करने भगवान् बुद्ध ७ वर्ष बाद लौटे हैं। महाराज शुद्धोदन अपने मन्त्रिगण-सहित स्वागत को आए। वे अपने पुत्र के तेज और सौन्दर्य को दूर से देख गद्गद हो गए। उन्होंने मन

ही मन कहा—निस्सन्देह यह मेरा पुत्र है। कुमार सिद्धार्थ का ऐसा ही रूप-रंग था। परन्तु यह महामुनि अब सिद्धार्थ नहीं रहा। वह बुद्ध है, पवित्रात्मा है, सत्य का स्वामी और मनुष्यों का शिक्षक है।

वे रथ से उतर पड़े और आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—आज ७ वर्ष बाद मैंने तुम्हें देखा है। क्या तुम जानते हो कि तुम्हें देखने की मुझे कितनी इच्छा थी ?

प्रणाम करके बुद्ध पिता के पास बैठ गए। राजा के जी में आया कि उनका नाम लेकर पुकारें। पर साहस न हुआ।

वे मानो मन ही मन कह रहे थे—पुत्र सिद्धार्थ ! आ और पिता के पास पुत्र की भांति रह। अन्त में उन्होंने कहा—मैं यह सारा राजपाट तुम्हें सौंपना चाहता था ; पर देखता हूं, राज्य को तुम तुच्छ समझते हो।

बुद्ध ने कहा—पिता ! आपका हृदय प्रेमपूर्ण है, पर आपका जितना प्रेम मुझपर है, उतना ही यदि प्रजा पर भी हो तो आपको सिद्धार्थ से बढ़कर पुत्र मिल सकते हैं। आप मेरे लिए मन से पुत्र-भाव निकाल डालिए। यदि आप अपने सामने उसे बुद्ध (ज्ञानी) देखेंगे जो सत्य का शिक्षक और सदाचार का प्रचारक है तो आपको निर्वाण की शान्ति प्राप्त होगी। राजा पुत्र की यह वाणी सुनकर आह्लादित हो गए। वे आंसू भरकर कहने लगे—आश्चर्यजनक परिवर्तन है। इस परिवर्तन से हृदय को दुःख और व्याकुलता नहीं होती। पहले मैं शोकपूर्ण था, मानो मेरा हृदय फट जाएगा। अब मैं प्रसन्न हूं। तुमने जगत् के लिए राज्य-सुख त्यागा। अच्छा, तुम संसार में अष्टाङ्ग मार्ग का प्रचार करो।

प्रातःकाल भगवान् बुद्ध भिक्षा-पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिए चले। नगर में हाहाकार मच गया। रथ और हाथियों पर सवार होकर जो पुरुष रत्न बिखेरता था, वह नंगे पैर घर-घर एक ग्रास अन्न मांगता है।

राजा ने कहा—वत्स गौतम ! ऐसा न करो, मैं तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर दूंगा।

'पर यह हमारी धर्म-परिपाटी है।'

'पर तुम उस राजवंश के हो जिसने कभी भिक्षा नहीं मांगी।'

'मैं उस बुद्ध वंश में हूं जो सदा भिक्षा-वृत्ति पर सन्तोष करता आया है।'

राजा अवाक् हो, उन्हें राजमहल में ले आए। राजमन्त्रियों और अन्तःपुर की स्त्रियों ने बुद्ध की अर्चना की।

बुद्ध ने पूछा—गोपा कहां है ? वह क्यों नहीं आई ?

एक दासी ने बद्धाञ्जलि होकर कहा—स्वामिन्, वे कहती हैं, भगवान् को स्वयं ही उनके पास आना चाहिए।

बुद्ध तत्क्षण उठकर चल दिए। चार प्रमुख शिष्य उनके साथ थे। गोपा—आनन्द और प्रेम की मधुर लतिका गोपा—अपने सप्तवर्षीय पुत्र के साथ अपनी समस्त कटु स्मृतियों को कसकर छाती में छिपाए, उस महावीतरागी, अतीत प्रिय पति को धरती पर दृष्टि दिए अपने कक्ष में आते देख रही थी। द्वार के निकट पहुंच बुद्ध ने अपने शिष्य सारिपुत्र मौद्गलायन से कहा—मैं तो माया-पाश से मुक्त हुआ, पर यशोधरा अभी बद्ध है। उसने मुझे चिरकाल से नहीं देखा। वह वियोग से व्याकुल है। यदि मिलन-अभिलाषा अब भी पूर्ण न होगी तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें सावधान किए देता हूं कि यदि वह मुझे छूना चाहे तो रोकना मत। सारिपुत्र मौद्गलायन ने विनम्र होकर कहा—जैसी भगवान् की आज्ञा।

वह मलिनवस्त्रा और धूलि-धूसरितवेशा, केशविहीना यशोधरा, मूर्तिमती, वियोग और विषाद की छाया चुपचाप खड़ी एकटक उन्हें देख रही थी। वह इस बात को भूल गई कि उसका पति अब जगद्गुरु और सत्य का अन्वेषक है। वह सम्मुख आते ही बुद्ध के पैर पकड़, फूट-फूटकर रोने लगी। जब वह प्रकृतिस्थ हुई तब उसने श्वसुर को देखा और हट गई। राजा ने कहा—यह उसका मनोवेग नहीं है, हृदयस्थ प्रकृत प्रेम के स्रोत का प्रवाह है। जब उसे ज्ञात हुआ कि तुमने केश काट डाले हैं, तब उसने भी इसका अनुसरण किया। जब उसने सुना कि तुमने सभी भोजन त्याग दिए, तब उसने भी सब कुछ छोड़ दिया। यह मृत्पात्रों में खाती और भूमि पर सोती है। उससे बड़े-बड़े राजकुमारों ने विवाह की प्रार्थना की, तब उसने कहा—मेरे स्वामी का मुझपर पूर्ण अधिकार है, और मैं अब भी उनके चरणों की दासी हूं।

बुद्ध ने करुण एवं गम्भीर स्वर में कहा—कल्याण बुद्धे ! तुम धन्य हो। तुम बड़ी पुण्यात्मा हो। तुम्हारी पवित्रता, सुशीलता और भक्ति ने मुझे लाभ पहुंचाया है और मैं सत्य ज्ञान को उपलब्ध कर चुका हूं। तुम्हारा हार्दिक दुःख और शोक अवर्णनीय है। परन्तु तुमने जो आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने श्रेष्ठ और

शुद्धाचरण से प्राप्त की है, वह तुम्हारे समस्त दुःखों को आनन्द में परिवर्तित कर देगी।

यशोधरा ने धैर्य धारण कर मन के वेग को रोका। अब वह समझ गई कि यह महापुरुष मेरा पति नहीं, जगत् का महान् धर्मगुरु है। उसने दृढ़ता से कहा—हे स्वामी! पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार होता है। यह आपका पुत्र है। आपके पास चार खजाने हैं, उन्हें मैंने नहीं देखा; पर आप उन्हें अपने पुत्र को प्रदान करें। इतना कहकर उसने सप्तवर्षीय बालक को बुद्ध के चरणों में डाल दिया।

बुद्ध ने कहा—तुम्हारा मातृत्व धन्य है। तुम्हारे पुत्र को मैं ऐसा द्रव्य न दूंगा जो नाशवान् हो और जो उसे शोक और चिन्ता में डाले। मैं उसे चारों सत्य का भेद समझाऊंगा, यदि उसमें उन्हें धारण की योग्यता हुई।

बालक ने कहा—हे पिता! मैं योग्य बनूंगा।

'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो! तुम मेरे साथ आओ।'

बालक को अग्रसर कर बुद्ध लौट गए। गोपा अपने उस एक मात्र हृदयधन को भी गंवाकर ठगी-सी खड़ी रह गई।

एशिया के महासाम्राज्य उस बुद्ध के सत्य-कर्म के सम्मुख झुके और वह महान् धर्मात्मा पृथ्वी पर सदा के लिए अमर हो गया।

# भिक्षुराज

आचार्य द्वारा बौद्ध भूमि पर लिखित सब कहानियों में भिक्षुराज सर्वाधिक प्रसिद्ध और कहानी के टेकनिक की दृष्टि से परिपूर्ण कहानी है। कहानी में सम्राट् अशोक के तपस्वी पुत्र-पुत्री की यशोगाथा चित्रित है जो अत्यन्त भावशाली और सशक्त शैली में है।

मसीह के जन्म से २५० वर्ष प्रथम। ग्रीष्म की ऋतु थी और संध्या का समय, जबकि एक तरणी कांबोज के समुद्र-तट से दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे अनन्त सागर के गर्भ में प्रविष्ट हो रही थी।

इस क्षुद्र तरणी के द्वारा अनंत समुद्र की यात्रा करना भयंकर दुःसाहस था। वह तरणी हल्के, किंतु दृढ़ काष्ठफलकों को चर्म-रज्जु से बांधकर और बीच में बांस का बंध देकर बनाई गई थी, और ऊपर चर्म मढ़ दिया गया था। वह बहुत छोटी और हल्की थी, पानी पर अधर तैर रही थी, और पक्षी की तरह समुद्र की तरंगों पर तीव्र गति से उड़ी चली जा रही थी। तरणी में एक ओर कुछ खाद्य पदार्थ मृद्भांडों में धरा था, जिनका मुख वस्त्र से बंधा हुआ था। निकट ही बड़े-बड़े पिटारों में भूर्ज-पत्र पर लिखित ग्रंथ भर रहे थे।

तरणी के बीचोंबीच बारह मनुष्य बैठे थे। प्रत्येक के हाथ में एक-एक पतवार थी, और वह उसे प्रबल वायु के प्रवाह के विपरीत दृढ़ता से पकड़े हुए था। उनके वस्त्र पीतवर्ण थे, और सिर मुंडित—प्रत्येक के आगे एक भिक्षा-पात्र धरा था। उनके पैरों में काष्ठ की पादुकाएं थीं।

तेरहवां एक और व्यक्ति था। उसका परिच्छद भी साथियों जैसा ही था। किन्तु उसकी मुख-मुद्रा, अन्तस्तेज और उज्ज्वल दृष्टि उसमें उसके साथियों से विशेषता उत्पन्न कर रही थी। उसकी दृष्टि में एक अद्भुत कोमलता थी, जो प्रायः पुरुषों में, विशेषकर युवकों में, नहीं पाई जाती। उसके मुख की गठन साफ और सुन्दर थी। उसके मुख पर दया, उदारता और विचारशीलता टपक रही थी।

वह सबसे ज़रा हटकर, पीछे की तरफ बैठा हुआ और उसका एक हाथ नाव की एक रस्सी पर था। उसकी दृष्टि सागर की चमकीली, तरंगित जल-राशि पर न थी। वह दृष्टि से परे किसी विशेष गम्भीर और विवेचनीय दृश्य को देख रहा था। उसका मुख समुद्र-तीर की उन हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों की ओर था, और उनके बीच में छिपते सूर्य को वह मानो स्थिर होकर देख रहा था। उसकी ठुड्डी उसके कन्धे पर धरी थी। कभी-कभी उसके हृदय से लम्बी श्वास निकलती और उसके होंठ फड़क जाते थे।

इसके निकट ही एक और मूर्ति चुपचाप पाषाण-प्रतिमा की भांति बैठी थी, जिसपर एकाएक दृष्टि ही नहीं पड़ती थी। उसके वस्त्र भी पूर्व-वर्णित पुरुषों के समान थे। परन्तु उसका रंग नवीन केले के पत्ते के समान था। उसके सिर पर एक पीत वस्त्र बंधा था, पर उसके बीच से उसके घुंघराले और चमकीले काले बाल चमक रहे थे। उसके नेत्र शुक्र नक्षत्र की भांति स्वच्छ और चंचल थे। उसका अरुण अधर और अनिंद्य सुन्दर मुख-मण्डल सुधावर्षी चन्द्र की स्पर्धा कर रहा था। वास्तव में वह पुरुष नहीं, बालिका थी। वह पीछे की ओर दृष्टि किए उन क्षण-क्षण में दूर होती उपत्यका और पर्वत-श्रेणियों को करुण और डब-डबाई आंखों से देख रही थी, मानो वह उन चिरपरिचित स्थलों को सदैव के लिए त्याग रही थी। मानो उन पर्वतों के निकट उसका घर था, जहां वह बड़ी हुई, खेली। वह वहां से कभी पृथक् न हुई, और आज जा रही थी सुदूर अज्ञात देश को, जहां से लौटने की आशा ही न थी।

यह युवक और युवती ससागरा पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् मगधपति प्रिय-दर्शी अशोक के पुत्र महाभट्टारकपादीय महाकुमार महेन्द्र और महाराजकुमारी संघमित्रा थे, और उनके साथी बौद्ध भिक्षु। ये दोनों धर्मात्मा, त्यागी, राज-संतति-आचार्य उपगुप्त की इच्छा से सुदूर सागरवर्ती सिंहलद्वीप में भिक्षुवृत्ति ग्रहण कर बौद्ध-धर्म का प्रचार करने जा रहे थे। महाराजकुमारी के दक्षिण हाथ में बोधि-वृक्ष की टहनी थी।

आकाश का प्रकाश और रंग घुल गया, और धीरे-धीरे अन्धकार ने चारों ओर से पृथ्वी को घेर लिया। बारहों मनुष्य नीरव अपना काम मुस्तैदी से कर रहे थे। क्वचित् ही कोई शब्द उनके मुख से निकलता हो, कदाचित् वे भी अपने

स्वामी की भांति भविष्य की चिंता में मग्न थे। इसके सिवा उस अचल एकनिष्ठ व्यक्ति के साथ बातचीत करना सरल न था।

अन्तत: पीछे का भू-भाग शीघ्र ही गम्भीर अन्धकार में छिप गया। कुमारी संघमित्रा ने एक लम्बी सांस खींचकर उधर से आंखें फेर लीं। एक बार बहन-भाई दोनों की दृष्टि मिली। इसके बाद महाकुमार ने उसकी ओर से दृष्टि फेर ली।

एक व्यक्ति ने विनम्र स्वर में कहा—स्वामिन्! क्या आप बहुत ही शोकातुर हैं? दूसरा व्यक्ति बीच में ही बोल उठा—

'क्यों नहीं, हम अपने पीछे जिन वनस्थली और दृश्यों को छोड़ आए हैं, अब उन्हें फिर देखने की इस जीवन में क्या आशा है? और, अब आज जिन मनुष्यों से मिलने को हम जा रहे हैं उनका हमें कुछ भी परिचय नहीं है। उनमें कौन हमारा सगा है? केवल अन्तरात्मा की एक बलवती आवाज़ से प्रेरित होकर हम वहां जा रहे हैं। आचार्य की आज्ञा के विरुद्ध हममें कौन निषेध कर सकता था।'

एक और व्यक्ति बोल उठा। उसकी आंखें चमकीली और चेहरा भरा हुआ एवं सुन्दर था। उसने कहा—जब तुम इस प्रकार खिन्न हो तब वहां चल ही क्यों रहे हो? अब भी लौटने का समय है। वह मुस्कराया। महाकुमार महेन्द्र ने मुस्कराकर मधुर स्वर से कहा—भाइयो! जब मैंने इस यात्रा का संकल्प किया था, तब तुमने क्यों मेरे साथ चलने और भले-बुरे में साथ देने का इतना हठ किया था। ऐसी क्या आपत्ति थी?

एक ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—स्वामिन्! हम आपको प्यार करते थे।

दूसरे ने मन्द हास्य से कहा—वाह! यह खूब जवाब दिया! मैं स्वामी को प्यार करता हूं, इसलिए उसकी जो आज्ञा होगी वह मानूंगा; जहां वह लिवा जाएगा, वहां जाऊंगा!—फिर गम्भीरतापूर्वक कहा—और मैं समझता हूं कि मैं उन अपरिचित मनुष्यों को भी प्यार करता हूं जो इस असीम समुद्र के उस पार रहते हैं।

यह कहकर उसने उस अंधकारावृत दक्षिण दिशा की ओर उंगली उठाई, जहां शून्य भय के सिवा कुछ दीखता न था। उसने फिर कहा—जो आत्मा के गहन विषयों से अनभिज्ञ है, जो तथागत के सिद्धान्तों को नहीं जान पाए हैं, जो

दुःख में मग्न अबोध संसारी हैं, उन्हें मैं प्यार करता हूं। तथागत की आज्ञा है कि उनपर अगाध करुणा करनी चाहिए। मेरा हृदय उनके प्रेम से ओतप्रोत है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमें बुला रहे हैं, चिरकाल से बुला रहे हैं। आह ! उन्हें हमारी अत्यन्त आवश्यकता है। वे भवसागर में डूब रहे हैं, चूंकि तथागत की ज्ञान-गरिमा से वे अज्ञात हैं। हम उन्हें अक्षय प्रकाश दिखाने जा रहे हैं। निस्सन्देह हमें कठिनाइयों और आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। हमारे पास रक्षा की कोई सामग्री नहीं और शस्त्र भी नहीं। फिर भी अहिंसा का महामोहास्त्र तो हमारे हाथ है जो अन्त में सबसे अधिक शक्तिशाली है।

यह धीमी और गंभीर आवाज़ उस अन्धकार को भेदन करके सब साथियों के कानों में पड़ी। मानो सुन्दर पर्वत-श्रेणियों से टकराकर हठात् उनके कानों में घुस गई हो। बारहों मनुष्यों में सन्नाटा छा गया, और सबने सिर झुका लिए। इन शब्दों की चमत्कारिक, मोहनी शक्ति से सभी मोहित हो गए।

दो घंटे व्यतीत हो गए। तरणी जल-तरंगों से आन्दोलित होती हुई उड़ी चली जा रही थी। राजनन्दिनी ने मौन भंग किया। कहा—भाई, क्या मैं अकेली उस द्वीप की समस्त स्त्रियों को श्रेष्ठ धर्म सिखा सकूंगी ?

महाराजकुमार ने मृदुल स्वर में कहा—आर्या संघमित्रा ! यहां तुम्हारा भाई कौन है ? क्या तथागत ने नहीं कहा है कि सभी सद्धर्मी भिक्षु-मात्र हैं।

'फिर भी महाभट्टारकपादीय महाराजकुमार······।'

'भिक्षु न कहीं का महाराज है, न महाराजकुमार।'

'अच्छा भिक्षु-श्रेष्ठ ! क्या मैं वहां की स्त्रियों के उद्धार में अकेली समर्थ होऊंगी ?'

'क्या तथागत अकेले न थे ? उन्होंने जंबु-महाद्वीप में कैसी क्रांति कर दी है।'

'किन्तु भिक्षुवर ! मैं अबला स्त्री······'

'तथागत की ओत-प्रोत आत्मा का क्या तुम्हारे हृदय में बल नहीं ?'

संघमित्रा ध्यान-मग्न हो गई।

एक मनुष्य बीच में ही बोल उठा—क्या हम लोग तीर के निकट आ गए हैं ? समुद्र की लहरें चट्टानों से टकरा रही हैं।

महाकुमार ने चिन्तित स्वर में कहा—अवश्य ही हम मार्ग भटक गए हैं,

और निकट ही कोई जल-गर्भस्थ चट्टान है। आप लोग सावधानी से तरणी का संचालन करें। इतना कहकर उसने एक दृष्टि चारों ओर डाली।

क्षण-भर वाद ही तरणी चट्टान से जा टकराई। कुमारी संघमित्रा औंधे मुंह गिर पड़ी, और समस्त सामग्री अस्त-व्यस्त हो गई। कुमार ने देखा, चट्टान जल से ऊपर है। वे उसपर कूद पड़े। खड़े होकर उन्होंने अनन्त जल-राशि को चारों ओर देखा। इसके वाद उन्होंने साथियों से संकेत करके, नीचे बुलाकर कहा—हमें यहीं रात काटनी होगी। प्रातःकाल क्या होता है, यह देखा जाएगा। सबने वहीं फलाहार किया, और उस ऊबड़-खावड़, उजाड़ और सुनसान, क्षुद्र चट्टान पर वे चौदह व्यक्ति विना किसी छांह के अपनी-अपनी बांहों का तकिया लगाकर सो रहे।

प्रातःकाल सूर्य की सुनहरी किरणें फैल रही थीं। समुद्र की उज्ज्वल फेन-राशि पर उनकी प्रभा एक अनिर्वचनीय सौंदर्य की सृष्टि कर रही थी। समुद्र शांत था, जलचर जन्तु जहां-तहां सिर निकाले, निश्शंक, स्वच्छ वायु में, श्वास ले रहे थे। कुछ दूर छोटे-छोटे पक्षी मन्द कलरव करते उड़ रहे थे; वे नेत्र और कर्ण दोनों को ही सुखद थे।

महाकुमारी आर्या संघमित्रा चट्टान पर चढ़कर, सुदूर पूर्व दिशा में आंख गाड़कर कुछ देख रही थीं। महाराजकुमार ने उसके निकट पहुंचकर कहा—आर्या संघमित्रा क्या देख रही हैं?

संघमित्रा के होंठ कंपित हुए। उसने संयत होकर, विनम्र और मृदु स्वर में, कहा—भिक्षुवर! जिस पृथ्वी को हमने छोड़ा है, वह यहीं सम्मुख तो है। पर ऐसा प्रतीत होता है मानो युग व्यतीत हो गया और माता पृथ्वी के दूसरे छोर पर हम आ गए। सोचिए, अभी हमें और भी आगे, अज्ञात प्रदेश को जाना है। क्या वहां हम ठहरकर सद्धर्म-प्रचार कर सकेंगे? देखो, प्रियजनों की दृष्टियां हमें बुला रही हैं, यह मैं स्पष्ट देख रही हूं। उसने अपना हाथ दूरस्थ पहाड़ियों की धुंधली छाया की तरफ फैला दिया, जहां पृथ्वी और आकाश मिलते दीख रहे थे। इसके वाद उसने महाकुमार की ओर मुड़कर कहा—भाई, नहीं नहीं, भिक्षुराज! चलो लौट चलें। घर लौट चलें। सद्धर्म-प्रचार का अभी वहां वहुत क्षेत्र है।

महाकुमार ने कुमारी के और भी निकट आकर उसके सिर पर अपना शुभ

हस्त रक्खा, और मन्द-मन्द स्वर से गम्भीर मुद्रा से कहा—शांतं पापम् आर्या संघमित्रा ! शांत पापम् । महाकुमारी वहीं बैठकर नीचे दृष्टि किए रोने लगी।

कुमारी की वाणी गद्गद हो गई थी। उसने कहा—आर्या ! हमने जिस महाव्रत की दीक्षा ली है, उसे प्राण रहते पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। सोचो, हम असाधारण व्यक्ति हैं। हमारे पिता चक्रवर्ती सम्राट् हैं। मैं इस महाराज्य का उत्तराधिकारी हूं। मैं जहां भिक्षाटन करने जा रहा हूं, कदाचित् उसका राजा करद होकर मेरे पास भेंट लेकर आता। परन्तु मैं उस प्रदेश की गली-गली में एक-एक ग्रास अन्न मांगूंगा, और बदले में सद्धर्म का पवित्र रत्न उन्हें दूंगा। क्या यह मेरे लिए और तुम्हारे लिए भी आर्या संघमित्रा, अलभ्य कीर्ति और सौभाग्य की बात नहीं ? क्या तथागत प्रभु को छोड़कर और भी किसी सद्धर्मी ने ऐसा किया था ? प्रभु की स्पर्धा करने का सौभाग्य तो भूत और भविष्य में आर्या संघमित्रा ! हमीं दोनों जीवों को प्राप्त होगा ; तुम्हें मुझसे भी अधिक, क्योंकि सम्राट् की कन्या होकर भिक्षुणी होना स्त्री-जाति में तुम्हारी समता नहीं रखता। आर्या ! इस सौभाग्य की अपेक्षा क्या राजवैभव अति प्रिय है। सोचो ! यह अधम शरीर और अनित्य जीवन जगत् के असंख्य प्राणियों का कैसा नष्ट हो रहा है। परन्तु हमें उसकी महाप्रतिष्ठा करने का कैसा सुयोग मिला है, कदाचित् भविष्य-काल में सहस्रों वर्षों तक, हम लोगों की स्मृति श्रद्धा और सम्मान-सहित जीवित रहेगी।

इतना कहकर महाकुमार मौन हुए। कुमारी धीरे-धीरे उनके चरणों में झुक गई। उसने अपराधिनी शिष्या की भांति प्रथम बार सहोदर भाई से मानो भ्रातृ-सम्बन्ध त्यागकर अपनी मानसिक दुर्बलता के लिए कर-बद्ध हो क्षमा-याचना की, और महाकुमार ने कर्मठ भिक्षु की भांति उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण !

इसके बाद ही नौका तैयार हुई, और वह फिर लहरों की ताल पर नाचने लगी। बारहों साथीनि स्तब्ध-से समुद्र की उत्तुंग तरंगों में मानो उस क्षुद्र तरणी को घुसाए लिए जा रहे थे। एक दिन और एक रात्रि की अविरल यात्रा के बाद समुद्र-तट दिखाई दिया। उस समय धीरे-धीरे सूर्य डूब रहा था, और उसका रक्त प्रतिबिंब जल में आन्दोलित हो रहा था। महाकुमारी ने सूर्य की ओर देखा और मन ही मन कहा—सूर्यदेव ! अभी उस चिर-परिचित प्रभात में मैं एक अविकसित अरविंद-कली थी। तुम्हारी स्वर्ण-किरण के सुखद स्पर्श से पुलकित होकर खिल

पड़ी। मैं अपनी समस्त पंखुड़ियों से खिलकर दिन-भर निर्लज्ज की भांति तुम्हें देखती रही। हाय! किन्तु तुम कितनी उपेक्षा से जा रहे हो! जाते हो तो जाओ, मैं अपना समस्त सौरभ तुम्हारे चरणों में लुटा चुकी हूं। अब सूखकर रज-कण में मिल जाना ही मेरी चरम गति है।

उसने अति अप्रकट भाव से अस्तंगत सूर्य को प्रणाम किया, और टप से एक बूंद आंसू उसकी गोद में रखे बोधि-वृक्ष पर टपक पड़ा।

तट आ गया, और महाकुमार गम्भीर मुद्रा से उसपर कूद गए। उसके बाद उन्होंने मुस्कराते हुए महाकुमारी को संकेत करके कहा—आर्या संघमित्रा! आओ, हम अभीप्ट स्थान पर पहुंच गए। इस क्षण से यह तट निर्वाण-तट के नाम से पुकारा जाय।

सबने चुपचाप सिर झुका लिया। तेरहों आत्माएं, एक के बाद दूसरी, उस अपरिचित किनारे पर सदैव के लिए उतर पड़ीं, और प्रार्थना के लिए रेत में घुटनों के बल धरती में झुक गईं!

वह राजवंशीय भिक्षु उस स्थान पर समुद्र-तट से और थोड़ा आगे बढ़कर ठहर गया। उसके तेरहों साथी उसके अनुगत थे। उन्होंने उस बोधि-वृक्ष की वहां स्थापना की। पत्थर और गारा इकट्ठा करके उन्होंने विहार बनाना शुरू किया। धीरे-धीरे भवन-निर्माण होने लगे, और आसपास की अर्ध-सभ्य जातियों में उसकी ख्याति होने लगी। झुंड के झुंड स्त्री-पुरुष इस सुन्दर, सभ्य, विनम्र तपस्वी के दर्शन करने को, उसका धर्म-संदेश और प्रेममय भाषण सुनने को आने लगे। इस पुरुष-रत्न के सतेज स्वर, बलिष्ठ शरीर, निरालस्य स्वभाव, आनन्दमय और संतोषपूर्ण जीवन, दयालु प्रकृति ने उन सहस्रों अपरिचितों के हृदयों को जीत लिया। वे उसे प्राणों से अधिक प्यार करने लगे। उसके जोरदार भाषण में वे महाप्रभु बुद्ध की आत्मा को प्रत्यक्ष देखने लगे। उनके पुराने अन्ध-विश्वास—उपासनाएं—कुरीतियां इतनी शीघ्रता से दूर हो गईं, और वे अपने इस प्यारे गुरु के इतने पक्के अनुगामी हो गए कि उस प्रान्त भर में उसकी चर्चा होने लगी, और शीघ्र ही वह स्थान टापू भर में विख्यात हो गया, और वहां नित्य मेला रहने लगा।

धीरे-धीरे वह वन्य प्रदेश विशाल अट्टालिकाओं से परिपूर्ण हो गया। अब

वह एक बड़ा विहार था, और उसमें केवल वही चौदह भिक्षु न थे, किन्तु सैकड़ों भिक्षु-भिक्षुणियां थीं जो जगत् के सभी स्वार्थों और सुखों को त्यागकर पवित्र और त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगी थीं।

समुद्र की लहरें किनारों पर टकराकर उनके परिजनों की आनन्द-ध्वनि की प्रतिध्वनि करती थीं, और उन महात्मा राजपुत्र और राजपुत्री एवं उनके साहसी साथियों को उत्साह दिलाती थीं, और अब उनके मन में कोई खेद न था। वे सब अति प्रफुल्लित हो अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे।

भिक्षुराज ध्यानावस्थित बैठे कुछ विचार कर रहे थे। आर्या संघमित्रा बोधि-वृक्ष को सींच रही थीं। एक भिक्षु ने बद्धांजलि होकर कहा—स्वामिन्, सिंघल द्वीप के स्वामी महाराज तिष्य ने आपको राजधानी अनुराधापुर ले जाने के लिए राजकीय रथ और वाहन तथा कुछ भेंट भी भेजी है; स्वामी की क्या आज्ञा है?

युवक भिक्षुराज ने बाहर आकर देखा, सौ हाथी, सौ रथ और दो सहस्र पदातिक एवं बहुतसे भिन्न-भिन्न यान हैं। साथ में राजकीय छत्र-चंवर भी हैं। महानायक के सम्मुख आ, नतजानु हो प्रणाम कर कहा—प्रभु, प्रसन्न हों। महाराजा की विनय है कि पवित्र स्वामी अनुचरों-सहित राजभवन को सुशोभित करें। वाहन सेवा में उपस्थित हैं। कुछ तुच्छ भेंट भी है।

यह कहकर महानायक ने संकेत किया—तत्काल सौ दास विविध सामग्री से भरे स्वर्ण-थाल ले, सम्मुख रखकर पीछे हट गए। उनमें बड़े-बड़े मोतियों की मालाएं, रत्नाभरण, रेशमी बहुमूल्य वस्त्र, सुन्दर शिल्प की वस्तुएं, बहुमूल्य मदिराएं और विविध सामग्री थी। महाकुमार ने देखा, एक क्षीण हास्य-रेखा उनके ओठों में आई, और उन्होंने महानायक की ओर देखकर गम्भीर वाणी से कहा—महानायक, भिक्षुओं के भिक्षा-पात्र में कहां यह राजसामग्री समाएगी; मेरे जैसे भिक्षुओं को इसकी आवश्यकता ही क्या? इन्हें लौटा ले जाओ। महाराज तिष्य से कहना, हम स्वयं राजधानी में आते हैं।

भिक्षुराज ने यह कहा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही अपने आसन पर आ बैठे। राज्यवर्ग अपनी तमाम सामग्री सहित वापस लौट गया।

राजधानी वहां से दूर थी, और यात्रा की कोई भी सुविधा न थी, परन्तु

उस टापू के राजा तिष्य को सद्धर्म का संदेश सुनाना परमावश्यक था। यदि ऐसा हो जाए, तो टापू भर में बौद्ध सिद्धान्तों की व्याप्ति हो जाए।

महाकुमार ने तैयारी की। कुमार और बारहों साथी तैयार हो गए। और, वह दुर्गम यात्रा प्रारम्भ की गई। प्रत्येक के कन्धे पर उनकी आवश्यक सामग्री और हाथ में भिक्षा-पात्र था। वे चलते ही चले गए। पर्वतों की चोटियों पर चढ़े। घने, हिंस्र जंतुओं से परिपूर्ण वन में घुसे। वृक्ष और जल से रहित रेगिस्तान में होकर गुज़रे। अनेक भयंकर गार और ऊबड़-खाबड़ जंगल, पेचीली जंगली नदियां उन्हें पार करनी पड़ीं। अन्त में राजधानी निकट आई।

राजा अन्ध-विश्वासों से परिपूर्ण वातावरण में था। सैकड़ों जादूगर, मूर्ख, पाखण्डी उसे घेरे रहते थे। उन्होंने उसे भयभीत कर दिया कि यदि वह उन भिक्षु-यात्रियों से मिलेगा तो उसपर दैवी कोप होगा, और वह तत्काल मर जाएगा। परन्तु उसने सुन रक्खा था कि आगन्तुक चक्रवर्ती सम्राट् अशोक के पुत्र और पुत्री हैं। उसमें सम्राट् को अप्रसन्न करने की सामर्थ्य न थी। उसने उनके स्वागत का बहुत अधिक आयोजन किया। उसे खयाल था, महाराजकुमार के साथ बहुतसी सेना-सामग्री, सवारी आदि होंगी। पर जब उसने उन्हें पीत वस्त्र पहने, पृथ्वी पर दृष्टि दिए, नंगे पैरों धीरे-धीरे पैदल अग्रसर होते और महाराजकुमारी तथा अन्य अनुचरों को उसी भांति अनुगत होते देखा तो वह आश्चर्यचकित रह गया, और जब उसने सुना कि उसकी समस्त भेंट और सवारी उन्होंने लौटा दी है, और वे इसी भांति पैदल भयानक यात्रा करके आए हैं तो वह विमूढ़ हो गया। कुमार पर उसकी भक्ति बढ़ गई। उसने देखा, राजकुमार के सिर पर मुकुट और कानों में कुंडल न थे, पर मुख कांति से देदीप्यमान हो रहा था। उन्होंने हाथ उठाकर राजा को 'कल्याण' का आशीर्वाद दिया। राजा हठात् उठकर महाकुमार के चरणों में गिर गया। समस्त दरबार के संभ्रांत पुरुष भी भूमि पर लोटने लगे।

महाकुमार ने प्रबोध देना प्रारम्भ किया, और कहा—

'राजन्, क्षमा हमारा शस्त्र और दया हमारी सेना है। हम इसी राजबल से पृथ्वी की शक्तियों को विजय करते हैं। हम सद्धर्म का प्रकाश जीवों के हृदयों में प्रज्वलित करते फिरते हैं। हम त्याग, तप, दया और सद्भावना से आत्मा का

शृंगार करते हैं। हे राजन् ! हम अपनी ये सब विभूतियां आपको देने आए हैं। आप इन्हें ग्रहण करके कृतकृत्य हूजिए।'

राजा धीरे-धीरे पृथ्वी से उठा। उसने कहा—और केवल यही विभूतियां ही आपके इस प्रशस्त जीवन का कारण हैं ?

राजकुमार ने स्थिर गम्भीर होकर कहा—हां।

'इन्हींको पाकर आपने साम्राज्य का दुर्लभ अधिकार तुच्छ समझकर त्याग दिया ?'

'हां, राजन् !'

'और इन्हीं को पाकर आप भिक्षावृत्ति में सुखी हैं, पैदल यात्रा के कष्टों को सहन करते हैं, तपस्वी जीवन से शरीर को कष्ट देने पर भी प्रफुल्लित हैं।'

'हां, इन्हींको पाकर।'

'हे स्वामी ! वे महाविभूतियां मुझे दीजिए, मैं आपका शरणागत हूं।'

भिक्षुराज ने एक पद आगे बढ़कर कहा—राजन्, सावधान होकर बैठो।

राजा घुटनों के बल धरती पर बैठ गया। उसका मस्तक युवक भिक्षुराज के चरणों में झुक रहा था।

महाकुमार ने कमंडलु से पवित्र जल निकालकर राजा के स्वर्ण-खचित राज-मुकुट पर छिड़क दिया, और कहा—

'कहो—

बुद्धं शरणं गच्छामि।

संघं शरणं गच्छामि।

सत्यं शरणं गच्छामि।'

राजा ने अनुकरण किया। तब भिक्षुराज ने अपने शुभ हस्त राजा के मस्तक पर रखकर कहा—राजन् उठो। तुम्हारा कल्याण हो गया। तुम प्रियदर्शी सम्राट् के प्यारे सद्धर्मी और तथागत के अनुगामी हुए।

इसके बाद राजा की ओर देखे बिना ही भिक्षु-श्रेष्ठ अपने निवास को लौट गए।

उनके लिए राजमहल में एक विशाल भवन निर्माण कराया गया। और उसमें श्वेत चंदोवा ताना गया था, जो पुष्पों से सजाया गया था। महाकुमार ने वहां

बैठ कर अपने साथियों के साथ भोजन किया और तीन वार राजपरिवार को उपदेश दिया। उसी समय तिष्य के लघु भ्राता की पत्नी अनुला ने अपनी पांच सौ सखियों के साथ सद्धर्म ग्रहण किया।

संध्या का समय हुआ, और भिक्षु-मण्डली पर्वत की ओर जाने को उद्यत हुई। महाराज तिष्य ने आकर विनीत भाव से कहा—पर्वत बहुत दूर है, और अति विलम्ब हो गया है, सूर्य छिप रहा है, अतः कृपा कर नन्दन उपवन में ही विश्राम करें।

महाकुमार ने उत्तर दिया—राजन्, नगर में और उसके निकट वास करना भिक्षु का धर्म नहीं।

'तव प्रभु महामेघ-उपवन में विश्राम करें; वह राजधानी से न बहुत दूर है, न निकट ही।'

महाकुमार सहमत हुए, और महामेघ-उपवन में उनका आसन जमा।

दूसरे दिन तिष्य पुष्प-भेंट लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। महाकुमार ने स्थान के प्रति संतोष प्रकट किया। तिष्य ने प्रार्थना की कि वह उपवन भिक्षु-संघ की भेंट समझा जाय, और वहां विहार की स्थापना की जाय।

भिक्षुराज ने महाराज तिष्य की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। महामेघ-अनुष्ठान के तेरहवें दिन, आषाढ़-शुक्ल त्रयोदशी को महाकुमार महेन्द्र, राजा का फिर आतिथ्य ग्रहण करके, अनुराधापुर के पूर्वी द्वार से मिस्सक-पर्वत को लौट चले। महाराज ने यह सुना तो वह राजकुमारी अनुला और सिंहालियों को साथ लेकर, रथ पर बैठकर दौड़ा।

महेन्द्र और भिक्षु तालाव में स्नान करके पर्वत पर चढ़ने को उद्यत खड़े थे। राजवर्ग को देखकर महाकुमार ने कहा—राजन्, इस असह्य ग्रीष्म में तुमने क्यों कष्ट किया?

'स्वामिन्, आपका वियोग हमें सह्य नहीं।'

'अधीर होने का काम नहीं। हम लोग वर्षा-ऋतु में वर्ष-अनुष्ठान के लिए यहां पर्वत पर आए हैं, और वर्षा-ऋतु यहीं पर व्यतीत करेंगे।'

महाराज तिष्य ने तत्काल कर्मचारियों को लगाकर ६८ गुफाएं वहां निर्माण करा दीं, और भिक्षुगण वहां चतुर्मास व्यतीत करने को ठहर गए। एक दिन तिष्य ने कहा—

'स्वामिन्, यह बड़े खेद का विषय है कि लंका में भगवान् बुद्ध का ऐसा कोई स्मारक नहीं जहां उसकी भेंट-पूजा चढ़ाकर विधिवत् अर्चना की जाय। यदि प्रभु स्मारक के योग्य कोई वस्तु प्राप्त कर सकें तो उसकी प्रतिष्ठा करके उसपर स्तूप बनवा दिया जाय।'

महाकुमार महेन्द्र ने विचार कर सुमन भिक्षु को लंका-नरेश का यह संदेश लेकर सम्राट् प्रियदर्शी अशोक की सेवा में भारतवर्ष भेज दिया।

उसने सम्राट् से महाकुमार और महाकुमारी के पवित्र जीवन का उल्लेख करके कहा—चक्रवर्ती की जय हो! महाकुमार और लंका-नरेश की इच्छा है कि लंका में तथागत के शरीर का कुछ अंश प्रतिष्ठित किया जाय, और उसकी पूजा होती रहे।

अशोक ने महाबुद्ध के गले की एक अस्थि का टुकड़ा उसे देकर विदा किया।

महाकुमार उस अस्थि-खंड को लेकर फिर महामेघ-उपवन में आए। वहां राजा अपने राजकीय हाथी पर छत्र लगाए स्वागत के लिए उपस्थित था।

उसने अस्थि-खंड को सिर पर धारण किया, और बड़ी धूम-धाम से उसकी स्थापना की। उस अवसर पर तीस सहस्र सिंहालियों ने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया।

द्वीप भर में बौद्ध-धर्म का साम्राज्य था। सम्राट् ने अपने पवित्र पुत्र और पुत्री को तीन सौ पिटारे भरकर धर्म-ग्रंथ उपहार भेजे थे। उन्हें वहां के निवासियों को उसने अध्ययन कराया। एक बच्चा भी अब बौद्धों की विभूति से वंचित न था।

भिक्षुराज महाकुमार महेंद्र कठिन परिश्रम और तपश्चर्या करने से बहुत दुर्बल हो गए थे। वृद्धावस्था ने उनके शरीर को जीर्ण कर दिया था। महाराजकुमारी ने द्वीप की स्त्रियों को पवित्र धर्म में रंग दिया था। दोनों पवित्र आत्माएं अपने जीवनों को धैर्य से गला चुके थे। उन्हें वहां रहते युग बीत गया था। एक दिन उन्होंने कुमारी से कहा—

'आर्या संघमित्रा! मेरा शरीर अब बहुत जर्जर हो गया है। अब इस शरीर का अन्त होगा। यह तो शरीर का धर्म है। तुम प्राण रहते अपना कर्तव्य पूर्ण किए जाना।'

उसके मुख पर संतोष के हास्य की रेखा थी।

उसी रात्रि को एक अनुचर ने, जो कुमार के निकट ही सोता था, देखा कि उनका आसन खाली है। वह तत्काल उठकर चिल्लाने लगा—हे प्रभु! हे प्रभु! समुद्र की लहरें किनारों पर टकराकर उस पार के मित्रों की आनन्द-ध्वनि ला रही थीं। अनुचर ने देखा, महाकुमार भिक्षुराज बोधि-वृक्ष को आलिंगन किए पड़े हैं। उनके नेत्र मुद्रित हैं। अनुचर लपककर चरणों में लोट गया। लोग जाग गए और वहीं को आ रहे थे। इस भीड़ को देखकर कुमार मुस्कराए, सबको आशीर्वाद देने को उन्होंने हाथ उठाया, पर वह दुर्बलता के कारण गिर गया। धीरे-धीरे उनका शरीर भी गिर गया। अनुचर ने उठाकर देखा तो वह शरीर निर्जीव था। उस स्निग्ध चंद्रमा की चांदनी में, उस पवित्र बोधि-वृक्ष के नीचे वह त्यागी राजपुत्र, ससागरा पृथ्वी का एक मात्र उत्तराधिकारी धरती पर निश्चित होकर अटूट सुख-नींद सो रहा था, और भक्तों में जो-जो सुनते थे, एकत्र होते जाते थे, और चार आंसू बहाते थे।

वह आश्विन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी थी, जब भिक्षुराज महेंद्र ने जीवन समाप्त किया। उस समय यह महापुरुष अपने भिक्षु-जीवन का साठवां वर्ष मना रहा था, उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी। उसने अड़तालीस वर्ष तक लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

उस समय महाराज तिष्य को मरे आठ वर्ष बीत चुके थे। उसके छोटे भाई उत्तिय ने, जो अब राजा था, जब इस महापुरुष की मृत्यु का संवाद सुना तो वह बालक की तरह रोता और बिलखता हुआ उस पवित्र पुरुष के गुण-गान करता दौड़ा।

राजा की आज्ञा से भिक्षुराज का शव सुगन्धित तैल में रखकर एक सुनहरे बक्स में बन्द कर और अनेक सुगंधित मसालों से भर दिया गया। फिर वह एक सुनहरे शकट पर, बड़े जुलूस के साथ, अनुराधापुर लाया गया। समस्त द्वीप के अधिवासियों और सैनिकों ने एकत्र होकर इस महाभिक्षुराज के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

राजधानी की गलियों से होता हुआ जुलूस अंत में पनहंबमाल के विहार में जाकर रुका, जहां वह शव सात दिन रक्खा रहा। राजा की आज्ञा से विहार से

पचीस मील तक चारों ओर का प्रदेश तोरण, ध्वजा, पताका और फूल-पत्तों से सजाया गया।

इसके बाद शव चंदन की चिता पर रक्खा गया और राजा ने अपने हाथ से उसमें आग लगाई।

जब चिता जल चुकी तो राजा ने राख का आधा भाग चैत्य-पर्वत पर, महिंतेल में ले जाकर गाड़ दिया, और शेष आधा समस्त विहारों और प्रमुख स्थानों में गाड़ने को भेज दिया।

इस प्रकार अब से बाइस सौ वर्ष पूर्व वह महापुरुष असाधारण रीति से जन्मा, जिया और मरा। लंका-द्वीप को इस महापुरुष ने जो लाभ प्रदान किया, वह असाधारण था। उसने यहां की भाषा, साहित्य और जीवन में एक नवीन सभ्यता की स्फूर्ति पैदा कर दी थी, और कला-कौशल में उत्क्रांति मचा दी थी। यह सब इस द्वीप के लिए एक चिरस्थायी वरदान था।

आज भी वर्ष के प्रत्येक दिन और विशेषकर पौष की पूर्णिमा को अनेकों तीर्थ-यात्री महिंतेल पर चढ़ते दिखाई देते हैं, और प्राचीन कथाओं के आधार पर इस महापुरुष से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक स्थान की यात्रा करके श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

जिस स्थान पर महाकुमार का शव-दाह हुआ था, वह स्थान अब भी 'इसी भूमांगन' अर्थात् 'पवित्र भूमि' कहाता है, और तब से अब तक उस स्थान के इर्द-गिर्द पचीस मील के घेरे में जो पुरुष मरता है, यहीं अंतिम संस्कार के लिए लाया जाता है।

इस राजभिक्षु ने जिन-जिन गुफाओं में निवास किया था, वे सभी महेंद्र-गुफा कहाती हैं। अब भी चट्टान में कटी हुई एक छोटी गुफा को 'महेन्द्र की शय्या' के नाम से पुकारते हैं। पहाड़ी के दूसरी ओर 'महेन्द्र-कुंड' का भग्नावशेष है, जिसे देखकर कहा जा सकता है कि उसपर न जाने कितना बुद्धि-बल और धन खर्च किया गया होगा।

क्या भारत के यात्री इस महान् राजभिक्षु की लीला-भूमि को देखने की कभी इच्छा करते हैं?

گوپال

# मुगल-कहानियां

- दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी
- लाला रुख
- बावर्चिन

# दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी

यह कहानी सम्भवतः आचार्य की सबसे अधिक प्राचीन कहानी है। और सन् १४ या १५ के लगभग लिखी गई थी। उन दिनों वे चिकित्सक की हैसियत से किसी रियासत में एक राजकुमारी की चिकित्सा करने गए थे। वहां जो उन्होंने राजकुमारी का रूप-वैभव और उसके शरीर पर लाखों रुपये मूल्य के हीरे-मोती देखे और राजकुमारी की जो मनोवृत्ति का अध्ययन किया तो उसीसे प्रभावित होकर उन्होंने इस कहानी की सृष्टि की थी। तब एक बवंडर यह भी उठा था कि यह कहानी चोरी का माल है। किसीने उसे गुजराती से, किसीने मराठी से और किसीने उर्दू से चुराई हुई बताया था। तब आचार्य ने इन समालोचक-पुङ्गवों को एक संक्षिप्त उत्तर दिया था कि चोरी के जुर्म में वे सूली पर चढ़ने को तैयार हैं, बशर्ते कि ये समालोचकगण उनकी विधवा कलम का पाणिग्रहण करने को तैयार हों। अयोग्य समालोचकों के मुंह पर यह एक करारा तमाचा था। तब से यह कहानी बहुत प्रसिद्ध हो गई। भारत के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में उसे आज के तरुणों के पिताओं ने पढ़ा। और अब आज के तरुण पढ़ रहे हैं। कहानी में उत्कट मानसिक आघात-प्रतिघातों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तो है ही, मुग़लों के राजसी वैभव के खरे रेखा-चित्र भी हैं। और इन चित्रों का इतना सच्चा उतरने का कारण यह था कि उन दिनों आचार्य का राजामहाराजाओं के अन्तःपुर में बहुत प्रवेश था। और चिकित्सक के नाते उन्हें गुप्त से गुप्त बातें भी ज्ञात होती रहती थीं। परन्तु कथा का मूलधार एक मशहूर किस्सागो के दन्त किस्से के पर आधारित था। उन दिनों दिल्ली में शाही जमाने के कुछ किस्सागो जिन्दा थे, जो शाही परम्परा से रईसों को किस्से सुनाने का खानदानी पेशा करते आए थे। एक किस्सा सुनाने की उनकी फीस दो रुपये से लेकर पचास रुपये तक होती थी। आचार्य को इन किस्सों से बहुत लगाव था। और कहना चाहिए उनकी कहानी लिखने में प्रवृत्ति किसी साहित्यिक प्रेरणा से नहीं हुई, इन किस्सागो लोगों की ही वाणी से हुई। इस प्रकार यह कहानी यदि चोरी का ही माल है तो किसी साहित्य की चोरी का नहीं, एक किस्सागो के मुंह से चुराया हुआ है। इस कहानी के इतिहास में एक बात यह कहनी और है कि इसकी फीस दो रुपए उन्हें देनी पड़ी थी। और जब यह कहानी प्रथम बार सुधा में छपी तो उन्हें मुबलिग पांच रुपए पुरस्कार (?) मिले थे।

गर्मी के दिन थे। बादशाह ने उसी फागुन में सलीमा से नई शादी की थी। सल्तनत के झंझटों से दूर रहकर नई दुलहिन के साथ प्रेम और आनन्द की कलोल करने वह सलीमा को लेकर कश्मीर के दौलतखाने में चले आए थे।

रात दूध में नहा रही थी। दूर के पहाड़ों की चोटियां, बर्फ़ से सफेद होकर चांदनी में बहार दिखा रही थीं। आरामबाग के महलों के नीचे पहाड़ी नदी बल खाकर बह रही थी।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था, और उनकी खुली खिड़की के पास बैठी सलीमा रात का सौंदर्य निहार रही था। खुले हुए बाल उसकी फीरोज़ी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुथी हुई उस फीरोज़ी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमखाव की कुरती और पन्नों की कमरपेटी पर अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में ज़री के काम के जूते पड़े थे, जिनपर दो हीरे धक्-धक् चमक रहे थे।

कमरे में एक कीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा हुआ था, जो पैर रखते ही हाथ भर नीचे धंस जाता था। सुगन्धित मसालों से बने शमादान जल रहे थे। कमरे में चार पूरे कद के आइने लगे थे। संगमर्मर के आधारों पर, सोने-चांदी के फूलदानों में, ताज़े फूलों के गुलदस्ते रक्खे थे। दीवारों और दरवाज़ों पर चतुराई से गुथी हुई नागकेसर और चंपे की मालाएं झूल रही थीं, जिनकी सुगंध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगरी की देश-विदेश की वस्तुएं करीने से सजी हुई थीं।

बादशाह दो दिन से शिकार को गए थे। इतनी रात होने पर भी नहीं आए थे। सलीमा खिड़की में बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। सलीमा ने उकताकर दस्तक दी। एक बांदी दस्तबस्ता हाज़िर हुई।

बांदी सुन्दर और कमसिन थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा—

'साकी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बांसुरी ?'

बांदी ने नम्रता से कहा—हुज़ूर जिसमें खुश हों।

सलीमा ने कहा—पर तू किसमें खुश है ?

बांदी ने कंपित स्वर में कहा—सरकार ! बांदियों की खुशी ही क्या !

सलीमा हंसते-हंसते लोट गई। बांदी ने वंशी लेकर कहा—क्या सुनाऊं ?

बेगम ने कहा—ठहरो, कमरा बहुत गरम मालूम देता है इसके तमाम दरवाज़े और खिड़कियां खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चांदनी का लुत्फ उठाने दे, और वे फूलमालाएं मेरे पास रख दे।

बांदी उठी। सलीमा बोली—सुन पहले एक गिलास शरबत दे, बहुत प्यासी हूं।

बांदी ने सोने के गिलास में खुशबूदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा—उफ् ! यह तो बहुत गर्म है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया ?

बांदी ने नम्रता से कहा—दिया तो है सरकार !

'अच्छा, इसमें थोड़ा-सा इस्तंबोल और मिला।'

साकी ग्लास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तंबोल मिलाया, और भी एक चीज़ मिलाई। फिर वह सुवासित मदिरा का पात्र बेगम के सामने ला धरा।

एक ही सांस में उसे पीकर बेगम ने कहा—अच्छा, अब सुनो। तूने कहा था कि तू मुझे प्यार करती है; सुना, कोई प्यार का ही गाना सुना।

इतना कह और गिलास को गलीचे पर लुढ़काकर मदमाती सलीमा उस कोमल मखमली मसनद पर खुद भी लुढ़क गई, और रस-भरे नेत्रों से साकी की ओर देखने लगी। साकी ने वंशी का सुर मिलाकर गाना शुरू किया—

'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी—'

बहुत देर तक साकी की वंशी और कंठ-ध्वनि कमरे में घूम-घूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साकी खुद भी रोने लगी। साकी मदिरा और यौवन के नशे में चूर होकर झूमने लगी।

गीत खतम करके साकी ने देखा, सलीमा बेसुध पड़ी है। शराब की तेजी से उसके गाल एकदम सुर्ख हो गए हैं, और तांबूल-राग-रंजित होंठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। सांस की सुगन्ध से कमरा महक रहा है। जैसे मंद पवन से कोमल पत्ती कांपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वक्षःस्थल धीरे-धीरे कांप रहा

है। प्रस्वेद की बूंदें ललाट पर दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में मोतियों की तरह चमक रही हैं।

वंशी रखकर साकी क्षण-भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर कांपा, आंखें जलने लगीं, कंठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आंचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुंह चूम लिया।

फिर ज्यों ही उसने अचानक आंख उठाकर देखा, खुद दीन-दुनिया के मालिक शाहजहां खड़े उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से देख रहे हैं।

साकी को सांप डस गया। वह हतबुद्धि की तरह बादशाह का मुंह ताकने लगी। बादशाह ने कहा—तू कौन है? और यह क्या कर रही थी?

साकी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा—जवाब दे!

साकी ने धीमे स्वर में कहा—जहांपनाह! कनीज़ अगर कुछ जवाब न दे, तो?

बादशाह सन्नाटे में आ गए—बांदी की इतनी हिम्मत?

उन्होंने फिर कहा—मेरी बात का जवाब नहीं? अच्छा, तुझे नंगी करके कोड़े लगाए जाएंगे!

साकी ने अकंपित स्वर में कहा—मैं मर्द हूं!

बादशाह की आंखों में सरसों फूल उठी। उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेसुध पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था। उनके मुंह से निकला—उफ़! फ़ाहशा! और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर उन्होंने कहा—दोज़ख के कुत्ते! तेरी यह मजाल!

फिर कठोर स्वर से पुकारा—मादूम!

एक भयंकर रूप वाली तातारी औरत बादशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया—इस मर्दूद को तहखाने में डाल दे, ताकि बिना खाए-पिए मर जाय।

मादूम ने अपने कर्कश हाथों में युवक का हाथ पकड़ा और ले चली। थोड़ी देर बाद दोनों एक लोहे के मज़बूत दरवाज़े के पास आ खड़े हुए। तातारी बांदी

ने चाभी निकाल दरवाजा खोला, और कैदी को भीतर ढकेल दिया। कोठरी की गच कैदी का बोझ ऊपर पड़ते ही कांपती हुई नीचे धसकने लगी !

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौंककर उठ बैठी। बाल संवारे, ओढ़नी, ठीक की, और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियां बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा—साकी ! प्यारी साकी ! बड़ी गर्मी है, ज़रा, खिड़की तो खोल दे। निगोड़ी नींद ने तो आज गजब ढा दिया। शराब कुछ तेज़ थी।

किसीने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने ज़रा ज़ोर से पुकारा—साकी !

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह खुद खिड़की खोलने लगी। मगर खिड़कियां बाहर से बन्द थीं। सलीमा ने विस्मय से मन ही मन कहा—क्या बात है ? लौंडियां सब क्या हुईं ?

वह द्वार की तरफ चली। देखा, एक तातारी बांदी नंगी तलवार लिए पहरे पर मुस्तैद खड़ी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया।

सलीमा ने क्रोध से कहा—तुम लोग यहां क्यों हो ?

'बादशाह के हुक्म से।'

'क्या बादशाह आ गए ?'

'जी हां।'

'मुझे इत्तिला क्यों नहीं की ?'

'हुक्म नहीं था।'

'बादशाह कहां हैं ?'

'ज़ीनतमहल के दौलतखाने में।'

सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा—ठीक है, खूबसूरती की हाट में जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे ? तो अब ज़ीनतमहल की किस्मत खुली ?

तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा फिर बोली—मेरी साकी कहां है ?

'कैद में।'

'क्यों ?'

'जहांपनाह का हुक्म ?'

'उसका कुसूर क्या था ?'

'मैं अर्ज नहीं कर सकती।'

'कैदखाने की चाभी मुझे दे, मैं अभी उसे छुड़ाती हूं।'

'आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।'

'तब क्या मैं भी कैद हूं ?'

'जी हां।'

सलीमा की आंखों में आंसू भर आए। वह लौटकर मसनद पर गड़ गई, और फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ ठहरकर उसने एक खत लिखा—

'हुजूर ! कुसूर माफ फर्मावें। दिन भर थकी होने से ऐसी बेसुध सो गई कि हुजूर के इस्तकबाल में हाजिर न रह सकी। और मेरी उस लौंडी को भी जां-बख्शी की जाय। उसने हुजूर के दौलतखाने में लौट आने की इत्तिला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर बेशक भारी कुसूर किया है। मगर वह नई, कमसिन, गरीब और दुखिया है। —कनीज़

सलीमा'

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह ने आगे होकर कहा—क्या लाई है ?

बांदी ने दस्तबस्ता अर्ज की—खुदावन्द ! सलीमा बीबी की अर्जी है।

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा—उससे कह दे कि मर जाय ! इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुंह फेर लिया।

बांदी सलिका के पास लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती में बैठ गई। उसने बांदी को बाहर जाने का हुक्म दिया, और दरवाजा बंद करके फूट-फूटकर रोई। घंटों बीत गए ; दिन छिपने लगा। सलीमा ने कहा—हाय ! बादशाहों की बेगम होना भी क्या बदनसीबी है ! इन्तजारी करते-करते आंखें फूट जाएं, मिन्नतें करते-करते जबान घिस जाए, अदब करते-करते जिस्म टुकड़े-टुकड़े हो जाए, फिर भी इतनी सी बात पर कि मैं जरा सो गई, उनके आने पर जग न सकी, इतनी सजा ! इतनी बेइज्जती ! तब मैं बेगम क्या हुई ? जीनत और बांदियां सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? इस बेइज्जती के बाद मुंह

दिखाने-लायक कहां रही ? अब तो मरना ही ठीक है। अफसोस ! मैं किसी गरीब किसान की औरत क्यों न हुई !

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व और दृढ़ प्रतिज्ञा के चिह्न उसके नेत्रों में छा गए। वह सांपिन की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक और खत लिखा—

'दुनिया के मालिक ! आपकी बीवी और कनीज होने की वजह से मैं आपके हुक्म को मानकर मरती हूं। इतनी बेइज़्ज़ती पाकर एक मलिका का मरना ही मुनासिब भी है। मगर इतने बड़े बादशाह को औरतों को इस कदर नाचीज़ तो न समझना चाहिए कि एक अदना-सी बेवकूफी की इतनी कड़ी सजा दी जाए। मेरा कुसूर सिर्फ इतना ही था कि मैं बेखबर सो गई थी। खैर, सिर्फ एक बार हुज़ूर को देखने की ख्वाहिश लेकर मरती हूं। मैं उस पाक परवरदिगार के पास जाकर अर्ज़ करूंगी कि वह मेरे शौहर को सलामत रक्खे।

—सलीमा'

खत को इत्र से सुवासित करके ताज़े फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया कि जिससे किसीकी उसपर फौरन ही नजर पड़ जाय। इसके बाद उसने जवाहरात की पेटी से एक बहुमूल्य अंगूठी निकाली, और कुछ देर तक आंखें गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई !

बादशाह शाम की हवाखोरी को नज़र-बाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराए हुए आए, और चिट्ठी पेश करके अर्ज़ की—हुज़ूर, गज़ब हो गया ! सलीमा बीवी ने ज़हर खा लिया है, और वह मर रही हैं !

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। झपटे हुए सलीमा के महल पहुंचे। प्यारी दुलहिन सलीमा ज़मीन में पड़ी है। आंखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से न रहा गया। उन्होंने घबराकर कहा—हकीम, हकीम को बुलाओ ! कई आदमी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ देखा, और धीमे स्वर में कहा—ज़हे-किस्मत !

बादशाह ने नज़दीक बैठकर कहा—सलीमा ! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाज़िम था ?

सलीमा ने कष्ट से कहा—हुजूर ! मेरा कुसूर बहुत मामूली था।

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा—बदनसीब ! शाही जनानखाने में मर्द को भेष बदलकर रखना मामूली कुसूर समझती है ? कानों पर यकीन कभी न करता, मगर आंखों-देखी को भी झूठ मान लूं ?

तड़पकर सलीमा ने कहा—क्या ?

बादशाह डरकर पीछे हट गए। उन्होंने कहा—सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था ?"

सलीमा ने अकचकाकर पूछा—कौन जवान ?

बादशाह ने गुस्से से कहा—जिसे तुमने साकी बनाकर पास रक्खा था।

सलीमा ने घबराकर कहा—हैं ! क्या वह मर्द है ?

बादशाह—तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं ?

सलीमा के मुंह से निकला—या खुदा !

फिर उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे। वह सब मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली—खाविंद ! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं ; इस कुसूर को तो यही सज़ा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ फर्माई जाय। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूं, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा—तो प्यारी सलीमा ! तुम बेकुसूर ही चलीं ? बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा—मालिक मेरे ! जिसकी उम्माद न थी, मरते वक्त वह मज़ा मिल गया। कहा-सुना माफ हो, और एक अर्ज़ लौंडी की मंजूर हो।

बादशाह ने कहा—जल्दी कहो सलीमा !

सलीमा ने साहस से कहा—उस जवान को माफ कर देना।

इसके बाद सलीमा की आंखों से आंसू बह चले, और थोड़ी ही देर में वह ठंडी हो गई !

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा, और फिर बालक की तरह रोने लगे।

गज़ब के अंधेरे और सर्दी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक घोर

चीत्कार करके किवाड़ खुले। प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहखाने में भर गया—बदनसीब नौजवान! क्या होश-हवास में है?

युवक ने तीव्र स्वर में पूछा—कौन?

जवाब मिला—बादशाह।

युवक ने कुछ भी अदब किए बिना कहा—यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है। क्यों तशरीफ लाये हैं?

'तुम्हारी कैफियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूं।'

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा—सिर्फ सलीमा को झूठी बदनामी से बचाने के लिए कैफियत देता हूं, सुनिए : सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी; पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा पर्दे में रहने लगी, और फिर वह शहंशाह की बेगम हुई। मगर मैं उसे भूल न सका। पांच साल तक पागल की तरह भटकता रहा, अंत में भेष बदलकर बांदी की नौकरी कर ली। सिर्फ उसे देखते रहने और खिदमत करके दिन गुज़ारने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चांदनी, सुगन्धित पुष्प-राशि, शराब की उत्तेजना और एकांत ने मुझे बेवस कर दिया। उसके बाद मैंने आंचल से उसके मुख का पसीना पोंछा, और मुंह चूम लिया। मैं इतना ही खतावार हूं। सलीमा इसकी बाबत कुछ नहीं जानती।

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद वे बिना ही दरवाज़ा बंद किए धीरे-धीरे चले गए।

सलीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गए। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने, नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी चौकी पर बैठे हुए बादशाह इसी तरह सलीमा की कब्र दिन-रात देखा करते हैं। किसीको पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है तो उस गंभीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्मभेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ-साफ सुनते हैं, कोई करुण-कोमल स्वर में गा रहा है—

'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी?'

# लाला रुख

इस कहानी में एक कोमल भावुक प्रेम का मोहक रेखा-चित्र है। मुगल-कालीन ऐश्वर्य की एक सजीव झांकी भी इस कहानी में दिखाई देती है। कथोपकथन की समर्थ पद्धति और भाषा की ललक इस कहानी में देखे ही बनती है। कहानी पढ़ने के समय पाठक-पाठिकाओं को एक ऐसे भाव-समुद्र में तुरन्त डूब जाना पड़ता है जो अतिशय सुखद है। प्यार की एक उदग्र मूर्ति इस कहानी में लाला रुख के रूप में व्यक्त हुई है।

उस दिन दिल्ली के बाजार में बड़ी धूम थी। चारों तरफ चहल-पहल ही नजर आती थी। घर-घर में जलसे हो रहे थे, और जशन मनाया जा रहा था, बाज़ार सजाए गए थे। खासकर चांदनी चौक की सजावट आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करती थी। असल बात यह थी कि बादशाह आलमगीर की दुलारी छोटी शाहज़ादी लाला रुख का ब्याह बुखारे के शाहज़ादे से होना तय पा गया था। इसके साथ ही यह बात भी तमाम दरबारियों और बुखारा के एलचियों से सलाह-मशविरा करके तय पा गई थी, खास तौर से बुखारा के शाहजादे ने इस बात पर पूरा जोर दिया था कि उसे कश्मीर के दौलतखाने में शाहज़ादी का इस्तकबाल करने की इजाजत दी जाए, और बादशाह ने इस बात को मंजूर कर लिया था। उस दिन लाला रुख की सवारी दिल्ली के बाज़ारों में होकर कश्मीर जा रही थी, और दिल्ली शहर की यह सब तैयारियां इसी सिलसिले में थीं। जिन सड़कों से सवारी जाने वाली थी, उनपर गुलाब और केवड़े के अर्क का छिड़काव किया गया था। दूकानों की सब कतारें फूलों से सजाई गई थीं। जगह-जगह पर मौलसरी और बेले के गजरों से बन्दनवार बनाए गए थे। बजाजों ने कमखवाब और ज़रबफ्त के थानों को लटकाकर खूबसूरत दरवाज़े तैयार किए थे, जौहरी और सुनारों ने सोने-चान्दी के ज़ेवरों और जवाहरात के कीमती जिंसों से अपनी दूकान के बाहरी हिस्से को सजाया था। इंतिज़ाम के

दारोगा और बरकंदाज़ लाल-लाल वरदियां पहने और ज़री की पगड़ियां डाटे घोड़ों पर और पैदल इन्तिज़ाम के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। छज्जों और छतों पर लाला रुख की सवारी देखने के लिए ठठ की ठठ औरतें आ जुटी थीं। परदा नशीन बड़े घर की औरतें चिलमनों की आड़ में खड़ी होकर लाला रुख की सवारी देखने का इन्तिज़ार कर रही थीं। नजूमियों और ज्योतिषियों से लाला रुख की विदाई का मुहूरत दिखा लिया गया था। ठीक मुहूरत पर लाला रुख की सवारी लालकिले से रवाना हुई। सबसे आगे शाही सवारों का एक दस्ता हाथ में नंगी तलवारें लिए चल रहा था। उसके बाद ज़र्क बर्क पोशाक पहने हाथ में बड़े-बड़े भाले लिए, बरकंदाजों का एक झुण्ड था। इसके बाद तातारी बांदियां तीर-कमान कसे और नंगी तलवार हाथ में लिए, जड़ाऊ कमर पेटी में खंजर खोंसे, तीखी निगाहों से चारों तरफ देखती हुई आगे बढ़ रही थीं। इसके बाद झूमते हुए शाही हाथी थे, जिनपर ज़रदोज़ी की सुनहरी झूलें पड़ी हुई थीं, और जिनकी सोने की अम्बारियां सुनहरी धूप में चमचमा रही थीं। इनमें महीन रेशमी जाली के पर्दे पड़े हुए थे, जिनमें शाहज़ादी लाला रुख की सहेलियां, उस्तानियां, मुगलानियां और रिश्ते की दूसरी शाही औरतें थीं। इनके पीछे नकीबों की एक फौज थी, जो चिल्ला-चिल्लाकर हुजूर शाहज़ादी की सवारी की आमद लोगों पर ज़ाहिर कर रही थी। इसके बाद खास बान्दियों और महरियों के पैदल झुरमुट में कीमती, जड़ाऊ सुखपाल में शाहज़ादी लाला रुख बैठी थी। एक विश्वासपात्री बांदी पीछे खड़ी शाहज़ादी पर धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। सुखपाल पर गुलाबी रंग के निहायत खूबसूरत, मकड़ी के जाले की तरह महीन पर्दे पड़े हुए थे। इनके पीछे घोड़े पर सवार एक सरदार खोजा फिदाहुसेन था, और उसके पीछे मुगल सरदारों का एक मज़बूत दस्ता। इसके बाद रसद, डेरे तम्बू और बल्लियों से लदे हुए बहुत से ऊंट, खच्चर, हाथी तथा बेलदार मज़दूर चल रहे थे।

लाला रुख का सौन्दर्य अप्रतिम था, और उसके कोमल तथा भावुक ख्यालातों की ख्याति देश-देशान्तरों तक फैल गई थी। देश-देशान्तरों के शाहज़ादे उसे एक बार देखने को तरसते थे। उसका रंग मोतियों के समान था। उसकी आभा और शरीर की कोमलता केले के नए पत्ते के समान थी। उसके दांत

हीरे के से, और आंखें कच्चे दूध के समान उज्ज्वल और निर्दोष थीं। उसका भोलापन और सुकुमारता अप्रतिम थी, और निर्मम आलमगीर, जो प्रेम की कोमलता से दूर रहा, इस अपनी नन्ही और भोली बेटी को सचमुच प्यार करता था। उसने अपने हाथों से सहारा देकर उसे सुखपाल में सवार कराया, और आंखों में आंसू भरकर विदा कराया।

सवारी जब दिल्ली की सीमा पार करके लहलहाते खेतों, जंगलों और पहाड़ियों पर पहुंची तो लाला रुख ने अपने नाज़ुक हाथों से पर्दा हटाकर एक नज़र दूर तक फैली हुई हरियाली पर डाली, और जो कुछ भी उसने देखा उससे बहुत खुश हुई। आज तक उसे जंगल की हरियाली देखने का मौका नहीं मिला था। शाही महल के झरोखों से भी वह झांक न पाती थी। शाही महल की तड़क-भड़क और बनावट से वह ऊब गई थी, इसलिए जंगल का दृश्य देखकर उसके मन में आनन्द होना स्वाभाविक था। नए-नए दृश्य उसकी आंखों के आगे आते-जाते थे। रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए वृक्ष और लताएं, स्वच्छन्दता से चौकड़ी भरते हुए हिरनों के झुण्ड, चहचहाते हुए भांति-भांति के पक्षी उसके मन में कौतूहल पैदा कर रहे थे। वह उत्फुल्ल नेत्रों से प्रकृति की शोभा निहारती हुई और भांति-भांति के विचारों तथा शंकाओं से उद्विग्न-सी आगे बढ़ रही थी। हर दस कोस पर पड़ाव पड़ता था।

एक दिन जब सुदूर पश्चिम और उत्तर के आकाश की क्षितिज-रेखा में हिमालय की धवल चोटियां प्रातःकाल की सुनहरी धूप-किरणों से चमककर, देखने वालों के नेत्रों में चमत्कार पैदा कर रही थीं, और शीतल-मन्द-सुगंध वासन्ती वायु गुदगुदाकर मन को प्रफुल्ल कर रही थी, लाला रुख अपने खीमे में, रेशम के कोमल गद्दे और तकियों में अलसाई-सी पड़ी हुई, अपने अज्ञात यौवन से बिल्कुल बेखबर होकर अपनी सहचरियों से सुरम्य कश्मीर की सुषमा का बखान सुन रही थी। महलसरा के खोजा दारोगा ने सामने आकर कोर्निश की, और अर्ज़ की कि कश्मीर से बुखारे के नामवर शाहज़ादे ने हुज़ूर शाहज़ादी की खिदमत में एक नामी गवैए को भेजा है, और वह ड्योढ़ियों पर हाज़िर होकर कदमबोसी की इजाज़त से सरफराज़ होना चाहता है।

लाल रुख का चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कनखियों से अपनी एक सखी की ओर देखा, और फिर मुस्कराकर वीणा के झंकृत स्वर में कहा—क्या

वह सिर्फ गवैया है ?

'नहीं हुजूर, वह एक नामी शायर भी है, और उसकी कविता की भी वैसी ही धूम है, जैसी उसके गाने की।'

'क्या वह बुखारे का बाशिंदा है ?'

'नहीं हुजूर, वह कश्मीर का रहने वाला है। वह एक कमसिन खूबसूरत और निहायत बाअदब नौजवान है।'

शाहजादी ने एक बार दारोगा की तरफ देखा, और पूछा—क्या कह सकते हो कि शाहजादे के साथ उसके किस प्रकार के ताल्लुकात हैं ?

'जी हां, तहकीकात से मालूम हुआ कि हज़रत शाहज़ादे के साथ इस नौजवान के बिलकुल दोस्ताना ताल्लुकात हैं।'

'क्या शाहजादे ने कुछ ताकीद भी लिख भेजी है ?'

'जी हां हुजूर, उन्होंने लिखा है कि मैं अपने जिगरी दोस्त इब्राहीम को शाहज़ादी का इस्तकबाल करने और उन्हें गाने तथा कविता से खुश करने को भेजता हूं। शाहजादी को उनसे पर्दा करने की ज़रूरत नहीं।'

शाहज़ादी नीची नज़र करके मुस्कराई, और धीमे स्वर से कहा—बहुत खूब, शाहजादे के दोस्त का हर तरह आराम से रहने का इन्तज़ाम कर दो। इतना कहकर वह जल्दी से ख्वाबगाह में चली गई, और ख्वाजा सरा कौनिश करके बाहर आया।

कहीं बदली छा रही थी। कश्मीर की घाटियों में लाला रुख की छावनी पड़ी थी। चारों तरफ सुहावने दृश्य थे। दूर पर्वतश्रेणियां शोभा बखेर रही थीं। चांदनी छिटकी थी, और वह बदली में छन-छनकर धरती पर बिखर रही थी। लाला रुख ने सुना कोई वीणा के मधुर झंकार के साथ वीणा-विनिंदित स्वर में मस्ताना गीत गा रहा है। उस प्रशांत रात्रि में उस सुमधुर गायन और उसके प्रेमभावनापूर्ण शब्दों से लाला रुख प्रभावित हो गई। उसने प्रधान दासी को बुलाकर कहा—कौन गा रहा है ?

'वही कश्मीरी कवि है।'

'बड़ा प्यारा गीत है ?'

'और वह गायक उससे भी ज्यादा प्यारा है।'

'क्या वह बहुत खूबसूरत है ?'

'मगर हुजूर के तलुओं योग्य भी नहीं ।'

लाला रुख मुस्कराई। उसने कहा—किसीको भेजकर उसे कहला दो, ज़रा नज़दीक आकर गाए ।

बांदी 'जो हुक्म' कहकर चली गई। और कुछ क्षण बाद ही मूर्तिमती कविता और संगीत की मधुर धार उस भावुक शाहज़ादी के मानस-सरोवर में हिलोरें लेने लगी ।

वह सोचने लगी, जिसका कंठ-स्वर इतना सुन्दर है, और जिसका भाव इतना मधुर है, वह कितना सुन्दर होगा ! शाहज़ादी की इच्छा उसे एक बार आंख भरकर देख लेने की हुई। शाहज़ादे ने कहला भेजा था कि उससे पर्दा न किया जाए। परन्तु शाहज़ादी इतनी हिम्मत न कर सकी। उसने प्रधान दासी के द्वारा कवि से कहला भेजा कि वह नित्य इसी भांति शाहज़ादी के लिए गाया करे तो शाहज़ादी उसका एहसान मानेगी। उस दिन से दिन भर शाहज़ादी उस अमूर्त संगीत के रूप की कल्पना विविध भांति करने लगी, और जब वह स्वर्ण क्षण आता तो उस स्वर-सुधा में मस्त हो जाती ।

कश्मीर धीरे-धीरे निकट आ रहा था। शाहज़ादे से मिलने का दिन निकट आ रहा था। तमाम कश्मीर में शाहज़ादी के स्वागत की बड़ी भारी तैयारियां हो रही हैं, इसकी खबर रोज़ शाहज़ादी को लग रही थी, पर शाहज़ादी का दिल धड़क रहा था। क्या सचमुच यह अमूर्त संगीत एक दिन विलीन हो जाएगा। धीरे-धीरे शाहज़ादी के मन में साक्षात् करने की इच्छा बलवती होने लगी ।

शालामार की सुन्दर और स्वर्गीय छटा अवलोकन करती हुई लाला रुख अनमनी सी बैठी थी। अब वह उस अमूर्त के दर्शन से नेत्रों को धन्य किया चाहती थी। उसने उस स्निग्ध चांदनी के एकान्त में उस कवि को बुला भेजा था। हाथ में वीणा लिए जब उसने घुटने टेककर शाहज़ादी को अभिवादन किया, तब क्षण भर के लिए शाहज़ादी स्तंभित रह गई। उसके होंठ कांपकर रह गए, बोल न सकी। कवि ने कहा—हुजूर, शाहज़ादी ने गुलाम को रूबरू होने का हुक्म देकर उसे निहाल कर दिया ।

'मैं, मैं तुम्हें बिना देखे न रह सकी ।'

'शाहज़ादी का क्या हुक्म है ?'

'एक बार इस चांदनी में मेरे सामने बैठकर वही प्यारा संगीत गा दो।'

'जो हुक्म।'

कवि की उंगलियों ने तारों में कंपन उत्पन्न किया, साथ ही कंठ का मधु प्रवाहित हुआ। शाहज़ादी उसमें खो गई। गाना खत्म कर कवि ने साहस करके मुग्धा राजकुमारी का कोमल कर अपने होठों से लगा लिया। शाहज़ादी चीख उठी। उसने अपना हाथ खींच लिया, पर दूसरे ही क्षण उसने कहा—ओह इब्राहीम, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती। और वह मूर्च्छित होकर कवि पर झुक गई।

शालामार बाग में शाहज़ादी ने कुछ दिन मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। कश्मीर से शाहज़ादे के तकाज़े आ रहे थे कि जल्द सवारी आए, पर शाहज़ादी शाहज़ादे के पास जाते घबराती थी। वह अपना हृदय कवि को दे चुकी थी। वैसी ही चांदनी थी, संगमरमर की एक पटिया पर दोनों प्रेमी बैठे थे। फूलों का ढेर और शीराजी सामने रखी थी। शाहज़ादी ने कहा—प्यारे इब्राहीम, इस कदर मुतफिक्र क्यों हो?

'शाहज़ादी, हम जो कुछ कर रहे हैं उसका अंजाम क्या होगा। शाहज़ादा जब भेद जान लेंगे तो हमारी जान की खैर नहीं। मुझे अपनी ज़रा परवा नहीं, पर आपको उस प्रलय में मैं न देख सकूंगा।'

'ओह इब्राहीम, शाहज़ादे बहुत उदार हैं, वे समझते होंगे मुहब्बत में किसी का जोर-जुल्म नहीं चलता। वे हमें माफ कर देंगे।'

'नहीं शाहज़ादी, वे तुम्हें अपनी जान से ज्यादा चाहते हैं, माफ न करेंगे।"

'तो इब्राहीम, मैं खुशी से तुम्हारे साथ मरूंगी। क्या तुम मौत से डरते हो?'

'नहीं दिलरुबा, और खासकर इस प्यारी मौत से।'

'तो फिर यह राज़ क्यों पोशीदा रक्खा जाय? शाहज़ादे को लिख दिया जाए।'

'ये तमाम ठाट-बाट हवा हो जाएंगे।'

'उसकी परवा नहीं, तुम मेरे सामने बैठकर इसी तरह गाया करना, मैं तुम्हारे लिए रोटियां पकाया करूंगी।'

'प्यारी शाहज़ादी। बेहतर हो, इस गुलाम को भूल जाओ।'

'ऐसा न कहो, यह कलमा सुनने से दिल धड़क उठता है।'

'तो फिर तुम्हारा क्या हुक्म है ?'

'शाहज़ादे को मैं सब हकीकत लिख भेजूंगी।'

'तुम क्यों, यह काम मैं करूंगा, फिर नतीजा चाहे जो भी हो।'

इब्राहीम के गिरफ्तार होने की खबर आग की तरह शाहज़ादी के लश्कर में फैल गई। शाहज़ादी ने सुना तो पागल हो गई। खाना-पीना छोड़ दिया। सवारी तेज़ी के साथ आगे बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों कश्मीर नज़दीक आता था, सजावट और स्वागत की धूमधाम बढ़ती जाती थी। परन्तु शाहज़ादी बदहवास थी। शहर में उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। और जब महल के फाटक में उसकी सवारी घुसी तो उसपर हीरे-मोती बखेरे गए। शाहज़ादी ने पक्का इरादा कर लिया था कि ज्यों ही वह शाहज़ादे के सामने पहुंचेगी, उसके कदमों पर गिरकर इब्राहीम की जान बख्शी की भीख मांगेगी।

शाहज़ादा जड़ाऊ तख्त पर बैठा शाहज़ादी के स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बगल में एक दूसरा जड़ाऊ तख्त शाहज़ादी के लिए पड़ा था। शाहज़ादी ने ज्यों ही हवादान से पैर निकाला, शाहज़ादा उसे देखकर अवाक् रह गया। बिखरे बाल, मलिन वेश, सूखा और पीला चेहरा और सूजी हुई आंखें। शाहज़ादी ने आंख उठाकर शाहज़ादे को नहीं देखा। वह आगे बढ़कर तख्त के नीचे जमीन पर लोट गई। उसने शाहज़ादे के पैर पकड़कर कहा—क्षमा, क्षमा, ओ उदार शाहज़ादे क्षमा।

शाहज़ादे ने कहा—उठो शाहज़ादी, तुम्हारे लिए सब कुछ किया जा सकता है, यह तुम्हारा तख्त है, इसपर बैठो। शाहज़ादी ने डरते-डरते आंखें उठाकर शाहज़ादे की ओर देखा। 'या खुदा' इतना ही उसके मुंह से निकला, और वह शाहज़ादे की गोद में बेहोश होकर लुढ़क गई।

'हां तो तुम इब्राहीम की जां बख्शी चाहती हो प्यारी।'

'हां प्यारे, तुम इब्राहीम को जानते हो ?'

'कुछ कुछ।'

दोनों ठहाका मारकर हंस पड़े। लाला रुख ने शाहज़ादे की गोद में मुंह छिपा लिया।

# बावर्चिन

एक बार मुगल-साम्राज्य का प्रताप-सूर्य मध्याकाश में तपकर अपने काल में विश्वभर में अप्रतिम तेज विस्तार कर गया था। मुगल-दरबार का रुआब, दब-दबा और शान-शौकत कभी अवर्ण्य थी, परन्तु जब उसके अस्त होने का समय आया तो उसकी दशा ऐसी दयनीय हो गई जिसकी करुण कहानी आंसुओं के समुद्र में डूब गई। इस कहानी में अन्तिम मुगल-सम्राट् बहादुरशाह के पतन-काल का और मुगल-बेगमात के आंसुओं का, जो कभी केवल हीरे, मोती, इत्र और ऐश्वर्य को ही जानती थीं, ऐसा चोट भरा रेखा-चित्र है जो हृदय में घाव कर जाता है। साम्राज्यों के पतन में विश्वासघातियों का सदैव हाथ रहा है। इसमें भी एक ऐसे विश्वासघाती का संकेत किया गया है जिसके बड़े-बड़े वर्णन मुगल-तख्त के पतनकाल में इतिहास में पाए गए हैं।

सन् १८४५ की २८वीं मई के तीसरे पहर एक पालकी चांदनी चौक में होकर लाल किले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख्वाब और जरी के पर्दों से ढकी हुई थी। आठ कहार उसे कन्धों पर उठाए थे और १६ तातारी बांदियां नंगी तलवार लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उसके पीछे ४० सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफसर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसकी जनबफ्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर में नाजुक तलवार लटक रही थी। उसकी मूंछ पर गङ्गाजमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी दाढ़ी के बीच, अंगारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आंखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चांदनी चौक की सड़कें आज की जैसी तारकोल बिछी हुई आईने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की घोंघों-पोंपों और सरटिबन्द दौड़ थी। चांदनी चौक की सड़कों पर काफी गर्द-गुब्बार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियां एक अजब बांकी अदा से उछला करती थीं।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहां तब एक बड़ा सा हौज़ था, जो चांदनी चौक की नहर से मिल गया था, और जहां कम्पनी बाग और कमेटी की लाल संगीन इमारत खड़ी है, वहां एक बड़ी भारी किन्तु खस्ताहाल सराय थी, जिसकी बुर्जियां टूट गई थीं और जहां अनगिनत खच्चर टट्टू, बैलगाड़ियां, घोड़े और परदेसी बेतरतीबी से पेड़ों के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों में भरे हुए थे।

जिस समय पालकी वहां से गुज़र रही थी, उस समय हौज़ पर खासा धोबी-घाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु संगीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियों का जमघट लगा था।

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथपथ हो रहे थे। उनका दम फूल रहा था और वे लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफसर तेज़ चलने की ताकीद कर रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज़ चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था। उसका हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। कुछ कदम और चलकर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, पालकी रुक गई।

तातारी बांदियां झिझककर खड़ी हो गईं। अफसर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी संभला न था। एक चाबुक तपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े—उठ, उठ, ओ दोज़ख के कुत्ते! देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पच्चीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े, खून का फव्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेलकर अफसर ने खूनी आंख भीड़ पर दौड़ाई। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सबसे आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होंगी। अफसर ने डपटकर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण तपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—साला, जल्दी!

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा—जनाब! हुक्म बजा लाता हूं, मगर ज़बान

संभाल···

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वहीं तड़पकर गिर गया। उसके नाक और मुंह से खून का फव्वारा बह चला। अफसर ने और एक आदमी को कन्धा लगाने का हुक्म दिया। क्षण भर में पालकी फिर अपनी राह लगी।

चिराग जल चुके थे। दीवाने खास में हजारा फानूस की तमाम काफूरी मोमबत्तियां जल रही थीं। जमुना की लहरों से धुलकर पूर्वी हवा झरोखों से छन-छनकर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ लाने की इन्तजारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहू-लुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—होशियार, अदब कायदा निगहदार! यह शब्द-स्वर चोबदारों ने दोहराया। होशियार, अदब कायदा निगहदार! उमरावमण्डल और मन्त्रि-मण्डल जमीन तक सिर झुकाकर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतरी ड्योढ़ी से निकलकर सिंहासन पर आ बैठे। चार बांदियां मोरछल लेकर बगल में खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—जल्ले इलाही बरामद कर्द मुजरा अदब से!'

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुककर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कहकर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वजीर को संकेत किया। वजीर ने जबान से कहा—जवान! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत अगर्चे सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी खास ज़बान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात मुफस्सिल में बयान करो।

युवक ने जमीन में लोट-लोटकर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फरमाया—सब हरूफ-बहरूफ सही है। कहां है वह जालिम जमीर?

जमीर तख्त के सामने आकर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फर्माया—जमीर! तुझे कुछ कहना है?

'खुदाबन्द! रहम! रहम!'

बादशाह ने हुक्म दिया—इस जालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो,

मैं इसपर भी रहम किया चाहता हूं। इसे नौकरी से बरखास्त किया जाता है और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद ज़ब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बांदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग ज़मीन तक झुक गए।

बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने तक शाही महलों में रहने की तुम्हें इजाज़त बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे मालजे को मुकर्रर किए जाते हैं।

युवक ने बादशाह की कदमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर में प्रवेश कर गए।

अन्तःपुर के उन झरोखों के भीतर, जहां किसी भी मर्द की परछाईं पहुंचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मखमली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दुःखदायी घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पांसा पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटा छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जाएगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा—एक धवल अट्टालिका, दास-दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या?

सभी विचारधाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचारधारा मूर्च्छित कर रही थी—वह कौन है? वही क्या इस सब भाग्य-परिवर्तन की कुंजी नहीं? पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर......! वह सोच में मूर्च्छित हो गया।

हठात् उसकी विचारधारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटाकर दो दासियों के साथ एक खोजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न-सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाय, घायल युवक इस भय से लपककर उठा।

खोजे ने कहा—खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुज़ूर शाहज़ादी तुमपर बहुत खुश हैं और वे जल्द तुम्हें देखने को तशरीफ लाने वाली हैं।

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष में प्रवेश किया।

दो अल्पवयस्का दासियां परछाईं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर ज़रदोज़ी और सलमें का बारीक काम निहायत फसाहत से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्तिमती रेखा के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानू थी।

केवल क्षण भर ही वह युवक उस अतिदुर्लभ मुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने ज़रा बढ़कर अपना मस्तक शाहज़ादी के कदमों पर रख दिया। शाहज़ादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानो फूल बखेर दिए। उसने कहा—कल के हादिसे का मुझे बहुत रंज है, पर मैं समझती हूं, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था, मगर कर क्या सकती थी? दादाजान से आते ही शिकायत कर दी थी।

युवक ने ज़रा ऊंचा उठकर शाहज़ादी का आंचल आंखों से लगाया और बारम्बार ज़मीन चूमकर कहा—हुजूर खुदावन्द शाहज़ादी, कल अगर हुजूर की पालकी की खाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहां? जहांपनाह ने इस नाचीज़ गुलाम को निहाल कर दिया। ताबेदार ताउम्र इन कदमों का नमक-हलाल रहेगा।

शाहज़ादी कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली गई, परन्तु उसके सांस की सुगन्ध वहां भर गई थी, और उसीके प्रभाव से युवक के घाव भर गए थे। वह उस स्थान को, जहां शाहज़ादी के कमल-पद छू गए थे, अपनी छाती से लगाकर बदहवास पड़ा रहा। उस मूर्त्ति को चाहे क्षण भर ही वह देख सका था, पर वह उसके रोम-रोम में रम गई थी। पर दुनिया के पर्दे में कौन सा ऐसा कोई मर्द-बच्चा था जो फिर उसे एक बार देख लेने का हौसला भी कर सकता?

१२ साल बीत गए। सन् ५७ की २४वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारियां आसमान को छू चुकी थीं। निकल्सन ने दिल्ली पर घेरा डाल रक्खा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बागियों का साथ दिया था। क्षण-क्षण में बागी हार रहे थे।

अंग्रेजी तोपें कशमीरी दरवाज़े पर गरज रही थीं। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फतहपुरी मस्जिद के सामने अंग्रेजी घुड़सवार और बागियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशों के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे थे। अंगरेज़ बराबर बढ़ते और जो मिलता उसे संगीनों से छेदते चले आ रहे थे। कर्नल वाट्सन के हाथ में कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर जनाब इलाहीबख्श। वे एक अरबी नफीस घोड़े पर पान चबाते, इतराते बढ़ रहे थे, लोग देख-देखकर भयभीत होकर घरों में छिप रहे थे।

यह इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, मार्ग अपनी जवांमर्दी और चतुराई से १० वर्ष में बादशाह के अमीर और नगर के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अंगरेज़ों ने दमदार मुगलों को जहां तोपों और संगीनों की नोक से वश में किया था, वहां कुछ नमकहराम, संगदिल लोगों को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ों से वश में कर लिया था। इलाहीबख्श भी उनमें से एक थे। १० वर्ष पहले शाहज़ादी के कदमों पर गिरकर नमकहलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होंने दरगुज़र कर दी थी। वे अब अंगरेज़ों के भेदिए थे।

दोनों व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गए। हौज़ के पास, जहां अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फांसियां गड़ी थीं और क्षण-क्षण में चारों तरफ गली-कूचों से आदमी पकड़े जाकर फांसी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ खास कैदी इनकी प्रतीक्षा में बंधे बैठे थे। हडसन साहब ने सबको खड़ा होने का हुक्म दिया। इलाहीबख्श ने उनमें से मुगल-सरदारों और राजपरिवार वालों की शनाख्त की; वे सब फांसी पर लटका दिए गए। इसके बाद, बादशाह किले से भाग गए हैं—यह सुनकर एक फौज की टुकड़ी लेकर दोनों तीर की तरह रवाना हुए।

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके हाथ कांप रहे थे और आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। शाहज़ादी गुलबानू ने आकर कहा—बाबाजान! यह आप क्या कर रहे हैं?

'बेटी अब और कर ही क्या सकता हूं? खुदा से दुआ मांगता हूं, कहता हूं—ऐ दुनिया के मालिक! मेरी मुश्किल आसान कर; यह तख्त, तैमूर के खून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्श!'

गुलबानू ने कहा—बाबा! दुश्मन किले तक पहुंच चुके हैं। आपके लिए सवारी तैयार है, भागिए!

बादशाह ने अन्धे की तरह शाहज़ादी का हाथ पकड़कर कहा—भागूं कहां? हाय! वह घड़ी अब आ ही गई!

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मंगाई, और परिवार के सब लोगों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी हीरे सबको देकर कहा—खुदा हाफिज़!

किले से निकलकर बादशाह सीधे निज़ामुद्दीन गए। उस वक्त उनके मुख-मण्डल की आभा उतरी हुई थी। कुछ खास-खास ख्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभचिन्तकों के सिवा कोई साथ न था। चिन्ता और भय से वे रह-रहकर कांप रहे थे। उनकी सफेद दाढ़ी धूल से भर रही थी। बादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियों पर बैठ गए।

गुलामहुसेन चिश्ती सुनकर दौड़ आए। बादशाह उन्हें देखते ही खिलखिला-कर हंस पड़े। चिश्ती साहब ने पूछा—खैर तो है?

'खैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये बदनसीब गदर वाले मनमानी करने वाले हैं। इनपर यकीन करना बेवकूफी है; ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबाएंगे। वही हुआ, भाग निकले। मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुगलों का आखिरी चिराग हूं। मुगलों के तख्त का आखिरी सांस टूट रहा है, कोई घड़ी भर का मिहमान है। फिर खून-खराबी क्यों करूं? इसीलिए किला छोड़कर चला आया। मुल्क खुदा का है, जिसे चाहे दे, जिसे चाहे ले। सैकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अब हवा का रुख कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमें अफसोस क्यों? हमने भी तो दूसरों को मिटाकर अपना घर बसाया था! हां, आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ तो ले आओ?'

चिश्ती साहब ने कहा—सिर्फ बाजरे की रोटी और सिर्के की चटनी है। हुक्म हो तो हाज़िर करूं।

'वही ले आओ।'

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खाकर और पानी पीकर कहा—बस, अब हुमायूं के मकबरे में चला जाऊंगा, वहां जो भाग्य में होगा वह होगा।

हुमायूं के मकबरे में हडसन और इलाहीबख्श ने आकर बादशाह को गिर-

फ़्तार करके रंगून भेज दिया।

तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दिल्ली में अंगरेज़ी अमल जमकर बैठ गया था। लालकिले पर यूनियन जैक फहरा रहा था। फांसियों की विभीषिकाओं ने नगर और ग्राम की जनता के मन में दहल उत्पन्न कर दी थी। भेड़ की तरह दब्बू चुपचाप अंगरेज़ों के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देख और सह रहे थे। इलाहीबख्श के पास बादशाही बख्शीश ही बहुत थी, अब अंगरेज़ी जागीरों और मेहरबानियों ने उन्हें आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलाम में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होंने कौड़ियों में पाए थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हंस रही थी। सन्ध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्रांगण में तख्त के ऊपर बढ़िया ईरानी कालीन पर मसनद के सहारे इलाहीबख्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे, दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हज़ूरी कर रहे थे। मियां जी को, मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गए थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अंगरखे पर कमखाब की नीमास्तीन पहने थे।

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्ति मैला और फटा हुआ बुर्का पहने आ रही है। लोगों ने रोका, मगर उसने सुना नहीं। वह चुपचाप मियां इलाहीबख्श के सन्मुख आ खड़ी हुई।

मियां ने पूछा—क्या चाहती हो ?

'पनाह !'

'कौन हो ?'

'आफत की मारी !'

'अकेली हो ?'

'बिलकुल अकेली !'

'कुछ काम करना जानती हो ?'

'बावर्ची का काम सीख लिया है !'

'तनखाह क्या लोगी ?'

'एक टुकड़ा रोटी !'

बहुत महीन, दर्द भरी, कम्पित आवाज़ में इन जवाबों को सुनकर मियां

इलाहीबख्श सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को बुलाकर उस स्त्री को भीतर भिजवा दिया। उस दिन उसीको खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियां इलाहीबख्श दस्तरखान पर बैठे। दोस्त-अहबाबा का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली में बिजली तारों से नहीं बांधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियां शमादानों में जल रही थीं।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बावर्चिन की तारीफ के पुल बांधने लगे। दोस्तों ने कहा—ज़रा उसे बुलाइए और इनाम दीजिए।

इलाहीबख्श ने बावर्चिन को बुला भेजा। उसने कहा—आका से दस्त-बदस्ता अर्ज़ है कि मैं गैर मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हां, आका से पर्दा म.जूल है। दोस्त लोग मन मारकर रह गए। मगर इलाहीबख्श के मन में प्रतिक्षण बावर्चिन को देखने की बेचैनी बढ़ चली। एकान्त होने पर उन्होंने उसे बुला भेजा। बावर्चिन ने जवाब दिया—मेरे मिहरबान मालिक! सफर, मिहनत और भूख से बेदम तथा कपड़ों से गलीज हूं—खिदमत में हाज़िर होने के काबिल नहीं।

इलाहीबख्श स्वयं भीतर गए और बावर्चिन के सामने जा खड़े हुए। बोले—क्या मैं तुम्हारी मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूं? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ खानदान की दुखियारी हो।

बावर्चिन ने अच्छी तरह अपना बुर्का ओढ़कर कहा—मालिक! मेरा कोई दास्तान ही नहीं!

'क्या मुझसे पर्दा रक्खोगी?'

'यह मुमकिन नहीं है!'

'तब?'

'क्या आप मुझे देखना चाहते हैं?'

'ज़रूर, ज़रूर!'

वह मैला और फटा बुर्का चम्पे की सी उंगलियों ने हटाकर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्ति, जिसके नेत्रों में पानी और होठों में रस था, सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आंखों की धुन्ध आंखों से पोंछकर ज़रा आगे बढ़कर कहा—तुम्हें, आपको मैंने कहीं देखा है!

'जी हां, मेरे आका ! मेरे दादाजान की मिहरबानी से, लाल किले के भीतर जब आप मेरी डोली में लगाए जाने के लिए चाबुकों से लहू-लुहान किए गए थे, तब यह बदनसीब गुलबानू आपको तसल्ली देने तथा और भी कुछ देने आपकी खिदमत में आई थी। उम्मीद थी, मर्द औरत की अमानत—खासकर वह अमानत, जो दुनिया की चीज नहीं, जिसके दाम जान और कुर्बानी हैं—संभालकर रक्खेंगे। पर पीछे यह जानने का कोई ज़रिया न रहा कि हुज़ूर ने वह अमानत किस हिफाज़त से कहां छिपाकर रक्खी ? गदर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुंह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उनके मुंह से निकल पड़ा—आप शाहज़ादी गुलबानू......... ?

गुलबानू ने शान्त स्वर में कहा—वही हूं जनाब ! मगर डरिएगा नहीं ! अगर गदर में मेरी अमानत लुट भी गई होगी तो वह मांगने जनाब की खिदमत में नहीं आई हूं। अब गुलबानू शाहज़ादी नहीं, हुज़ुर की कनीज़ है—महज़ बावर्चिन है ! मेरे आका, क्या बांदी के हाथ का खाना पसन्द आया ? क्या बदनसीब गुलबानू की नौकरी बहाल रह सकेगी ?

इलाहीबख्श बेहोश होने लगे। वे सिर पकड़कर वहीं बैठ गए। गुलबानू ने पंखा लेकर झलते हुए कहा—जनाब के दुश्मनों की तबीयत नासाज़ तो नहीं, क्या किसीको बुलाऊं ?

इलाहीबख्श ज़मीन पर गिरकर शाहज़ादी का पल्ला चूमकर बोले—शाहज़ादी, माफ करना ! मैं नमकहराम हूं।

'मैं जानती हूं। मगन हुज़ूर, यह तो बहुत छोटा कसूर है। क्या हुज़ूर यह नहीं जानते कि औरतें दिल और मुहब्बत को सल्तनत से बहुत बड़ी चीज़ समझती हैं ? क्या आप यकीन करेंगे कि १२ साल तक मैं आपकी उस ज़मीन में घायल तड़पती, सूरत को आंखों में बसाकर जीती रही। जो कुछ बन सका बाबाजान से कहकर किया। मैं जानती थी कि मिल न सकूंगी, मगर आपको दुनिया में एक रुतबा देने की हरस थी—वह पूरी हुई।

इलाहीबख्श पागल की तरह मुंह फाड़कर सुन रहे थे।

शाहज़ादी ने कहा—जब बाबाजान ने आपके दगा और अंग्रेज़ों से आपके मिल जाने का हाल कहा तो दिल टूट गया। मगर उस दिन से अब काम ही

क्या ? वह टूटे या साबूत रहे, आखिर अनहोनी तो हो गई—एक बार फिर मुलाकात हो गई। जहे किस्मत !

इलाहीबख्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे। उसके बाद किसीने फिर उन्हें नहीं देखा !

# ऐतिहासिक कहानियां

- *भाट का वचन*
- *लात की आग*
- *कलंगा दुर्ग*

# भाट का वचन

यह एक आदर्श ऐतिहासिक रोमांचकारी गाथा है, जो गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा कुमारपाल से सम्बन्धित है। इसमें भी सामन्तशाही का एक पहलू दिखाया गया है। यह एक भाट के ओजपूर्ण उत्सर्ग की कहानी है।

इस बात को आज ८०० वर्ष बीत गए। उन दिनों गुजरात पर सोलंकी राजा कुमारपाल राज्य कर रहा था। सोलंकियों ने लगभग ३०० वर्ष गुजरात पर राज्य किया। उनका राज्यकाल गुजरात के इतिहास में स्वर्णयुग कहाता था। सिद्धराज जयसिंह के मरने पर पचास वर्ष से भी बड़ी आयु में कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा। सिद्धराज महाप्रतापी राजा था पर वह अपुत्र मरा। कुमारपाल उसके खानदानी भाई का पोता था। सिद्धराज उससे प्रसन्न न था, अपने राज्यकाल में उसने जब यह सुना कि कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा तो उसने चिढ़कर कुमारपाल को जान से मरवा डालने के बड़े-बड़े प्रयत्न किए और कुमारपाल बहुत दिन तक छद्मवेश में देश-विदेश में ठोकरें खाता फिरा।

कुमारपाल ही गुजरात का राजा होगा, इस बात की भविष्यवाणी एक जैन यति हेमचन्द्र ने की थी। कुमारपाल ने राजा होकर हेमचन्द्र को अपना गुरु बना लिया और उसके इतना अधीन हुआ कि लोग उसे जैनी कहने लगे। यों सोलंकी राजाओं के इष्टदेव भगवान् सोमनाथ थे। वे परम माहेश्वर कहाते थे। कुमारपाल का शैवों पर यद्यपि उदारभाव रहा—परन्तु जैन धर्म पर उसकी ऐसी आस्था बढ़ी कि राज्य के नियमों की भी परवा न कर उसने जैनों के साथ भारी-भारी रियायतें कर डालीं। उसने जैन श्रावकों का करोड़ों रुपयों का आयकर माफ कर दिया। अनेक जैन उपाश्रय बनवाए। जैन धर्मों की अनेक वृत्तियां नियत कीं। जैन यतियों का भरे दरबार में स्वागत होने लगा। अनेक जैन मंदिरों की उसने स्थापना की।

हेमचन्द्र बड़े भारी पंडित थे। वे तान्त्रिक और यन्त्र शास्त्री भी थे। उन्हें कलिकाल-सर्वज्ञ कहा जाता है। उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। उनके प्रभाव से

गुजरात की राजधानी पाटन सम्पूर्ण भारत में विद्या का केन्द्र हो गई। जैन ग्रन्थकारों ने कुमारपाल पर बहुत ग्रन्थ रचे। उन्होंने अपनी प्रशस्तियों से कुमारपाल का यश दिग्दिगान्त में फैला दिया।

परन्तु राजा पर जैनों का यह प्रभाव और पाटन में उनकी सत्ता का प्रभुत्व उसके भाई-बन्दों को रुचा नहीं। उन्होंने उनके तथा राजा के विरुद्ध बड़ा भारी षड्यन्त्र संगठित कर डाला और वह विद्रोह के रूप में फूट निकला।

एक बात और थी। पाटन के सोलंकी राजा शैव थे, परन्तु प्रधानमन्त्री परम्परा से जैन होते आ रहे थे। कुमारपाल का प्रधानमन्त्री उदय महता था। वह बड़ा भारी राजनीति का पण्डित और अर्थशास्त्री था। बहुत बार उसने आड़े समय में पाटन की प्रतिष्ठा बचाई थी। इस प्रकार इधर जैन गुरु और उधर जैन मन्त्री इन दोनों प्रबल पुरुषों के सहयोग से पाटन सोलंकियों का नहीं, जैनों का ही राज्य प्रतीत होता था। फिर पाटन में जैन सेठों के भी बहुत घराने थे। उनके लाखों-करोड़ों के कारबार संसार के देश-देश में फैले थे। वे सब करोड़-पति अरबाधिपति सेठ जैन ही थे। राजा जैनों के प्रभाव में था। अपने गुरु के विपरीत वह कुछ नहीं सुनना चाहता था। राज्यसूत्र जैन मन्त्री के हाथ में था—व्यापार में भी उन्हींका बोलबाला था। परन्तु घर-बाहर सर्वत्र जैनों के प्रति विरोध फूटा पड़ रहा था।

परन्तु कुमारपाल बड़ा तेजस्वी राजा था। अपने जीवन की कठिनाइयों को झेलकर वह ढीठ और बहुदर्शी बन गया था। उसने अपने बहनोई सांभरपति अर्णोराज को, अपनी बहिन से एक अपशब्द कहने के अपराध में, भरे दरबार में जीभ काट लेने का आदेश दिया था। विवेरा के राजा को कुमारपाल ने एक अनुरोध पत्र लिखकर कुछ रेशमी दुपट्टे मंगाए थे। इसपर वहां के राजा ने कुमारपाल की कुछ दिल्लगी उड़ाई थी। इसीपर कुमारपाल ने उसपर सात सौ सामंत और बीस हजार सेना समेत मालव-राजकुमार चाहन को भेजा। उसने राजा को युद्ध में मार एक लाख रेशमी दुपट्टे और सात सौ दुपट्टे बनानेवाले कारीगर कुमारपाल की सेवा में ला उपस्थित किए। ऐसा ही वह काल था। उसमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत ठीक उतरती थी।

उन दिनों मेदपाट चित्रकूट (मेवाड़-चित्तौड़) गुजरात के अधीन करद राज्य

था। संभवतः जयसिंह सिद्धराज ने उसे मालवजय के साथ ही विजय किया था। ६५ वर्ष की आयु में कुमारपाल ने मेदपाट के सीसोदियों से लड़की मांगी और मेदपाट के राजा को अपनी पुत्री बूढ़े कुमारपाल को देना स्वीकार करना पड़ा। घमण्डी गुर्जरेश्वर सीसोदिनी को व्याहने चित्रकूट नहीं गया। उसने अपना खांडा देकर जयदेव भाट को भेज दिया और आदेश दिया कि खांडे से ही सीसोदिनी रानी का व्याहकर डोला पाटन लाया जाए।

सिसोदिनी कुमारी का नाम चन्द्रकला था। सीसोदियों का इष्टदेव श्री एक-लिङ्ग था। कुमारी ने सुन रखा था कि गुजरात का राजा जैनधर्मी है, और कोई रानी उस समय तक पाटन के चन्द्रमहल में प्रविष्ट नहीं हो सकती जब तक कि वह उपाश्रय में जाकर गुरु की चरण-वन्दना न कर ले। सीसोदिनी राज-कुमारी हठ ठान बैठी कि प्राण चले जाएं तो अच्छा, परन्तु मैं जैन उपाश्रय में नहीं जाऊंगी और जैन गुरु की चरण-वन्दना नहीं करूंगी।

कुमारी के माता-पिता ने बहुत समझाया, अपनी विवशता प्रकट की। पर कुमारी ने अपनी हठ नहीं छोड़ी। उसने जयदेव के आमने-सामने बात की। रानी ने कहा—

'मैं जैन उपाश्रय में नहीं जाऊंगी तथा जैन गुरु की चरण-वन्दना नहीं करूंगी।'

भाट ने कहा—आपको न जैन दीक्षा लेनी होगी, न जैन उपाश्रय में जाना होगा, न जैन गुरु की वन्दना करनी होगी।

'करनी पड़ी तो ?'

'तो पहले भाट का सिर कटेगा—पीछे और बात।'

भाट से वचन लेकर सिसोदिनी रानी महल में बैठी।

परन्तु पाटन में आकर उसे जैन उपाश्रय में जाकर गुरु की चरण-वन्दना करने का आदेश दिया गया।

रानी ने एकदम इन्कार कर दिया।

राजा भी हठ पकड़ गया। उसने कहा—

'तुम्हें अवश्य उपाश्रय में जाकर आचार्य की चरण-वन्दना करनी पड़ेगी।'

रानी ने कहा—राजा मुझे अमान्य कर दें, सूली चढ़ा दें, सिर काट लें, वह स्वीकार, पर जैन उपाश्रय में जाकर जैन गुरु की वन्दना करना मुझे

कदापि स्वीकार नहीं।

राजा ने कहा—पाटन में यह हठ न चलेगा।

रानी ने कहा—यह हठ नहीं, मेरा निश्चय है, अटल व्रत है।

'परन्तु यह मेरी आज्ञा है।'

'मैं भाट से वचन लेकर आई हूं, उससे करार करके महल में बैठी हूं।'

राजा ने जयदेव भाट को बुला भेजा। भाट के आने पर लज्जा त्याग रानी सामने आ खड़ी हुई। उसने सतेज स्वर में कहा—

'बाबाजी, आपके गुजरात में इसी भांति वचन का पालन होता है?'

जयदेव ने राजा से कहा—

'महाराज, सिसोदिनी करार करके आई है।'

'कैसा करार?'

'कि वह जैन उपाश्रय में नहीं जाएगी, गुरुदेव की पद-वन्दना नहीं करेगी।'

कुमारपाल क्रुद्ध हो गया। उसने कहा—

'यह नहीं हो सकता।'

'यही होगा महाराज।'

'क्यों होगा?'

'मैं वचनों से बंधा हूं।'

'पर तुझे ऐसी प्रतिज्ञा करने का अधिकार किसने दिया?'

'आपने। आपकी आज्ञा से मैं खांडा लेकर मेदपाट गया था।'

'गया था, तो फिर?'

'जब मैंने देखा कि बिना वचन दिए राजपुत्री ब्याह न करेगी, और गुजरात की प्रतिष्ठा भंग होगी या रक्त की नदी बहेगी तो मैंने प्रतिज्ञा करनी ठीक समझी और अब उसका पालन होना चाहिए महाराज!'

'यह तूने अच्छा नहीं किया।'

'आप जैसा समझें पृथ्वीनाथ, परन्तु अब वचन-पालन करना होगा।'

'यह कदापि न हो सकेगा, रानी को गुरुदेव की पद-वन्दना करने उपाश्रय जाना होगा।'

'तो महाराज पहले मेरा सिर कटेगा—पीछे सीसोदिनी रानी का, जो हो सो हो!'

'यह बात ?'

'यह भाट का वचन है महाराज।'

रानी ने कहा—महाराज मेरी जीभ काटने या विष-पान करने की आज्ञा दे सकते हैं।

'परन्तु उपाश्रय जाने में क्या है ?'

'वहां मैं नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी।'

जयदेव ने कहा—महाराज, कुलधर्म त्यागने से कल्याण नहीं होगा। मैंने महाराज सिद्धराज जयसिंह की भी सेवा की है और आपका भी शुभचिन्तक हूं। मैं सूर्य को साक्षी देकर यह वचन कहता हूं कि भाट का वचन राजा के वचन से ऊपर है महाराज। जयदेव तेज़ी से वहां से चल दिया। हवा में उसकी सफेद दाढ़ी फहरा रही थी। वह सीधा राजा के भाई अजयपाल के पास गया और कहा—महाराज! भाट आपका शरणागत है। मैंने सीसोदिनी को वचन दिया है। अब उस वचन, धर्म तथा सीसोदिनी का प्राण तीनों की रक्षा के लिए अपनी तलवार मुझे दीजिए। अजयपाल ने तलवार नंगी करके कहा—यह गुजरात की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, यह तलवार उसकी रक्षक है। जयदेव ने अजयपाल की विरद गाई।

अजयपाल और जयदेव ने परामर्श करके यह निर्णय किया कि सीसोदिनी रानी को महल से निकालकर भाटों की संरक्षता में मेदपाट पहुंचा दिया जाए। अजयपाल की सहायता से रानी को महल से बाहर निकाल लिया गया। और जयदेव के भाई-बन्द २०० भाट रानी के डोले को घेरकर तारों की छांह में पाटन से चल दिए। आगे-आगे सांडनी पर सवार जयदेव भाट दो तलवारें बांधे चला। उसके पीछे उसका बेटा घोड़े पर तलवार, कटारी, जमधर तेगा बांधकर। और उसके पीछे कुछ पैदल, कुछ सवार भाट। किसीके हाथ में तलवार, किसीके हाथ में लाठी। कोई धड़ेदम निहत्था।

राजा ने सुना तो क्रोध से आगबबूला हो गया। वह स्वयं क्रोधोन्मत्त हो भाटों को और उस ढीठ क्षत्रियबाला को अपनी अवज्ञा का दण्ड देने गुर्जर सैन्य लेकर पीछे दौड़ चला। अभी दस कोस का मैदान भी न पार हो पाया था कि गुर्जर सैन्य ने रानी के डोले को घर दवाया। सारे भाट सिमटकर मरने-मारने को

तुल बैठे। जयदेव ने आगे आकर डोले का मुजरा किया और कहा—रानी, अब लाज-शर्म का मौका नहीं है। डोले से बाहर आओ और सांडनी पर चढ़कर मेदपाट की राह पर दौड़ जाओ। यह सांडनी साठ योजन धावा करती है। मेरा बेटा तुम्हारी रक्षा में है। और मैं अपने भाई-बन्दों के साथ गुर्जरेश्वर से लोहा लूंगा।

उसने अपनी तलवार सूत ली। जयदेव ने ललकार लगाई—भाइयो, अब अनीका वक्त है, दुनिया देखे कि भाट का वचन बड़ा है या राजा का !

भाटों ने हुंकार भरी—भाट का वचन, भाट का वचन !

'तो भाइयो, सब कोई सिर से कफन बांध लो।'

सब भाटों ने सिर से कफन बांध लिया। और जिसके हाथ जो पड़ा, लेकर मरने-मारने को तैयार हो बैठा। सबके आगे नंगी तलवार दोनों हाथों में लिए जयदेव भाट था।

गुर्जर-सैन्य ने भाटों को देखते ही देखते घेर लिया। कहां अथाह समुद्र के समान गुर्जर सैन्य, कहां बूंद के बराबर भाट ! चारों ओर तलवारें छा गईं।

कटाकटी चली ही थी कि इसी समय सीसोदिनी रानी दोनों दलों के बीच आ खड़ी हुई। उसने एक हाथ ऊंचा करके सतेज स्वर में कहा—क्षण भर ठहरो, यह मैं एकलिङ्ग के शरण चली और रानी के हाथ की कटारी मूंठ तक रानी के कलेजे में घुस गई। लाल रक्त ने उसकी सुहाग-चिह्नों से भरी चूनरी को रंग दिया। उसका निर्जीव शरीर भूमि पर झुक गया।

जयदेव ने उन्मत्त की भांति दोनों हाथों की तलवार घुमाते हुए कहा—रंग है, रंग है, राजपूतनी का रंग है, आ राजा, अब भाट का भी रंग देख ! किन्तु कुमारपाल जड़वत् स्तम्भित खड़ा का खड़ा रह गया। गुर्जर वीरों की तलवारें उठी की उठी रह गईं। राजा घोड़े से उतर पड़ा और विषादपूर्ण दृष्टि से जयदेव की ओर उसने देखा।

भाट ने कहा—अब सीसोदिनी रानी पर मेरा ही अधिकार है, उसके साथ अब भी मैं वचनबद्ध हूं। महाराज को इसमें आपत्ति हो तो मेरी यह तलवार हाज़िर है।

किन्तु राजा ने जवाब नहीं दिया। वह नीची गर्दन किए कुछ देर खड़ा रहा। फिर उसने कहा—जयदेव, अब मुझे क्या करने को कहता है ?

'महाराज महल पधारे। मैं सीसोदिनी रानी को लेकर पाटन आता हूं।' कुमारपाल विषण्णवदन पीछे-पीछे लौट गया। और भाटों ने सीसोदिनी का शरीर कन्धों पर उठा लिया। वे पाटन लौटे।

पाटन के अंचल में महाचिता चुनी गई। भाट सब इस काम में जुट गए। जयदेव ने कहा—जहां जितना चन्दन मिले उठा लाओ। जितना दूकानों में हो वह सब, जितना मकान-महल में जहां लगा हो वह सब। राजा की बारहदरी चन्दन के खम्भों पर थी। भाटों ने बारह दरी ढहाकर खम्भे उखाड़ लिए, चन्दन का पहाड़ लगा, उस पर भी कपूर, कस्तूरी, कुंकुम की बरसात बरसने लगी। सारा पाटन वहीं आ जुटा, सभी के हाथों में श्रद्धा के फूल थे। सभी की आंखों से गंगा-जमुना की धार बह रही थी। राजा ने भाटों को मनमानी करने से नहीं रोका। चिता सज गई। वह एक छोटे से पर्वत के समान थी।

चिता में रानी का शरीर रखकर जयदेव ने उसकी तीन परिक्रमा कीं और फिर आग लगा दी। देखते ही देखते ज्वाला का समुद्र लहराने लगा।

बूढ़े जयदेव ने पुकार लगाई—

'फट भूंडा फट् पाखिया, तैं लीधी अमारी लाज।
तारू जाशे वरसे राज, मौत कमोते वौधियां।

फिर उसने गर्दन उठाकर चारों ओर देखा। नरमुण्ड ही नरमुण्ड नजर आ रहे थे। सने वांगल गाई—

'कौन भाट के वचन की आन मानता है—वह मेरे पीछे आए।' और उछल-कर चिता में कूद पड़ा। उसके पीछे उसका जवान बेटा, और उसके पीछे एक के बाद दूसरे उसके दो सौ भाई-बन्द भाट।

देखते ही देखते भाट के देश के दो सौ भाई-बन्द सीसोदिनी रानी के साथ उसी एक चिता पर जलकर खाक हो गए।

एक चीख, एक आह भी किसीके मुंह से नहीं निकली।

# लात की आग

यह कहानी भी गुर्जर-नरेश कुमारपाल और प्रसिद्ध चौहान नृपति अर्णोराज की एक अति प्रभावशाली झड़प की कहानी है। इस कहानी में भी सामन्तशाही के काल में राजपूतों की मनोवृत्ति जैसी होती थी, इसमें प्रकट की गई है।

अब से आठ-नौ सौ वर्ष पहले जब बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण चल रहा था, जब विज्ञान सो रहा था—अणुबम, उदजन और कोबाल्ट बम भूमि के खनिजों में दबे पड़े थे, और मनुष्य के हाथ में सिर्फ एक लोहे का टुकड़ा था—जिसपर उसका समूचा अहंभाव केन्द्रित था—तब तक उसकी दृष्टि को विज्ञान का दूरदर्शी चश्मा नहीं मिला था। वह अपने चारों ओर की थोड़ी ही दूर तक की चीजों को देख सकता था। वह उसी अपनी छोटी सी दुनिया में सबसे श्रेष्ठ, सबसे बड़ा, सबसे ऊपर अपने को आज की ही भांति देखना चाहता था। उसका अहंभाव आज के पहाड़-जैसे अहंभाव के मुकाबिले तिल के समान तुच्छ था, पर वह उसीपर गर्वित था, उसीपर सन्तुष्ट था।

उन दिनों भारत में तीन हिन्दू राजगद्दियां सर्वोपरि थीं। एक कन्नौज के राठौरों की, दूसरी साम्भर के चौहानों की और तीसरी अनहिल्लपट्टन-गुजरात के सोलंकियों की। इन तीनों में गुजरात के सोलंकी सर्वोपरि थे। उनके नाम का डंका सारे भारत में बजता था। उनका आतंक भारत भर में फैला था, यद्यपि उन दिनों का भारत आज का भारत न था—न आजकल की रेल, तार, डाक, मोटर, वायुयान थे, न यातायात के सुभीते, न रेडियो था न बिजली के प्रसाद। अन्ध युग था वह। दस कोस के समाचार भी महीनों तक नहीं मिलते थे। प्रत्येक राज्य अपने में, प्रत्येक नगर अपने में, प्रत्येक घर अपने में और प्रत्येक जन अपने में ही सीमित था।

गुर्जरेश्वर सोलंकी सिद्धराज जयसिंह बड़े प्रतापी राजा थे। अपने भुजबल का उन्हें बड़ा घमण्ड था। वे पाटन में सब राजाओं में शीर्षस्थनीय थे। उन्होंने बड़े-बड़े पराक्रम किए—जूनागढ़ के राजा खगार को मारकर उसकी स्त्री का

हरण किया। मालव के यशोवर्मा को मारकर उसकी खाल से अपनी तलवार की म्यान मढ़ी। सरस्वती-तीर पर सिद्धपुर बसाया, रुद्रमहालय की स्थापना की। परन्तु जब मरे तब वे निस्सन्तान थे। उनके मरने पर उनके भाई त्रिभुवनपाल के छोटे कुमार कुमारपाल गद्दी पर बैठे। जिस समय कुमारपाल गद्दी पर बैठे उस समय उनकी उम्र पचास साल को पार कर रही थी। अपने जीवन के पचास साल उन्होंने दर-दर मारे फिरने में बिताए। उन्होंने बड़े दुःख उठाए। सिद्धराज उनसे खुश थे। और जब उन्होंने यह देखा कि यह मेरा उत्तराधिकारी होगा तब वे उनकी जान के ग्राहक हो गए थे। उन्हें मरवा डालने के लिए सिद्धराज ने बड़े-बड़े प्रयत्न किए। प्राणों के भय से उन्हें देश-विदेश भागना पड़ा। परन्तु अन्त में गुजरात की गौरवपूर्ण गद्दी मिली उन्हींको।

कुमारपाल भी बड़े तेजस्वी थे। उनका अहंभाव भी कुछ साधारण न था। उन्होंने बीस वर्ष गुजरात की गद्दी को सुशोभित किया और अन्त में ८० वर्ष की आयु में घृणित कुष्ठ रोग में घुल-घुलकर मरे। गद्दी पर बैठने पर भी उन्हें बड़े-बड़े विरोधों का सामना करना पड़ा। उन्होंने मालवा के राजा बल्लाल और कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन को युद्ध में हराया। अपने बहनोई का अपने हाथ से वध किया। विवेरा के राजा को एक अनुरोधपत्र लिखकर कुमारपाल ने कुछ रेशमी दुपट्टों की मांग की थी। राजा ने इसपर कुमारपाल की हंसी उड़ाई। इसीपर कुमारपाल ने सात सौ सामन्त और तीस हज़ार सेना देकर मालव के राजकुमार वाहड़ को उसपर भेजा। उसने राजा को मार राजधानी को जलाकर छारा कर दिया, और एक लाख रेशमी दुपट्टे तथा सात सौ दुपट्टे बुनने-वाले कारीगर पाखारों को लाकर कुमारपाल की सेवा में उपस्थित किया। उसने मेदपाट, मेवाड़, अवन्ति, मालव और अर्बुद के राजाओं को जय किया। उसके राज्य की सीमाएं उत्तर में तुर्क राज्य से मिली हुई, पूर्व में गंगा तक, दक्षिण में विन्ध्याचल और पश्चिम में सिन्ध नदी तक फैल गई थीं। उसने अनेक नन्द-महल बनवाए, अनेक देवालयों का जीर्णोद्धार किया। उसीकी छत्र-छाया में उसके कुलगुरु जैन यति कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने अमर साहित्य रचा। वास्तव में कुमारपाल का काल सोलंकियों का प्रताप-काल था।

परन्तु सबसे विचित्र और अद्भुत जो एक घटना इस बड़े राजा के जीवन में घटी, यह कहानी उसीसे सम्बन्धित है। तब तक यहां मुस्लिम राज्य की

स्थापना नहीं हुई थी। परन्तु मुसलमानों के आक्रमण अवश्य होते रहते थे। हिन्दुओं के तीन प्रमुख राज्यों में साम्भर के चौहानों का एक राज्य भी था, जिसके प्रतापी राजा अर्णोराज थे। अर्णोराज ने अजमेर के निकट मुस्लिम आक्रमणकारियों से भारी लोहा लिया था। इससे उनका यश दिग्-दिगन्त में फैल गया था। यह चौहान साम्भरपति अर्णोराज, गुर्जरमहाराज कुमारपाल के बहनोई थे। कुमारपाल की बहन देवलदेवी शाकम्भरीनाथ अर्णोराज को ब्याही थी।

उन दिनों गुजरात और राजपूताने के राजपूतों में एक रिवाज ऐसा था जो अति साधारण होने पर भी महत्त्व रखता था। गुजरात के राजपूत नंगा सिर रहने में कोई हानि नहीं समझते थे। वे घर में प्रायः नंगे सिर रहते थे। परन्तु राजपूताने के राजपूत नंगे सिर रहना असभ्यता समझते थे। वे सदैव पाग सिर पर रखते थे। और यदि कोई नंगा सिर उनके सम्मुख आए तो उसे अपने लिए अपमानजनक समझते थे। एक बार अर्णोराज और देवलदेवी दोनों राजा-रानी चित्रसारी पर चौसर खेल रहे थे। राजा ने अवसर पाकर रानी की गोटी मारकर यह कहा—यह मारा नंगे सिर वाला! इसपर देवलदेवी ने समझा कि उसके भाई गुर्जरेश्वर पर व्यंग्य किया गया है। उसने ताना मारते हुए कहा—नंगे सिर वाले को मारने वाले के धड़ पर सिर नहीं रहेगा। यह सुनते ही अर्णोराज क्रोध से सुलग उठे। उन्होंने रानी को लात मारकर कहा—जा, जा, यह मेरी लात ही उस नंगे सिर पर है।

देवलदेवी भी बड़े बाप की बेटी थी। उसने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—तुम्हारी यह लात लेकर मैं पाटन जा रही हूं। वहां से इसके मूल्य का लोहा मैं भेजूंगी।

राजा ने भी तिनककर कहा—जा, जा, अभी जा। पर इस लात का मूल्य मैं लोहा नहीं, सोना लूंगा। जाकर देख, तेरे पाटन में कितना सोना है।

रानी बोली—सोना बहुत है, पर वह राजपूतों के लिए नहीं है, बनियों के लिए है। तुम राजपूत हो, तुम्हें लोहा ही मिलेगा। पर गुजरात का लोहा खाओगे तब देखूंगी झेल भी सकोगे या नहीं! और भी बहुत विग्रह-प्रलाप हुआ। और अर्णोराज ने तत्क्षण पालकी मंगाकर रानी को गुजरात रवाना कर दिया।

कुमारपाल के सामने देवल ने खूब रो-रोकर अपने अपमान की बात कही। उसने कहा—भाई, यह लात मुझे नहीं मारी गई है गुर्जरेश्वर के सिर पर

चौहानों ने लात मारी है। कुमारपाल ने दिलासा दिया—धीरज रख। इस लात के मूल्य का लोहा गुजरात में है।

कुमारपाल ने चालीस हज़ार सेना और चार सौ सावंत अर्णोराज पर रवाना कर दिए। सेनापति को आदेश दिया कि अर्णोराज को ज़िन्दा बांधकर मेरे सामने लाया जाए। अर्णोराज ने सुना कि गुजरात की चालीस हज़ार तलवारें शाकम्भरी की ओर आ रही हैं तो वह अपने तीस हज़ार चौहानों और तीन सौ सावंतों को लेकर शाकम्भरी से बाहर निकला। राह में ही दोनों सेनाएं भिड़ गईं : गुजरात के सोलंकी और साम्भर के चौहान। खूब लोहा बजा। रक्त की धाराएं बहीं। रुण्ड-मुण्ड लोटे। चील और गृद्धों का जशन हुआ। लोहे ने लाल पानी पिया। अन्त में बज़नी रहा—गुजरात के सोलंकियों का लोहा। अर्णोराज घायल होकर बन्दी हुए। कुमारपाल के सेनापति अर्णोराज को रस्सियों से बांधकर पाटन ले आए—पाटन, जहां कभी वह सिर पर मौर बांधकर बाजे-गाजे के साथ आए थे। इस युद्ध में जिन राजाओं ने अर्णोराज की सहायता की थी, उन सबको कुमारपाल ने मृत्यु-दण्ड दिया। केवल अर्णोराज को बन्दीगृह में रखकर उसको क्या दण्ड दिया जाए, इसपर वे विचार करने लगे।

देवलदेवी का हृदय हाहाकार करने लगा। उसने अपने वस्त्र फाड़ डाले, बाल नोच लिए। अन्न-जल त्याग दिया। हाय, उसीकी करनी से आज उसके महाप्रतापी पति की यह दुर्दशा हुई! जहां जमाई होने के नाते कभी उनके पैर पूजे जाते थे, वहां वे आज बन्दीघर में पड़े मृत्यु की आज्ञा की बाट जोह रहे थे। कैसे वह अब अपने पति के प्राणों की रक्षा करे? कैसे वह अब अपने वैधव्य को टाले? भाई कितना कठोर हृदय है—यह वह जानती थी। उसे कुमारपाल से दया की कुछ भी आशा न थी। बहुत सोच-विचारकर उसने गुजरात के मन्त्री उदय महता को बुलाया। और रो-रोकर उनके पैरों में लेटकर उसने कहा—महता, शाकम्भरी का आधा राज्य ले लो, पर मेरे पति के प्राण बचा लो। मुझे विधवा न बनाओ। मैं तुम्हारी शरण हूं।'

उदय महता ओसवाल जैनी थे। वह बड़े राजनीतिज्ञ और योग्य पुरुष थे। गुजरात के बड़े राज्य का सारा राज्य-भार इन्हीं योग्य मन्त्री पर था।

देवलदेवी को उन्होंने बहुत सांत्वना दी। और उसके कान में अपनी युक्ति का मन्त्र सुना दिया। मन्त्र समझाकर उन्होंने कहा—बहन, जैसा मैंने कहा है

वही करो। मुझे आशा है, अन्त में सब ठीक हो जाएगा। कुछ तो उदय महता के संकेत से और कुछ देवलदेवी के रत्नभरणों ने उसका मार्ग सरल कर दिया। उसने रो-रोकर पति के वक्ष को आंसुओं से तर कर दिया। और उसने उदय महता का मन्त्र पति को सुना दिया। सुनकर अर्णोराज ने भी मन्त्र स्वीकार कर लिया।

*उदय महता के उद्योग और प्रभाव से अर्णोराज को रस्सी में बांधकर नगर* में नहीं घुमाया गया। उनसे बाजार में भिक्षा नहीं मंगवाई गई। प्राणदण्ड की आज्ञा भी नहीं सुनाई गई। अन्त में एक दिन भरे दरबार में रस्सियों से बांधकर अर्णोराज को लाया गया, जहां उन्हें दण्डाज्ञा दी जाने वाली थी। दरबार खचाखच भरा था। सब राजपुरुष, सरदार, सावंत और प्रमुख नगरवासी उपस्थित थे। कुमारपाल गद्दी पर विराजमान थे। अर्णोराज रस्सियों में बंधे अधोमुख सामने खड़े थे। कुमारपाल ने कहा—महाराज अर्णोराज, आपने अकारण अपनी रानी और हमारी बहन का अपमान किया, और गुजरात के सिर पर लात मारी। आपकी इस लात का मूल्य चुकाने को गुजरात के अनेक वीरों के प्राण गए। आपके इस अपराध की सजा मृत्यु ही है। परन्तु मन्त्रीश्वर के तथा गुरु हेमचन्द्र के कहने से मैं तुम्हें प्राणदान देता। फिर भी तुम्हें थोड़ा दण्ड तो मिलना ही चाहिए। तुम हमारे बहनोई और सम्बन्धी हो इसलिए सब बातों पर विचार कर मैं आज्ञा देता हूं कि जिस जीभ से तुमने हमारी बहन को गाली दी है वही तुम्हारी जीभ इस समय काट ली जाए।

दण्डाज्ञा सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। जलाद छुरी और संडासी लेकर आगे बढ़े। उन्होंने अर्णोराज की जीभ संडासी से पकड़कर खींच ली। परन्तु इसी समय देवलदेवी 'रक्षा करो! क्षमा करो!' चिल्लाती हुई सब अवरोधों को दूरकर बीच सभा में आ खड़ी हुई। उसने भूमि में पछाड़ खाकर राजा से कहा—भाई क्षमा करो, गुर्जरेश्वर! यह तुम्हारे बहनोई हैं, प्रतापी राजा अर्णोराज हैं। हे भाई, मैं तुम्हारी बहन हूं, दुखियारी बहन!

निस्सन्देह यह सब उदय महता का मन्त्र था। परन्तु बहन को इस प्रकार अन्तःपुर से बाहर राजसभा में आकर विलाप करती देख गुर्जरेश्वर कुमारपाल ने कहा—बहन, तूने यहां आकर राजकुल की मर्यादा भंग की है। तू अन्तःपुर

में जा। राजाज्ञा हो चुकी। वह अब नहीं लौटाई जा सकती। किन्तु देवलदेवी क्रुद्ध होकर गरजी—क्यों नहीं लौटाई जा सकती? बहनोई को दण्ड देना न्याय नहीं है। भाई, तुम अपनी एक बहन को विधवा कर चुके हो अब दूसरी को भी विधवा करोगे तो तुम्हारा यश डूब जाएगा। कुछ तो विचार करो, गुर्जरेश्वर!

परन्तु कुमारपाल टस से मस न हुए। उन्होंने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—राजाज्ञा हो चुकी। अर्णोराज, अपना दण्ड भोग।

जल्लाद अभी भी उनकी जीभ को संडासी से पकड़े खड़ा था। अब उसकी छुरी जीभ की ओर बढ़ी। परन्तु इसी समय कलिकाल-सर्वज्ञ यति हेमचन्द्राचार्य उठकर बोले—राजन्! समर्थ पुरुष दण्ड देते हैं, पर जो उनसे भी अधिक समर्थ होते हैं वे क्षमा करते हैं। अर्णोराज को आपने शस्त्र से जीता। अब क्षमा से जीतिए और दुहरी विजय का कीर्ति-लाभ कीजिए।

गुरु के वचन सुनकर कुमारपाल ने अर्णोराज के बन्धन खोलने की आज्ञा दी, और कहा—अर्णोराज गुरु की आज्ञा से और बहन के कहने से मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। इसी समय देवलदेवी ने पति के निकट जा कुछ संकेत किया। संकेत समझ अर्णोराज बोले—गुर्जरेश्वर! आपने मुझे बल से जय किया, इसका मुझपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु आपकी क्षमा ने मेरा हृदय बदल दिया है। आपने मुझे क्षमा दी है। इसमें मैं भी आपको कुछ देना चाहता हूं—मैं सम्भरीपति अर्णोराज हूं। कुल-शील और राज्य-वैभव में आपके ही समान हूं। मैं चाहता हूं कि इस समय जो हमारे-आपके बीच नए सम्बन्ध जुड़े हैं वे और दृढ़ हों—इसलिए मैं अपनी षोडशी पुत्री मीनलकुमारी आपको देता हूं। आप स्वीकार कीजिए।

अर्णोराज के ये वचन सुन कुमारपाल गद्दी से उठ खड़े हुए। उन्होंने भुजाओं में भरकर अर्णोराज को अपनी छाती से लगाया। फिर बहनोई की भांति उनके कण्ठ में बांह डाल उन्हें महलों में ले चले। पाटन में धूमधाम, गाजे-बाजे, गोट-ज्योनार की रेल-पेल हो गई—बहनोई अर्णोराज के स्वागत-सत्कार के उपलक्ष्य में भी और अर्णोराज की पुत्री के कुमारपाल के साथ शुभ विवाह के उपलक्ष्य में भी।

# कलंगा दुर्ग

आचार्य ने यहां मगरूर अंग्रेजों के दांत खट्टे करने वाले वीर गोरखाओं की देहरादून के निकट घटी उस बहादुराना लड़ाई और उस दुर्ग का ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध कराया है, जो आज की पीढ़ी के लिए लुप्तप्राय हो चुका था।

यह घटना सन् १८१४ के शरत्काल में घटी थी। आज उसे घटे लगभग डेढ़ सौ बरस बीत गए। भारतीय मस्तिष्क से उसकी स्मृति भी लुप्त हो गई। परन्तु जहां—देहरादून के पहाड़ों में—यह अमर घटना घटी थी, वहां के मनोरम शीतल झरने और पर्वत-शृंग आज भी इसके मूक साक्षी हैं।

उन दिनों महत्त्वाकांक्षी और मगरूर अंग्रेज़ हैस्टिंग्स गवर्नर जनरल था जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रतिनिधि था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उन दिनों भारत में आर्थिक कष्टों के कारण डगमग स्थिति हो रही थी। अंग्रेज़ कर्मचारियों के लूट-खसोट और अत्याचारों से सारे भारत में क्षोभ का वातावरण उठ खड़ा हुआ था। कम्पनी के नौकर अब भारत में खुली डकैती पर उतर आए थे। प्लासी के युद्ध को हुए अब ५८ वर्ष बीत चुके थे, और इस बीच में भारत को लूटकर पन्द्रह अरब रुपया इंग्लैंड में पहुंच चुका था। जिसके बल पर लंकाशायर और मैन्चेस्टर के भाप के इंजनों से चलने वाले नए कारखाने धड़ाधड़ उन्नत हो रहे थे। इस लूट का अर्थ यह था कि अट्ठावन बरस तक निरन्तर पच्चीस करोड़ रुपया सालाना कम्पनी के नौकर भारतवर्ष से लूटकर इंग्लैण्ड भेजते रहे थे। निश्चय ही इस भयानक लूट के मुकाबिले महमूद गज़नबी और मुहम्मद गौरी के हमले बच्चों के खेल थे। अब अंग्रेज केवल भारत में व्यापारी ही न रह गए थे, वे अपने साम्राज्य के सपने भी साकार कर रहे थे। और अब उनकी मुख्य अभिलाषा यह थी कि जैसे आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमेरिका आदि देशों में अंग्रेज़ बस्तियां क़ायम हो चुकी थीं, वैसी ही भारत में भी हो जाएं। परन्तु उनका दृष्टिकोण यह था कि भारत के गरम मैदानों की अपेक्षा हिमालय की घाटियों में ही ये अंग्रेजी उपनिवेश स्थापित किए जाएं। जहां अंग्रेजों की अपनी नैतिक और शारीरिक शक्तियां ज्यों की

स्थों कायम रह सकें। हिमालय की रमणीय घाटियों के प्रति उनका मोह बहुत था और वे देहरादून, कुमायूं, गढ़वाल के इलाकों पर अपने दांत गड़ाए हुए थे। परन्तु उन दिनों ये सब ज़िले नैपाल के स्वाधीन साम्राज्य के अन्तर्गत थे। अंग्रेज इससे कुछ पूर्व ही लाहौर के महाराज रणजीतसिंह को भड़काकर नैपाल से लड़ा चुके थे। पर वीर नैपालियों ने आक्रान्ताओं के अच्छी तरह दांत खट्टे किए थे। अब यह स्पष्ट था कि भारत के इस मनोरम अंचल में अंग्रेज यदि अपने उपनिवेश स्थापित करना चाहते हैं, तो उन्हें खुल्लम-खुल्ला नैपाल से लोहा लेना होगा।

इस समय सारन और गोरखपुर के जिलों में नैपाल की सरहदें मिलती थीं। और वहां पर कुछ भूमि कम्पनी और नैपाल की विवादग्रस्त थी। जिसके सम्बन्ध में कभी-कभी छोटे-छोटे उपद्रव होते ही रहते थे। ऐसे ही एक विवाद का बहाना उठाकर अंग्रेजों ने नैपाल सरकार से युद्ध की घोषणा कर दी।

नैपालियों की वीर जाति ने अब तक न तो पराजय का कभी सामना किया था, न पराधीनता का। यद्यपि उसकी शक्तियां सीमित थीं। परन्तु उसने अंग्रेज़ों से लोहा लेने में तनिक भी हिचक न दिखाई।

अपरिसीम लूट-खसोट के बावजूद भी इस समय भारत में कम्पनी की आर्थिक स्थिति इतनी नाजुक थी कि उन दिनों कम्पनी की हुण्डियां बाजार में बारह फीसदी बट्टे पर बिकती थीं। परन्तु अंग्रेज ऐसे अवसरों के लिए अनेक हथकण्डे हाथ में रखते थे। उन्होंने अवध के नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की गर्दन दबोचकर ढाई करोड़ रुपया कर्ज़ ले लिया और नैपाल से युद्ध की विस्तृत योजना बनाकर युद्ध छेड़ दिया।

इस समय नैपाल का राज्य कम्पनी के राज्य से बहुत छोटा था। दोनों राज्यों के बीच पंजाब में सतलज से लेकर बिहार में कोसी नदी तक लगभग ६०० मील लम्बी सरहद थी। अंग्रेज़ों ने इस सरसद पर पांच मोर्चे बांधे और पांचों स्थानों से नैपाल पर आक्रमण करने का प्रबन्ध कर लिया। एक मोर्चा लुधियाने में कर्नल आक्टरलोनी के अधीन था। दूसरा मेजर जनरल जिलेप्सी के अधीन मेरठ में था। तीसरा मेजर जनरल वुड के अधीन बनारस और गोरखपुर में था। चौथा मुर्शिदाबाद और पांचवां कोसी नदी के उस पार पूर्निया की सरहद और सिकिम राज्य के सिर पर था। इन सब मोर्चों पर अंग्रेज

सरकार की तीस हजार सेना मय उत्तम तोपखाने के जमा की गई थी, जिसका सामना करने के लिए नैपाल दरबार मुश्किल से बारह हजार सेना जुटा सका था। उसके पास न काफी धन था, न उत्तम हथियार। और कूटनीति में तो वे अंग्रेज़ों के मुकाबिले बिल्कुल ही कोरे थे।

मेजर जरनल जिलेप्सी ने सबसे पहले नैपाल-सीमा का उलंघन कर देहरादून क्षेत्र में प्रवेश किया। नाहन और देहरादून दोनों उस समय नैपाल राज्य के अधीन थे। नाहन का राजा अमरसिंह थापा था, जो नैपाल-दरबार का प्रसिद्ध सेनापति था। अमरसिंह ने अपने भतीजे बलभद्रसिंह को केवल छह सौ गोरखा देकर जिलेप्सी के अवरोध को भेजा। बलभद्रसिंह ने बड़ी फुर्ती से देहरादून से साढ़े तीन मील दूर नालापानी की सबसे ऊंची पहाड़ी पर एक छोटा सा अस्थायी किला खड़ा किया। यह किला बड़े-बड़े अनगढ़ कुदरती पत्थरों और जंगली लकड़ियों की सहायता से रातोंरात खड़ा किया गया था। हकीकत में किला क्या था, एक अधूरी अनगढ़ चहारदीवारी थी। परन्तु बलभद्र ने उसे किले का रूप दिया, उसपर मज़बूत फाटक चढ़ाया और उसपर नैपाली झण्डा फहराकर उसका नाम कलंगा दुर्ग रख दिया।

अभी बलभद्र के वीर गोरखा इन अनगढ़ पत्थरों के ढोंकों को एक पर एक रख ही रहे थे कि जिप्लेसी देहरादून पर आध मका। उसने इस अद्भुत किले की बात सुनी और हंसकर कर्नल मावी की अधीनता में अपनी सेना को किले पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। जिप्लेसी की सेना में एक हज़ार गोरी पलटन और ढाई हज़ार देसी पैदल सेना थी। परन्तु बलभद्र के इस किले में इस समय केवल तीन सौ जवान और इतनी ही स्त्रियां और बच्चे थे। उसने उन सभी को मोर्चे पर तैनात कर दिया।

मावी ने देहरादून पहुंचकर उस अधकच्चरे दुर्ग को घेर लिया और अपना तोपखाना उसके सामने जमा दिया। फिर उसने रात को बलभद्र के पास दूत के द्वारा सन्देश भेजा कि किले को अंग्रेज़ों के हवाले कर दो। बलभद्रसिंह ने दूत के सामने ही पत्र को फाड़कर फेंक दिया और उसी दूत की जबानी कहला भेजा कि अंग्रेजों के स्वागत के लिए यहां नैपाली गोरखों की खुखरियां तैयार हैं।

सन्देश पाकर मावी ने रातोंरात अपनी सेना नालापानी की तलहटी में फैला दी और किले के चारों ओर से तोपों की मार आरम्भ कर दी। इसके

जवाब में किले के भीतर से गोलियों की बोछारें आने लगीं। तोपों के गोलों का जवाब बन्दूक की गोलियों से देना कोई वास्तविक लड़ाई न थी। और अंग्रेज उनपर हंस रहे थे। परन्तु शीघ्र ही उन्हें पता लग गया कि नैपालियों के जौहर साधारण नहीं हैं। रात-दिन सात दिन तक गोलाबारी चलती रही, परन्तु कलंगा दुर्ग अजेय खड़ा रहा।

जनरल जिलेप्सी इस समय सहारनपुर में पड़ाव डाले उत्कण्ठा से देहरादून की घाटियों की ओर ताक रहा था। जब उसे अंग्रेज़ी सेना के प्रयत्नों की विफलता के समाचार मिले, वह गुस्से से लाल हो गया और अपनी सुरक्षित सैन्य को ले नालापानी जा धमका। सारी स्थिति को देखने-समझने और आवश्यक व्यवस्था करने में उसे तीन दिन लग गए। उसने सेना के चार भाग किए। एक ओर की पल्टन कर्नल कारपेन्टर की अधीनता में आगे बढ़ी। दूसरी कप्तान फास्ट की कमान में, तीसरी मेजर कैली की और चौथी कप्तान कैम्पबैल की कमान में। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने एकबारगी ही चारों ओर से दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। कलंगा दुर्ग पर धड़ाधड़ गोले बरस रहे थे और दुर्ग के भीतर से बंदूकें तोपों का दनादन जवाब दे रही थीं। अंग्रेज़ी सेना का जो योद्धा दुर्ग की दीवार या द्वार के निकट पहुंचने की हिमाकत करता था, वहीं ढेर हो जाता था। वापस लौटता न था। इस समय नैपाली स्त्रियां भी अपने बच्चों को पीठ पर बांधकर बन्दूकें दाग रही थीं। अनेक बार अंग्रेज़ी सेना ने दुर्ग की दीवार तक पहुंचने का प्रयत्न किया, पर हर बार उन्हें निराश होना पड़ा। अनगिनत अंग्रेज़ सिपाहियों और अफसरों को गोरखा गोलियों का शिकार होकर वहीं ढेर होना पड़ा।

बार-बार की हार और विफलता से चिढ़कर जनरल जिलेप्सी स्वयं तीन कम्पनियां गोरे सिपाहियों की साथ लेकर दुर्ग के फाटक की ओर बढ़ा। परन्तु दुर्ग के ऊपर से जो गोलियों और पत्थरों की बौछारें पड़ीं तो गोरी पल्टन भाग खड़ी हुई। गुस्से और खीझ में भरा हुआ जिलेप्सी अपनी नंगी तलवार हवा में घुमाता हुआ दुर्ग के फाटक तक बढ़ता चला गया। जब वह फाटक से केवल तीस गज के अन्तर पर था कि एक गोली उसकी छाती को पार कर गई और वह वहीं मरकर ढेर हो गया।

गोरखों के पास केवल एक ही छोटी सी तोप थी। वह उन्होंने फाटक पर

चढ़ा रखी थी। उसकी आग के मारे शत्रु आगे बढ़ने का साहस न कर सकते थे। इसके अतिरिक्त तीखे तीर भी गोरखा बरसा रहे थे।

जनरल जिलेप्सी की मृत्यु से अंग्रेज़ी सेना में भय की लहर दौड़ गई। परंतु मावी ने अंग्रेज़ी सेना का नेतृत्व हाथ में लेकर सेना को पीछे लौटने का आदेश दिया। अंग्रेज़ी सेना बेंत से पीटे हुए कुत्ते की भांति कैम्पों में लौट आई। मावी अब किले पर आक्रमण का साहस न कर सकता था। वह घेरा डालकर पड़ा रहा। किले वालों को सांस लेने का अवसर मिला।

मावी ने दिल्ली सेन्टर को मदद भेजने को लिखा। और वहां से भारी तोपखाना और गोरी पलटन देहरादून आ पहुंची। इसके बाद नए साज-बाज से किले का मुहासरा किया गया। अब रात-दिन किले पर गोले बरस रहे थे। गोलों के साथ दीवारों में लगे अनगढ़ पत्थर भी टूट-टूटकर करारी मार करते थे। एक-एक करके किले के आदमी कम होते जाते थे। गोली-बारूद की भी कमी होती जाती थी। परन्तु बलभद्रसिंह की मूंछें नीचे झुकती नहीं थीं। उसका उत्साह और तेज वैसा ही बना हुआ था। इसी प्रकार दिन और सप्ताह बीतते चले गए।

अकस्मात् ही किले में पानी का अकाल पड़ गया। पानी वहां नीचे की पहाड़ियों के कुछ झरनों से जाता था। और अब ये झरने अंग्रेज़ी सेना के कब्ज़े में थे। उन्होंने नाले बन्द करके किले में पानी जाना एकदम बन्द कर दिया था। धीरे-धीरे प्यासी स्त्रियों और बच्चों की चीत्कारें घायलों की चीत्कारों से मिलकर करुणा का स्रोत बहाने लगीं। दीवारें अब बिल्कुल भग्न हो चुकी थीं। उनकी मरम्मत करना सम्भव न था। तोप के गोले निरन्तर अपना काम कर रहे थे। उन तोपों की भीषण गर्जना के साथ ही ज़ख्मियों की चीखें, पानी की एक बूंद के लिए स्त्रियों और बच्चों का कातर क्रन्दन दिल को हिला रहा था। ये सारी तड़पनें, चीत्कारें और गर्जन-तर्जन सब कुछ मिलकर उस छोटे से अनोखे दुर्ग में एक रौद्र रस का समा उपस्थित कर रहा था। और उसकी छलनी हुई भग्न दीवारों के चारों ओर अंग्रेज़ी तोपें आग और मृत्यु का लेन-देन कर रही थीं।

एकाएक ही दुर्ग की बन्दूकें स्तब्ध हो गईं। कमानें भी बन्द हो गईं। अंग्रेज़ों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा : इसी समय दुर्ग का फाटक खुला। अंग्रेज सेनापति

सोच रहा था कि बलभद्रसिंह आत्मसमर्पण करना चाहता है। उसने तत्काल तोपों को बन्द करने का आदेश दे दिया। सारी अंग्रेजी सेना स्तब्ध खड़ी उस भग्न दुर्ग के मुक्तद्वार की ओर उत्सुकता से देखने लगी। बलभद्र ही सबसे पहले निकला। कन्धे पर बन्दूक, हाथ में नंगी तलवार, कमर में खुखरी, सिर पर फौलादी चक्र, गले में लाल गुलूबन्द। और उसके पीछे कुछ घायल, कुछ बेघायल योद्धा बन्दूकें कन्धों पर और नंगी तलवारें हाथों में लिए हुए। उनके पीछे स्त्रियां, जिनकी पीठ पर बच्चे कसकर बंधे हुए और हाथों में नंगी खुखरियां। कुल सत्तर प्राणी थे। सब प्यास से बेताब।

बलभद्र का शरीर सीधा, चेहरा हंसता हुआ, मूंछें नोकदार ऊपर को चढ़ी हुई। सिपाही की नपी-तुली चाल चलता हुआ वह अंग्रेजी सेना में धंसा चला गया। उसके पीछे उसके सत्तर साथी—स्त्री-पुरुष। किसीका साहस उन्हें रोकने का न हुआ। बलभद्रसिंह अंग्रेजी सेना के बीच से रास्ता काटता हुआ साथियों सहित नालापानी के झरनों पर जा पहुंचा। सबने जी भरकर झरने का स्वच्छ ठण्डा और ताजा पानी पिया। फिर उसने अंग्रेजी जनरल की ओर मुंह मोड़ा। उसी तरह बन्दूक उसके कन्धे पर थी और हाथ में नंगी तलवार। उसने चिल्लाकर कहा—कलंगा दुर्ग अजेय है। अब मैं स्वेच्छा से उसे छोड़ता हूं।

और वह देखते ही देखते अपने साथियों सहित पहाड़ियों में गुम हो गया। अंग्रेज जनरल और सेना स्तब्ध खड़ी देखती रह गई।

जब अंग्रेज दुर्ग में पहुंचे तो वहां मर्दों, औरतों और बच्चों की लाशों के सिवा कुछ न था। ये उन वीरों के अवशेष थे जिन्होंने एक डिवीजन सेना को एक महीने से भी अधिक रोके रखा था, और जहां के संग्राम में जनरल जिलेप्सी को मिलाकर अंग्रेजों के इकत्तीस अफसर और ७१८ सिपाही काम आए थे।

अंग्रेजों ने किले पर कब्जा कर उसे जमींदोज कर दिया। इस काम में उन्हें केवल कुछ घण्टे लगे।

इस समय उस स्थान पर साल वृक्षों का घना जंगल है। और रीचपाना नदी के किनारे एक छोटा सा स्मारक बना हुआ है, जिसपर खुदा है—'हमारे वीर शत्रु बलभद्रसिंह और उसके वीर गोरखों की स्मृति में सम्मानोपहार''''''।'

# राजपूत कहानियां

- कुम्भा की तलवार
- हल्दी घाटी में
- वाणवधू

# कुम्भा की तलवार

इस कहानी में एक राजपूत बालिका और उसकी वीर माता के साहस और तेज की अमर गाथा है।

चित्तौड़ के अजेय दुर्ग का पतन हो चुका था। महाराणा उदयसिंह लापता थे और वीर जयमल फत्ता ने प्राणों की आहुति दे दी थी। किले पर दखल कर सम्राट् अकबर उसे एक अधिकारी को सौंप आगरा लौट आए थे। अधिकारी को आज्ञा थी कि आसपास के सभी किलों को अधीन कर ले और उनके अधिपतियों को, जो राणा के सरदार थे, या तो अपने अधीन कर ले या युद्ध में पराजित कर ले। इस कार्य के लिए एक भारी सेना वहां छोड़ भी दी गई थी।

रणथम्भोर का दुर्ग अत्यन्त अजेय था। वह एक दुर्गम विशाल चट्टान पर निर्भयता से खड़ा था। दुर्ग पर चढ़ने को मीलों तक कहीं भी सुविधा न थी। केवल एक ढालू नाले द्वारा, जो मुड़कर इधर-उधर बहुत टेढ़ा हो रहा था, एक भयानक रास्ता किले तक गया हुआ था। इसके चारों ओर दुर्गम अरावली की अनगिनत श्रेणियां थीं।

इसकी रक्षा राव सुर्जन हाड़ा की नवविधवा पत्नी कर रही थी। इस युद्ध में हाड़ा सरदार पुत्रसहित काम आए थे। किला घेर लिया गया था। सिंहिनी रानी पति और पुत्र का घाव छिपाए यत्न से किले की रक्षा में तत्पर थी। इस समय मेवाड़ में मुगल सिपाही ही सिपाही नजर आते थे। इस किले में महाराणा कुम्भा की वह रत्न-जटित तलवार धरोहर के तौर पर रखी थी जो उन्हें मालव-शाह की विजय में भेंट दी गई थी। सिंहविक्रम सुर्जन के पूर्वजों ने सैकड़ों बार प्राण देकर भी इस तलवार की रक्षा की थी।

परिस्थिति गम्भीर होती चली जा रही थी क्योंकि आक्रमण बराबर जारी थे। खाद्य सामग्री और युद्ध-सामग्री बराबर क्षय हो रही थी और शत्रुओं के हटने की कोई आशा न थी। मुगल सेनापति किले की चाबियां मांग चुका था, जिसे देने से रानी ने दर्प से इन्कार कर दिया था। उसके पूर्वजों पर जो भार

था वह इस समय इस असहाय दुःखिता वीर बाला पर था जिसे इस समय कहीं से कोई सहारा न था और प्रबल प्रतापी अकबर से मोर्चा लेना था।

वह किले के पूर्वीय बुर्ज की खिड़की में मलिन वस्त्र पहिने बैठी गौर से मुगलों के टिड्डी-दल को देख रही थी। मनुष्यों की चिल्लाहट, घोड़ों की हिन-हिनाहट, इधर-उधर डेरे गड़ने की खटपट की आवाज़ यहां भी उसके कानों में पड़ रही थी। उसीके पास उसकी पुत्री बैठी किसी राजपूत सिपाही का फटा वस्त्र सी रही थी।

रानी ने भग्न मन से कहा—बेटी, अब नहीं। अब एक क्षण भी नहीं चल सकता, मुझे न अपनी परवाह है न, तेरी और न किसी और वीर पुरुष या स्त्री की। हम सब सच्चे राजपूत की भांति भूख और मृत्यु का सामना कर सकते हैं, परन्तु वह तलवार जो मेरे श्वसुर के पड़दादा ने अपनी पाग पर रखकर राणा कुम्भा से ग्रहण की थी और उसकी रक्षा का वचन दिया था, उसका क्या होगा? उसकी रक्षा किस भांति की जाएगी? क्या वह मुगल बादशाह के कदमों में पेश की जाने को दिल्ली भेज दी जाएगी? वह विजयी महाराणा कुम्भा की तल-वार, जिसे उन्होंने मालवे के प्रतापी सुलतान महमूदशाह खिलजी से बलपूर्वक हरण किया था? रानी की दृष्टि ऊपर उठकर किले की एक बुर्जी पर अटक गई। वह अत्यन्त गम्भीर और शोकपूर्ण विचारों में मग्न हो गई।

बालिका ने हाथ का काम रख दिया। वह उठकर माता के पास आई और माता के मुख पर अपना मुख रख दिया। वह अति सुन्दर मुख था, पर भूख और वेदना के कारण वह गुलाब की सूखी हुई पंखड़ी की भांति शोभाहीन हो रहा था। आंखों का सभी रस सूख गया था। उसने करुण कम्पित स्वर में कहा—हम चालीस भी तो नहीं हैं मां, फिर हम सब भूख से अधमरे हो रहे हैं। हाय, आज हमें रोटी का एक टुकड़ा भी इतना दुर्लभ है!

बालिका ने एक सिसकारी भरी और माता से लिपट गई। रानी ने सहज-गम्भीर स्वर में कहा—धीरज, बेटी धीरज, यह समय भूख और मृत्यु की चर्चा का नहीं—इस समय हमें उस तलवार की रक्षा का विचार करना चाहिए जो हमारे कुल की प्रतिष्ठा की चीज़ है।

एकाएक बालिका के मस्तिष्क में कोई विचार उठा। उसने दोनों हाथों से

माता का मुख अपनी तरफ फेरा। क्षण भर दोनों आंख से आंख मिलाकर एक-टक एक-दूसरे को देखती रहीं। पुत्री की अर्थपूर्ण दृष्टि और कम्पित होंठ देख-कर उसने कहा—तू क्या सोच रही है लड़की ?

'मां, मैंने तलवार की रक्षा का उपाय सोच लिया है। मुझे साहस करने दो।' इसके बाद उसने माता के कान में झुककर कुछ कहा। रानी ने सम्मति नहीं दी, परन्तु बालिका ने हठ करके रानी को सहमत कर ही लिया।

भयानक रात थी और आकाश पर बदली छाई थी। किले के पृष्ठ भाग की बुर्जी पर चार प्राणी एक-दूसरे से सटे खड़े थे।

रानी ने कहा—बेटी, अब हम न मिलेंगे ?

'नहीं मां, हम मिलेंगे, आनन्द और सुख के अक्षय स्थल स्वर्ग में शीघ्र ही।'

उसने फसील पर लटकती हुई रस्सी अपने कोमल हाथों में पकड़ी।

एक वृद्ध योद्धा ने कम्पित स्वर में कहा—

'बाईजीराज, मुजरा।'

'ठाकरा, माता की प्रतिष्ठा आपके हाथ है।'

बालिका साहसपूर्वक रस्सी पर से उतरने लगी और उस अन्धकार में लीन हो गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल एक बालक धूल और कालख से अत्यन्त गन्दा, फटे वस्त्र पहने, नंगे पैर, सिर पर घास का एक बड़ा सा गट्ठा लिए, लड़खड़ाती चाल से मुगल-शिविर में प्रवेश कर रहा था। एक प्रहरी ने कड़ककर पूछा—

'कहां जाता है बदज़ात ?'

'सरकार मुहम्मद इब्राहीम का नौकर हूं, उनके घोड़े की घास ले जा रहा हूं।'

उस अनंत लश्कर में कौन इब्राहीम है, यह प्रहरी क्या जाने ? उसने पीनक में ऊंघते हुए कहा—जा, मर।

यवन-दल पड़ा सो रहा था। बहुत कम लोग जागे हुए थे। बालक को और भी एक-दो बार टोका गया और उसने यही उत्तर दिया। वह मुगल-सेना को चीरता चला गया। एक चौकी पर सिपाही ने घुड़ककर कहा—

'इधर आ वे, घास इधर ला।'

'वहुत अच्छा सरकार।'

'कै पैसे ?'

'हजूर गरीब लड़का हूं, जो मर्जी हो दे दें। बालक ने घास सामने फेंक दी। उसमें से रस्सी खोली। खुरपी और रस्सी लपेटकर हाथ में ले ली और फिर थककर वहीं बैठ गया। सिपाही ने कुछ नर्म होकर कहा—

'इतनी जल्दी घर से क्यों निकला ?'

'सरकार भूखा हूं, पेट सब कराता है।'

'नौकरी करेगा ?'

'करूंगा मालिक, पर मेरी बुढ़िया मां तीन दिन से भूखी बीमार पड़ी है, उसे कुछ खाना······'

'ले' सिपाही ने थोड़े पैसे निकालकर फेंक दिए। 'हमारा नाम ताजरखां है नौकरी करना हो तो इधर आ जाना।'

'वहुत अच्छा सरकार, पर कोई रोकेगा ?'

सिपाही ने एक पुर्जा लिखकर उसे दिया और कहा—जो तुझे रोके उसे यह दिखा देना।

बालक सलाम करके धीरे-धीरे आगे बढ़ा। शिविर की समाप्ति पर प्रहरी ने उसे टोका पर वह पुर्जा देखकर सन्तुष्ट हो गया।

बालक ने सकुशल यवन-शिविर पार किया। वह कुछ दूर बढ़ा चला गया। इसके बाद वह ऊंची पहाड़ी पर चढ़ गया और वहां से सूखी लकड़ी बटोरकर आग जला दी।

रानी ने कहा—लड़की सुरक्षित यवन-शिविर को पार कर गई। अब विलम्ब का काम नहीं। ठाकरां, अब तुम सब कै जने हो ?'

'सब मिलाकर छत्तीस हैं, महारानी।'

'अच्छा मैं सबको नौकरी से मुक्त करती हूं, जिसकी इच्छा हो यवन सेना-पति को आत्मार्पण कर दे।'

'माता, केसर का कड़ाह भरा जाए हम साखा करेंगे।'

'ठाकरां, जीते जी प्रतिष्ठा न जाने पाए।'

'ऐसा ही होगा माता।'

केसर का भारी कड़ाह भरा था। प्रत्येक योद्धा अपना अंगरखा उसमें रंग-रंगकर पहन रहा था। यह स्वेच्छा सेना थी। रानी ने कहा—तो तुम तैयार हो ?

'हां, मां।'

'अच्छा ज्यों ही हम अपना कार्य समाप्त कर लें, तुम किले का फाटक खोल शत्रुओं पर टूट पड़ना।'

'जो आज्ञा।'

'और जब तक एक भी जीवित रहे, यवन किले के फाटक को न छू सकें।

'जो आज्ञा।'

'तुम कुल कितने हो ?'

'सब छत्तीस हैं।'

'तुम छत्तीस हज़ार हो, जुहर ठाकरां ?' रानी महलों में चल दी।

एक बार छत्तीसों कण्ठों ने गर्जकर कहा—

'जय रानी माता की !'

प्रत्येक वीर नंगी तलवार लिए दृढ़ निश्चय कर पंक्तिबद्ध खड़ा था। राज-महल में भीषण धड़ाका हुआ और क्षण भर में ही आग की लपटें आकाश को छूने लग गईं। यवन-शिविर में हलचल मच गई। छत्तीसों वीर नंगी तलवार लेकर आगे बढ़े। उन्होंने फाटक खोल दिया। वे सब भूखों मर रहे थे। उनकी आंखें निकली पड़ती थीं फिर भी वे लौहपुरुष की भांति दृढ़ थे। उनका कर्तव्य पूरा हो चुका था। उन्होंने किले का फाटक खोल दिया, और देखते ही देखते जूझ मरे।

बालक के पैर लोहू-लुहान हो रहे थे। पग-पग पर वह लड़खड़ा रहा था। धरती तत्ते तवे की भांति तप रही थी। वह भूख प्यास से अध-मरा हो रहा था। उसके वस्त्र चिथड़े हो गए थे। उनमें कांटे और गुल्मों ने लिपटकर उसका अद्भुत स्वरूप बना दिया था। वह किसी भांति साहस करके दुर्गम दुरूह घाटी में बढ़ा चला जा रहा था। सामने की टेकड़ी पर जो बटिया दीख रही थी उसी पर चढ़ने का उसका इरादा था।

टेकड़ी पर एक भील धनुष पर बाण चढ़ाए इसी ओर देख रहा था। उसने ललकारकर बालक से कहा—वहीं खड़ा रह। यहां आने का क्या काम है ?

उसने बाण बालक की ओर साधा। बालक ने हाथ के संकेत से उसे रोका। उसने भरपूर शक्ति लगाकर पुकारा—राणा जी! और वह मूर्छित हो वहीं गिर पड़ा।

तुरन्त ही बलिष्ठ पुरुष कुटिया से बाहर निकल आए। उनके हाथों में तलवारें थीं। दोनों व्यक्तियों ने नीचे उतरकर बालक को उठाया। बालक ने जल का संकेत किया। राणा ने वस्त्र उठाकर देखा, वह बालक नहीं बालिका थी। उसकी छाती पर गूदड़ से लपेटी हुई वह तलवार थी जो गूदड़ हटाते ही सूर्य की भांति चमकने लगी।

बालिका ने भग्न स्वर में कहा—महाराणा की जय हो, मैं रणथम्भोर के दुर्गपति सुर्जनहाड़ा की पुत्री हूं। महाराज, चित्तौड़ पतन के बाद रणथम्भोर भी घेर लिया गया। पिता और भाई तो चित्तौड़ में ही काम आए थे। हम लोगों ने बहुत चेष्टा की पर महाराज, हम भूखों मरने लगे। अन्त में हमारा प्यारा रणथम्भोर······बालिका बोल न सकी। उसके होंठ फड़ककर रह गए। बालिका के प्राण निकल गए। राणा के हाथ से तलवार छूट गई। बालिका की निर्जीव देह गोद में लेकर वे बालकों की भांति रोने लगे।

# हल्दी घाटी में

मानधनी राणा प्रताप के प्रचण्ड वीरत्व और उनके विद्रोही भाई के साहस और रक्त-सम्बन्ध का मोहक वर्णन इस कहानी में है।

वर्षा ऋतु थी, लेकिन पानी नहीं बरसता था। हवा मन्द थी, बहुत गर्मी और घमस थी। एक पहर दिन चढ़ चुका था। कभी-कभी धूप चमक जाती थी। आकाश में बादल छाए हुए थे। अरावली की पहाड़ियों में, हल्दीघाटी की दाहिनी ओर एक ऊंची चोटी पर दो आदमी जल्दी-जल्दी अपने शरीर पर हथियार सजा रहे थे। एक आदमी बलिष्ठ शरीर, लम्बे कद, चौड़ी छाती वाला था। उसकी घनी और काली मूंछें ऊपर को चढ़ी हुई थीं और आंखें सुर्ख अंगारे की तरह दहक रही थीं। वह सिर से पैर तक फौलादी जिरह-बख्तर से सजा हुआ था। इस आदमी की उम्र कोई चालीस वर्ष की होगी। इसका बदन तांबे की भांति दमक रहा था।

दूसरा आदमी भी लम्बे कद का था, किन्तु वह पहले आदमी की अपेक्षा दुबला-पतला था। वह आदमी दाढ़ी को बीच में से चीरकर कानों में लपेटे हुए था। उसके सिर पर कुसुमल रंग की पगड़ी बंधी हुई थी। उसके शरीर पर भी लोहे के जिरह-बख्तर थे। एक बहुत बड़ी ढाल उसकी पीठ पर थी और दो सिरोहियां उसकी कमर में बंधी हुई थीं। पहला व्यक्ति अपने सिर पर अपना फौलादी टोप पहन रहा था, किन्तु वह ठीक जंचता नहीं था। दूसरे व्यक्ति ने आगे बढ़कर कहा—घणी खम्मा अन्नदाता! आज का दिन हमारे जीवन के लिए बहुत महत्त्व का है। यदि आज नहीं तो फिर कभी नहीं। उसने आगे बढ़कर पहले आदमी के झिलमिले टोप को ठीक तरह से कस दिया और फिर एक विशालकाय भाला उठाकर उस व्यक्ति के हाथ में दे दिया।

पहले व्यक्ति ने मर्म-भेदिनी दृष्टि से अपने साथी को देखा। उसने मजबूती से अपनी मुट्ठी में भाले को पकड़ा और मेघ-गर्जना की भांति गम्भीर स्वर में कहा—ठाकरां, तुमने ठीक कहा : आज नहीं तो फिर कभी नहीं।

यह पहला व्यक्ति मेवाड़ का हिन्दू-पति प्रताप था और दूसरा सरदार ग्वालियर का रामसिंह तंवर था। सरदार ने अपनी कमर में दूध की भांति सफेद पटका बांधते हुए कहा—अन्नदाता! आज हमारी कराली तलवार बहुत दिनों की अभिलाषा को पूरा करेगी। आज हम अपनी स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन को सफल करेंगे, जीतकर या हारकर। प्रताप ने कहा—बिलकुल ठीक, यही होगा। मैं आज उस भाग्यहीन राजपूतकुल-कलंक को, जिसने अपने वंश की आन को ही नहीं, राजपूत मात्र के वंश को कलंकित किया है, इस अपराध का बराबर दण्ड दूंगा। वह एक बार फिर ऊंचाई तक तनकर खड़ा हो गया और उसने एक बार अपने उस विशलकाय भाले को अपने विशाल भुजदण्ड पर तोला।

सरदार ने अचानक चौंककर कहा—अन्नदाता! आपकी यह मुक्तामणि तो यहीं पर रह गई। यह कहकर उसने पत्थर की चट्टान पर पड़ी हुई एक देदीप्यमान मणि उठाकर प्रताप के दाहिने भुजदण्ड पर बांध दी। वह सूर्य के समान चमकती हुई मणि थी। उसे देख प्रताप ने हंसकर कहा—वाह! इस अमूल्य मणि को तो मैं भूल ही गया था; परन्तु ठाकरां, सच बात तो यह है कि अब भूलने के लिए मेरे पास बहुत कम चीज़ें रह गई हैं।

सरदार ने हाथ जोड़कर विनीत स्वर में कहा—स्वामी, आपका जीवन और आपका यह भाला जब तक सुरक्षित है, तब तक आपको संसार की किसी बहुमूल्य वस्तु की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। हमारे जीवन की सब से बहु-मूल्य वस्तु तो हमारी स्वतन्त्रता है। अगर हम उसकी रक्षा कर सके तो हमें ऐसी छोटी-मोटी मणियों की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

राजा ने मुस्कराकर वृद्ध सरदार की ओर देखा। सरदार मनोयोग से वह मणि राजा के दाहिने भुजदण्ड पर सावधानी से बांध रहे थे। प्रताप ने फिर मुस्कराकर कहा—किन्तु ठाकरां, क्या सचमुच आपको इस बात का विश्वास है? इस मणि में क्या वह चमत्कार है कि जिसके विषय में किम्वदन्ती चली आ रही है? क्या यह सच है कि जो कोई इस मणि को पास में रखेगा वह युद्ध में अजेय और सुरक्षित रहेगा? सरदार ने गम्भीरता से कहा—अन्नदाता! बुड्ढे लोगों से यही सुनते आए हैं। प्रताप ने एक बार फिर अपने भाले को हिलाया। 'तब ठीक है, आज इस बात की परीक्षा हो जाएगी। परन्तु ठाकरां,

इस बात का फैसला कैसे होगा कि इस मणि का प्रभाव सबसे अधिक है या मेरे इस मित्र का ?' उसने गर्वपूर्ण दृष्टि से अपने भाले की तरफ देखा, उसे एक बार फिर हिलाया। उस धुंधले सूर्य के प्रकाश में उसकी बिजली के समान चमक उसकी आंखों में कौंधा मार गई। उसने अपने होंठों को सम्पुट में कस लिया और एक बार फिर ज़ोर से अपने भाले को अपनी मुट्ठी में पकड़ा और कहा—मेरे प्यारे सरदार ? जब तक यह वज्र मणि मेरे हाथ में है, मुझे किसी दूसरी मणि की परवाह नहीं।

पर्वत की उपत्यिका से सहस्रों कण्ठ-स्वरों का जयघोष सुनाई पड़ा। राणा ने कहा—सेना तैयार दीखती है। अब हम लोगों को चलना चाहिए। वह आगे को बढ़ा और बुड्ढा सरदार उसके पीछे-पीछे।

तीस हज़ार योद्धा उपत्यिका के समतल मैदान में व्यूहबद्ध खड़े थे। घोड़े हिनहिना रहे थे और योद्धाओं की तलवारें झनझना रही थीं। उस समय धूप कुछ तेज़ हो गई थी, बादल फट गए थे। सुनहरी धूप में योद्धाओं के जिरह-बख्तर और उनके भाले की नोकें बिजली की तरह चमक रही थीं। वे सब लौहपुरुष थे—सच्चे युद्ध के व्यवसायी, जो मृत्यु के साथ खेलते थे और जिन्होंनें जीवन को विजय कर लिया था। वे देश और जाति के पिता थे। वे वीरों के वंशधर और स्वयं वीर थे। वे अपनी लोहे की छाती की दीवारें बनाए निश्चल खड़े हुए थे। चारण और बन्दीगण कड़खे की ताल पर बिरद गा रहे थे। धौंसे बज रहे थे। घोड़े और सिपाही—सब कोई उतावले हो रहे थे।

सेना के अग्रभाग में एक छोटा सा हरियाली का मैदान था। उसमें १७ योद्धा सिर से पैर तक शस्त्रों से सजे हुए खड़े थे। उनके घोड़े उन्हींके पास थे और वे सब भी जिरह-बख्तर से सुसज्जित थे। सेवक उनकी बागडोर पकड़े हुए थे। ये मेवाड़ के चुने हुए सरदार थे और अपने राजा की प्रतीक्षा में खड़े हुए थे।

एकसिंह की भांति राणा नें उनके बीच में पदार्पण किया। सत्रह सरदार पृथ्वी में झुक गए। उनकी तलवारें खनखना उठीं और पीठ पर बंधी हुई बड़ी ढालें हिल पड़ीं। सेना ने महाराज को देखते ही वज्रध्वनि से जयघोष किया। प्रताप ने एक ऊंचे टीले पर खड़े होकर अपने सरदारों और सेना को संबोधित

करके कहा—मेरे प्यारे वीरो, वंशधरो ! आज हम वह कार्य करने जा रहे हैं जो हमेशा हमारे पूर्वजों ने किया है। हम आज मरेंगे अथवा विजय प्राप्त करेंगे। हमारा इस युद्ध में कोई स्वार्थ नहीं है। हम केवल इसलिए युद्ध कर रहे हैं कि हमारी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप हो रहा है। क्या यहां पर कोई ऐसा राजपूत है जो पराया गुलाम बना रहना पसंद करे ? जो ऐसा हो उसे मेरी तरफ से छुट्टी है, वह अपने प्राण लेकर यहां से अलग हो जाय। परन्तु जिसने क्षत्राणी का दूध पिया, उसके लिए आज जीवन का सबसे बड़ा दिन है। आज उसे अपने जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी करनी चाहिए। इसके बाद प्रताप ने ललकार उठाई और उच्च स्वर से पुकारकर कहा—वीरो ! क्या तुम्हारे पास तलवारें हैं ? राणा ने फिर उसी तेजस्वी स्वर में कहा—और तुम्हारी कलाइयों में उन्हें मज़बूती से पकड़ रखने के लिए बल है ? सेना ने फिर जयनाद किया, हज़ारों कण्ठ चिल्लाकर बोले—हम जीते जी और और मर जाने पर भी अपनी तलवारों को नहीं छोड़ेंगे, हममें यथेष्ट बल है। राजा ने सतेज स्वर में कहा—तब चलो, हम अपनी स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन और अपने नाम को सार्थक करें। एक गगनभेदी वाणी से सारा वातावरण भर गया। प्रताप उछलकर घोड़े पर सवार हो गया और तुरन्त ही सरदारों ने उसे चारों तरफ से घेर लिया। पहाड़ी नदी के तीव्र प्रवाह की भांति यह लौहपुरुषों का दल अग्रसर हुआ। धौंसा बज रहा था और कड़खे के ताल पर चारण और बन्दीगण सिपाहियों की प्रत्येक टुकड़ी के आगे उनके पूर्वजों की बिरुदावलियां ओज भरे शब्दों में गाते हुए चल रहे थे।

मुगल-सैन्य एक लाख से अधिक था। जिसमें ६० हज़ार चुने हुए घुड़सवार थे। उसमें तुर्क, तातार, यवन, ईरानी और पठान सभी योद्धा थे। सवारों के पीछे हाथियों का दल था और उनपर धनुर्धारी योद्धा सजे हुए थे। दाहिनी तरफ वीरशिरोमणि मानसिंह तीस हज़ार कछवाहों को लिए हुए खड़े थे। बाईं तरफ सेनापति मुजफ्फरखां बाईस हज़ार मुगलों के साथ था। हरावल में दस हज़ार चुने हुए पठानों की फौज थी। बीच में एक ऊंचे हाथी पर शाहज़ादा सलीम अपने छह हज़ार शरीर-रक्षकों के साथ युद्ध की गतिविधि देख रहा था। दोनों सेनाएं सामने होते ही भिड़ पड़ीं। प्रताप अपनी सेना के मध्य भाग में चल रहे थे। उनके दाहिने भाग में सलूंबरा सरदार थे और बाईं ओर विक्रम-

सिंह सोलंकी। प्रताप ने सोलंकी के शत्रु के दाहिने पक्ष पर जमकर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसके बाद तुरन्त ही उन्होंने सालूम्बरा सरदार को सीधे मुगलपक्ष के बाएं पक्ष में घुस जाने का आदेश दिया और फिर वे तीर की भांति अपने चुने हुए वीरों के साथ मुगल-सैन्य के हरावल पर टूट पड़े। प्रताप का दुर्धर्ष वेग मुगल-सैन्य न सह सकी। हरावल टूट गया और सेना के सब प्रबन्ध में तुरन्त गड़बड़ी पैदा हो गई। सलीम ने अपनी सेना को भागते हुए देखकर अपने हाथी के पैरों में जंजीर डाल दी। शाहज़ादे को दृढ़ता से खड़ा देखकर मुगल-सेना फिर से लौट आई। अब युद्ध का कोई क्रम न रह गया था। तेगा से तेगा बज रहे थे, दुधारें खड़क रही थीं, खून के फव्वारे बह निकले थे। घायलों और मरते हुओं का चीत्कार सुनकर कलेजा कांपता था। योद्धा लोग वीर-दर्प से उन्मत्त होकर घायलों और अधमरों को अपने पैरों से रौंदते हुए आगे बढ़ रहे थे। प्रताप अप्रतिम तेज से देदीप्यमान थे और वे दुर्धर्ष शौर्य से मुगल-सैन्य में घुसते जा रहे थे। सरदारों ने उनको रोकने के बहुत प्रयत्न किए; परन्तु उनका क्रोध निस्सीम था, वे बढ़ते ही चले गए। सरदारों ने उनके अनुगमन की चेष्टा की परन्तु प्रताप उनसे दूर होते चले गए। युद्ध का बहुत कठिन समय आ गया था। प्रताप के चारों तरफ लाशों के ढेर थे परन्तु शत्रु उनकी तरफ उमड़े चले आ रहे थे। उनका चेतक हवा में उड़ रहा था। वे सलीम के हाथी के पास जा पहुंचे। उन्होंने चेतक को एड़ दी और भाले का एक भरपूर हाथ उछलकर हौदे में मारा। पीलवान मरकर हाथी की गर्दन पर झूल पड़ा। सलीम ने हौदे में छिपकर जान बचाई। फौलाद के मजबूत हौदे में टक्कर खाकर प्रताप का भाला भग्न कर टूट पड़ा। प्रताप ने खींचकर दुधारा निकाल लिया। हज़ारों मुगल उनके चारों तरफ थे, हज़ारों चोटें उनपर पड़ रही थीं। प्रताप और उनका चेतक बराबर चले जा रहे थे। प्रताप ने आंख उठाकर देखा, वे अपनी सेना से बहुत दूर चले आए थे। उन्होंने जीवन की आशा छोड़ दी और फिर दोनों हाथों से तलवारें चलाने लगे, लाशों का तूमार लग गया। चिल्लाहट और चीत्कार के मारे आकाश रो उठा। प्रताप का सुनहरे काम का झिलमिला टोप धूप में सूर्य की भांति चमक रहा था। और उनके भुजदण्ड में बंधा हुआ वह अमूल्य रत्न आंखों में चकाचौंध लगा रहा था। धीरे-धीरे से मुगल-योद्धा उनपर टूट पड़े थे। प्रताप को बहुत से घाव लग गए थे। वे

शिथिल होते और थके जा रहे थे। उनके शरीर का बहुत रक्त निकल चुका था। उन्होंने थकित दृष्टि से अनन्त तक फैले हुए मुगल-सैन्य की ओर देखा, एक ठण्डी सांस ली और अपने हृदय में एक वेदना का अनुभव किया। वे मृत्यु से आंख-मिचौनी खेल रहे थे।

सलूम्बरा सरदार ने दूर से देखा। वे शत्रुओं के दाहिने पक्ष को बिल्कुल विध्वस्त कर चुके थे। कछवाहों से उन्होंने खूब लोहा लिया था। उन्होंने दूर से देखा, प्रताप का अकेला झिलमिला टोप और वह अमूल्य मणि मुगलों के अनंत सैन्य-समुद्र में डूबती हुई नौका के समान एक क्षणिक झलक दिखा रहे हैं। उनके हृदय में चोट लगी। उन्होंने कहा—अरे! मेवाड़ का सूर्य तो यहीं अस्त हो रहा है। बुड्ढे बाघ ने अपने घोड़े को एड़ दी। उसकी बाग मोड़ी और अपने योद्धाओं को ललकारकर कहा—हिन्दूपति महाराणा की जय हो, वह देखो महाराणा ने शाहजादे के हाथी को घेर लिया, आओ चलो, आज हम प्राण देकर महाराणा का अनुगमन करें। वीरों ने हुंकार भरी। बिजली की तरह तलवारें चमकने लगीं और तलवार के जादू से रास्ता बनने लगा और अमर वीरों की वह छोटी सी टुकड़ी शत्रु-सैन्य को चीरती हुई क्षण-क्षण में महाराणा के निकट होने लगी। महाराणा का एक हाथ बिल्कुल निकम्मा हो गया था। अब उसमें वार करने की ताकत नहीं थी; वह केवल अपना बचाव करते थे। उनकी गर्दन कन्धे पर लटकने लगी। उन्हें मुमूर्षु अवस्था में देखकर यवन-सैन्य ने वज्र-ध्वनि से 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाया, और दूसरे ही क्षण वह नाद 'जय एकलिङ्ग' की वज्रगर्जन में विलीन हो गया। एक दफा फिर तलवारों के उस समुद्र में ज्वार आया। महाराणा ने सचेत होकर पीछे की ओर देखा : रंगीन पगड़ियां उनकी तरफ को लहराती हुई चली आ रही हैं। उन्होंने एक बार फिर चेतक को फटकारा।

दूसरे ही क्षण किसीने उनके सिर पर से वह झिलमिला टोप उतार लिया और एक दूसरी पगड़ी उनके सिर पर रख दी। वह बहुमूल्य मणि भी उनके भुजदण्ड से खोल ली गई। महाराणा ने मुरझाई हुई दृष्टि से देखा : सलूम्बरा सरदार अपने घोड़े की बाग को दांतों से पकड़े हुए उनका झिलमिला टोप सिर पर रखे हुए हैं और उनकी वह मणि भी सरदार के दाहिने भुजदण्ड पर बंधी

हुई है। वे अपनी ओर उमड़ते हुए मुगलों को ढकेलते हुए आगे बढ़ रहे हैं। प्रताप ने कहा—ठाकरां, यह क्या ! सरदार ने दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए कहा—अन्नदाता ! आज यह सेवक अपने नमक का हक अदा करेगा। आप हिन्दूकुल के सूर्य हैं, पीछे को हटते जाइए। असमय में ही सूर्य को अस्त न होना चाहिए। जाइए स्वामी। सरदार ने अपने हाथ से चेतक की बाग मोड़ दी। और वे उनको बीच में करके पीछे हटने लगे। बेतोड़ लौह की मारें चारों तरफ से पड़ रही थीं, अपने-पराये की किसीको सूझ न थी। सलूम्बरा सरदार बुड्ढे बाघ की भांति भयानक वेग से हाथ चला रहे थे। प्रताप ने थोड़ी देर विश्राम पाकर चैतन्य-लाभ किया। उन्होंने कम्पित स्वर से कहा—ठाकरां, आपके वंशजों को इस राजसेवा का पुरस्कार मिलेगा। प्रताप ने चेतक को एड़ी दी और वे युद्ध-क्षेत्र से बाहर आ गए। झिलमिला टोप और मणि सलूम्बरा सरदार के मस्तक और भुजदण्ड पर मुगल-सैन्य के बीच उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे थे और उसी प्रकार वह भुजदण्ड अनेकों मुगलों के सिर काट रहा था। सारा यवन-दल 'अल्लाहो अकबर' का जयनाद करता हुआ उसी झिलमिले टोप और देदीप्यमान मणि को लक्ष्य करते धावे कर रहा था। असंख्य शस्त्र उनपर टूट रहे थे। धीरे-धीरे जैसे सूर्य समुद्र में अस्त होता है उसी तरह लहू से भरे हुए उस रण-समुद्र में वह देदीप्यमान मणि से पुरस्कृत वीर भुजदण्ड और प्रताप के झिलमिलाते टोप से सुरक्षित वह उन्नतमस्तक झुकता ही चला गया और अन्त में दृष्टि से ओझल हो गया।

युद्ध-क्षेत्र कई मील पीछे रह गया था। एक नाले के किनारे प्रताप थकित भाव से एक पत्थर का सहारा लिए हुए पड़े थे और उनका चेतक वहीं पर पड़ा अन्तिम सांस ले रहा था। प्रताप ने पहले अंजलि में जल लेकर मुमूर्षु चेतक के मुंह में डाला। उसने जल को कण्ठ से उतारकर एक बार अपने स्वामी की ओर देखा और उसके बाद दम तोड़ दिया। वीरों का वंशधर वह प्रतापी राजा अपने उस घोड़े से लिपटकर विलाप करने लगा। उसके घावों से रक्त बह रहा था और उसके अङ्ग-अङ्ग घावों से भरे हुए थे। किसीने पुकारा—महाराज ! आप जैसे वीर को इस समय कातर होने का मौका नहीं है। प्रताप ने आंखें उठाकर देखा, उनके चिरशत्रु भाई शक्तिसिंह थे। प्रताप ने ज्वलमान नेत्रों से शक्तिसिंह की ओर देखा और कहा—ऐ शक्तिसिंह, तुम आज

इस समय ११ वर्ष बाद अपने उस अपमान का बदला लेने आए हो ? मैंने तुम्हें मुगलों के सैन्य में खूब ढूंढा। मेरे अपराधी तुम और मानसिंह थे, सलीम नहीं। तुम लोग राजपूत पिता के पुत्र होकर और राजपूतनी का दूध पीकर विधर्मी मुगलों के दास बने ! मैं आज तुम दोनों राजपूतकुल-कलंकियों को मारकर अपनी जाति के कलंक को नष्ट किया चाहता था ! लेकिन अब तुम देखते हो कि इस समय तो मैं खड़ा भी नहीं हो सकता और मेरा प्यारा सहचर भाला उस युद्ध में टूट गया, मेरी तलवार भी टूट गई है, मेरे पास कोई भी शस्त्र नहीं है। परन्तु तुम्हारे जैसे गुलाम गीदड़, सिंह को घायल समझकर उसपर आक्रमण करें, यह सम्भव नहीं। आओ, मैं मरने से पहले एक कलंकित राजपूत से पृथ्वी माता का उद्धार करूं। प्रताप ने एक बार बल लगाकर उठने की चेष्टा की, पर वे उठ न सके। शक्तिसिंह ने तलवार फेंक दी। उन्होंने एक दाभ का टुकड़ा वहीं से उठा लिया। उसको दांतों में दबाकर दोनों हाथ जोड़कर वे आगे बढ़े। उन्होंने अपनी पगड़ी प्रताप के चरणों में रख दी और कहा—हिन्दू-पति राणा ! यह विश्वासघाती, कुल-कलंकी कभी अपने को आपका भाई कहने का साहस नहीं कर सकता। तलवार मेरे पास है, उसकी धार अभी तीखी है। लीजिए महाराज, और अपने अपराधी को दण्ड दीजिए। उसने तलवार महाराणा के आगे रख दी, और सिर झुकाकर महाराणा के चरणों में पड़ गया। राणा की आंखों में आंसू उमड़ आए, उन्होंने गद्गद कण्ठ से कहा—भाई शक्तिसिंह ! मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हें समझा नहीं; परन्तु यदि युद्ध के पहले तुम मेरे सामने आकर यह शब्द कहते और आज मैं तुमको सच्चे सिसोदिया की तरह तलवार चलाकर मरते देखता तो मुझे बहुत आनन्द होता। शक्तिसिंह ने कहा—युद्ध के समय तक मेरा मन द्वेष के मैल से परिपूर्ण था और मैं मुगलों का एक सेनापति था। लेकिन जब मैंने आपको घायल और निःशस्त्र युद्ध से लौटते हुए देखा और देखा कि दो मुगल शत्रु आपका पीछा कर रहे हैं तब मुझसे न रहा गया। माता का वह दूध, जो मैंने और आपने एक साथ पिया था, सजीव होकर उमड़ आया। मैंने सेना को त्यागकर उन मुगलों का पीछा किया और उन दोनों को मार गिराया। वह देखो, वे दोनों नाले के पास पड़े हैं। अब हिन्दूपति महाराज, आपकी जय हो। यह तलवार कमर से बांधिए और यह मेरा घोड़ा लीजिए, सामने की उस घाटी में चले जाइए। वहां

मेरे विश्वस्त अनुचर हैं, आपके घावों का तुरन्त बन्दोबस्त हो जाएगा।

प्रताप ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—और तुम शक्तिसिंह? 'महाराज? मैं शाहज़ादे सलीम के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करूंगा और उनसे कहूंगा कि वे मुझे अपने हाथी के पैरों से कुचलवाकर मार डालें, क्योंकि मैंने उनका सैनिक होकर उनके शत्रु की रक्षा की है।' शक्तिसिंह रुका नहीं, चल पड़ा। प्रताप ने कहा—भाई! सुनो! शक्तिसिंह ने कहा—महाराज मेरा अपराध बहुत भारी है। मैं कभी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि आप मुझे दण्ड दे सकते हैं। मैं यवन सेनापति से ही दण्ड चाहता हूं। शक्तिसिंह चले गए। प्रताप ने वीर भाई को पहचाना। वे बड़ी देर तक उनकी ओर देखते रहे और भाई की दी हुई तलवार कमर में बांधी और घोड़े पर चढ़कर चल दिए।

प्रातःकाल का समय था। महाराणा प्रताप पर्वत की एक गुफा में शिला पर बैठे हुए थे। पांच सरदार उनके इर्द-गिर्द थे। उनके ज़ख्म अब अच्छे हो चले थे। वह शक्तिसिंह की बारम्बार तारीफ कर रहे थे, एक लम्बी मनुष्य-मूर्ति उस गुफा के द्वार पर आकर खड़ी हो गई। वे शक्तिसिंह थे। प्रताप भुजा भरकर उनके साथ मिले। शक्तिसिंह ने वह मणि अपने वस्त्र में से निकालकर प्रताप के सामने रखी और कहा—महाराज, यह मणि सलूम्बरा सरदार ने मरते समय मुझे दी थी और वसीयत की थी कि मैं यह आपके हाथ में दूं। इसके बाद उन्होंने सलूम्बरा सरदार की वीरतापूर्ण मृत्यु का करुण वर्णन किया और वर्णन करते-करते शक्तिसिंह रो पड़े। उन्होंने कहा—महाराज, मैं अनुताप की आग में जला जाता हूं। आपके पास से लौटकर मैंने सलूम्बरा सरदार को देखा। उस समय भी उनके शरीर में प्राण थे। और जब उन्होंने सुना कि स्वामी की प्राण-रक्षा हो गई तो उनके मुख पर मुस्कराहट आई और फिर उनके प्राण निकल गए। धन्य हैं वे सरदार, जो इस तरह अपने स्वामी के लिए प्राण देते हैं।...मैंने सलीम से अपना अपराध कह दिया था। परन्तु सलीम ने कोई दण्ड न देकर आपके पास आने को कह दिया। अब महाराज, आप मुझे दण्ड दीजिए।

प्रताप ने भाई का हाथ पकड़कर प्रेम से अपने निकट बैठाया और उसी समय फर्मान किया कि भविष्य में सलूम्बरा सरदार के वंशधर मेवाड़ की सेना में हरावल में रहेंगे और शक्तिसिंह के वंशज युद्ध-क्षेत्र में दाहिने पक्ष में रहेंगे।

# वाणवधू

इस कहानी में वीरबाला तारा के अप्रतिम शौर्य का अनोखा रेखाचित्र है।

'प्रिये, यह सब भाग्य का खेल है, लक्ष्मी अति चपल है। वह सदा एक ठौर नहीं रहती; जो कल महाराज था, आज भिखारी है।'

'स्वामिन्, मैं क्षत्रियपुत्री हूं, मैं भाग्य को नहीं मानती। वीर पुरुष अपने पौरुष से भाग्य का निर्माण करते हैं।'

'किन्तु विश्वधारा के प्रतिकूल, क्षीण मनुष्य का बल···'

'किन्तु कर्मक्षेत्र में दृढ़ता से खड़े रहना उसका कर्तव्य है।'

'और यदि युद्ध में पराजय हुई ?'

'तो वहीं प्राण त्यागे, क्या वीर पुरुष तिनके हैं जो प्रवाह में पड़कर जिधर लहर ले जाय उधर ही बह निकलें ?'

'क्या नल पर विपत्ति नहीं पड़ी ? राज्य गया, स्त्री छूटी, अन्त में नौकरी करनी पड़ी, यह सब विधाता के खेल हैं।'

'यह अवैध जुआ खेलने के खेल हैं।'

'प्रिये, ऐसी बातें क्यों करती हो ? तुम्हें यहां क्या कष्ट है, कैसी सुन्दर वन-स्थली है, झरने का मीठा जल, फल और हरियाली ······'

'पराधीनता में एक क्षण भी रहना धिक्कार की बात है, कायर ही ऐसी युक्तियों से सन्तोष किया करते हैं।'

'प्रिये, पति से ऐसे कठोर वाक्य कहने उचित नहीं, द्रौपदी ने भी कठोर वचन कहे थे, पर फल क्या हुआ ?'

'सच है, क्षत्रिय को रण में पीठ दिखाना शोभा देता है, तुम पुरुष जब से स्त्रियों के विधाता बन गए हो तब से उन्हें सदा अपने प्रति कर्तव्य का उपदेश देते रहते हो, पर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते। यदि तुम कायरों की भांति युद्ध से भाग न आते और सम्मुख युद्ध में प्राण देते तो देखते कि तुम्हारी

पत्नी किस आनन्द से चिता पर चढ़ती है !'

'पर प्रिये, समय के लिए बच रहना भी युक्ति है।'

'कायर ही ऐसी युक्तियां दिया करते हैं, पर जो सच्चे शूर हैं वे जय या मृत्यु–इन दो वस्तुओं को ही प्राप्त करते हैं, शोक तो यह है कि मुझे कन्या जन्मी, पुत्र भगवान् ने न दिया।'

'और जो पुत्र भी युद्ध से भागता ?'

'सिंहिनी कभी स्यार नहीं पैदा करती।'

'आह मैंने नारी-जन्म पाया, मुझे धिक्कार है, मैं पुत्र क्यों न हुई। परन्तु स्त्री अबला क्यों ? क्या उसके हाथ-पैर नहीं, मस्तिष्क नहीं, हृदय नहीं ? शक्ति, तेज, बल–सभी तो शिक्षा और अभ्यास से प्राप्त होता है। देखूं ! सुकोमल बाहुओं को वज्र-भुजदण्ड बना लूं ? इन कलाइयों में दुधारा खड्ग धारण करूं। माता, तुम क्षोभ मत करो, मैं पिता का राज्य शत्रु से छीनूंगी तो मेरा नाम तारा रहा, मैं राजपूतनी की बच्ची हूं। मैं तुम्हारे पुत्र का काम करूंगी।'

'प्रिये, तारा पुत्री कहां गई ?'

'शिकार को गई है।'

'अरे, उस दिन इतना मना किया था, क्या वह बालक है ? उसे रोका नहीं ?'

'तुम्हीं रोक देखो।'

'वह विवाह के योग्य हो गई।'

'इसका विचार भी तुम्हीं करो।'

(तारा का प्रवेश)

'पिताजी आपने यह बाघ का बच्चा देखा ?'

'अरे अरे, उसे यहां लाया कौन ?'

'झाड़ी में घुसकर लाई हूं, इसकी बेचारी माता आज मेरे बर्छे से विद्ध होकर मर गई।'

'मर गई ? तुमने बाघिन को मारकर बच्चा छीन लिया ?'

'पिताजी, कैसा प्यारा बच्चा है ?'

'तारा बेटी, तुम्हारा यह कार्य प्रशंसा के योग्य नहीं, तुम राजकुल की कन्या —यों पुरुष-वेश में घूमते फिरना और शिकार करना तुम्हें उचित नहीं।

जाओ, भीतर बैठो।'

'पिताजी, जब मर्दों ने मर्द के सब काम और बर्ताव तक छोड़ दिए, स्त्री जैसे बन गए—पर स्त्री का प्रधान गुण लज्जा एक बार ही तज बैठे—और चुपचाप शत्रु की लात सहते बैठे हैं, तब स्त्रियों को विवश यह वेष लेना पड़ता है।'

'तारा, ऐसा तर्क, ऐसी प्रगल्भता तूने किससे सीखी ?'

'पिताजी, तब बाघ का बच्चा न देखोगे ? मां, आओ तुम देखो।'

'चलो बेटी, देखूं तेरा बाघ।'

मैं सुन चुकी, मेरे कान पक गए। यह सड़ा हुआ वाक्य—'तुझे चाहता हूं' मैं नहीं सुनना चाहती, मैं इससे घृणा करती हूं।

'तारा, तुम्हें सुनना ही होगा।'

'कुंवर तुम चाहो—चाहे न चाहो, इससे किसीका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।'

'आह ! कैसी पाषाणहृदय नारी हो, किसने तुम्हें यह रूप दिया ?'

'मूर्ख विधाता ने, जिसने तुम्हें मर्द और मुझे औरत बनाया।'

'तारा, तुम प्रेम का तत्त्व नहीं समझतीं।'

'नहीं समझती, वह तत्त्व मुझे सिखाया नहीं गया, वह धर्मियों के सम्भोग की विद्या है, घर-द्वार और राज्य के विहीन सामन्त की दरिद्र कन्या के लिए उपयुक्त नहीं।'

'तुम्हारी इच्छा क्या है ?'

'जब तक पिता का राज्य वापस न ले लूंगी, किसी विषय को मन में स्थान न दूंगी।'

'यह किस भांति होगा ?'

'मैं नहीं जानती, पर मेरे सोचने का यही विषय है, मैं अकेली स्त्री हूं, माना कि शस्त्र-विद्या जानती हूं पर जब सभी मर्द निश्चिन्त बैठे हैं, मैं अकेली क्या करूंगी ?'

'क्या ब्याह की रुकावट यही है ?'

'यही है। प्रेम विलासियों का स्वप्न है, साधकों का नहीं।'

'यदि मैं तुम्हारी मातृभूमि का उद्धार करूं ?'

'तो मैं तुम्हें व्याहूंगी—चाहे तुम्हें चाहूं या न चाहूं।'

'सच ?'

'सच, यह रूप, यौवन, यह सतीत्व-रत्न सब तुम्हारे चरणों में बलि होगा।'

'अच्छा व्याह के बाद प्रेम करोगी ?'

'नहीं कह सकती, तो भी अपना रूप, यौवन सभी वे-उज्र बेच दूंगी। वह तुम्हारी सम्पत्ति होगी।'

'तब यही होगा।'

'तब जाइए कुंवर, जब तक प्रतिज्ञा पूरी न करो मेरे सामने न आना।'

—अर्द्ध रात्रि है, चोर की भांति आया हूं, पर प्रेम अन्धा है, अहा ! कैसा छलकता यौवन है ! वैशाखी वायु में इसकी बहार तो देखो, आकाश में कितने नक्षत्र हैं। पर पृथ्वी में एक यही है, कैसी सुन्दर है, वेसुध सो रही है, कैसी विशाल आंखें, भवें, अहा ! चिकने केश, निखरा हुआ रंग, बलिष्ठ और कोमल शरीर और वक्षस्थल का उभार, फड़कते होंठ मानो चुम्बन मांग रहे हैं, यह कम्पित वक्षस्थल मानो आलिङ्गन मांग रहा है—हैं, पैर में क्या अड़ गया······

'कौन ?'

'प्रिये, चरणों का दास।'

'कुंवर, तुम इस समय यहां ?'

'प्रिये क्षमा।'

'एक क्षण भी बिना ठहरे चले जाओ।'

'नहीं तारा, मैं बिना इच्छा पूर्ण किए न जाऊंगा।'

'नीच, कापुरुष, कुमार्गी—मेवाड़-कुल-कलङ्की, धिक्कार है ! तू चोर की भांति छिपकर कन्या के शयन-गृह में घुस आया है !'

'तारा, प्रेम अन्धा है।'

'फिर कहती हूं चले जाओ।'

'वरना······?'

'वरना प्राण जाएंगे।'

'मैंने द्वार बन्द कर लिए हैं, तुम्हें कौन बचाएगा ?'

'अरे मूढ़, क्षत्रियबाला स्वयं रक्षा करती है, क्या तुम जानते हो ?'

'नहीं प्रिये, एक बार इच्छा-पूर्ति कर दो।'

'तब लो।' (तलवार का प्रहार)

'तारा, ठहरो, दूसरा……'

'अरे पतित, अब नहीं……'

'क्षमा करो, निहत्थे……'

'अरे घृणित चोर……'

'यह आखेट मेरा है।'

'क्या कहा, तुम्हारा इतना साहस ?'

'तुम कौन हो इतने गर्वीले ?'

'अरे, तुम कौन हो इतने सुन्दर, कोमल और निर्भय।'

'पहला प्रश्न मेरा है।'

'तब सुनो, मैं पृथ्वीपाल हूं।'

'मेवाड़ के राजपुत्र ?'

'हां वही, तुम कौन हो ?'

'इससे प्रयोजन नहीं, आखेट तुम ले जाओ।'

'वाह, परिचय तो देना पड़ेगा।'

'मुझे क्षमा करो कुमार।'

'अरे यह कैसी भाषा, मुझे ही तुम क्षमा करो, आखेट तुम ले लो।'

'नहीं, वह तुम्हारा है।'

'मन में शङ्का होती है, पर तुम स्वयं ही परिचय दो।'

'मैं तारा हूं।'

'वाह ! राजकुमारी, अच्छा मेल हुआ, यह आखेट तो मेरा है, मैं तुम्हारा आखेट हूं।'

'कुमार ! मेरी प्रतिज्ञा तो राजपूताने भर में प्रख्यात है, आप इस प्रकार की चर्चा न करें ; अपने रास्ते जाएं।'

'कुमारी, आज ही वह प्रतिज्ञा पूरी होगी।'

'क्या यह सत्य है ?'

'आज मुहर्रम है, अभी तीन पहर दिन शेष है, मुसलमान सब मुहर्रम में

लग रहे हैं, मेरे पांच सहस्र शूर छिपे तैयार खड़े हैं, केवल एक घण्टे का मार्ग है। क्या तुम स्वयं तमाशा देखना चाहती हो ?'

'सहर्ष।'

'तब चलो, क्या पिता से आज्ञा लोगी ?'

'आवश्यकता नहीं।'

'तब चलो।'

'कुमारी, समस्त सेना कोट के वाहर खाई में छिपी रहने दो, हम लोग दुर्ग में चलेंगे।'

'अकेले ?'

'क्या भय लगता है ?'

'नहीं कुमार, तुम्हारे साथ भय !'

'कुमारी, तुम्हारा असली आखेट तो वही है।'

'तब चलो।'

'विजयसिंह !'

'महाराज !'

'संकेत का शब्द सुनते ही दुर्ग में बलपूर्वक घुस पड़ना।'

'जो आज्ञा।'

'कुमारी !'

'कुंवर !'

'चलो।'

'चलो।'

'कुमारी तुम्हारा अश्व बड़ा चपल है, इसे तनिक वश में रखो नहीं तो नागरिक लोग इधर ही देखने लगेंगे, यह शत्रुपुरी है।'

'कुंवर, आज इसे स्वच्छन्द विचरण करने दो।'

'क्षणभर ठहरकर देखो कितनी भीड़ है, आज सभी मस्त हो रहे हैं।'

'ठहरो, देखो ये दोनों सवार हमें घूर-घूरकर देख रहे हैं, सन्देह न करने लगें, आओ, उनके निकट चलो।'

'भाई, अब क्या त्योहार है ?'

'तुम लोग परदेशी मालूम होते हो, आज मुहर्रम है।'

'ओह हमें, यह नहीं मालूम था, हम लोग अभी-अभी आ रहे हैं, परन्तु हम लोग क्या यह सब देख सकते हैं ?'

'अभी सुलतान की सवारी आ रही है, तुम्हें कौन रोकता है, खुशी से देखो।'

'सच सुलतान के दर्शन तो हमें अनायास ही हो जाएंगे। अरे यह सुलतान की सवारी आ रही है !'

(कान में) 'कुंवर, यही समय है।'

'कुमारी, क्षण भर ठहरो, और निकट ठहरो। आओ, उस घर की आड़ में खड़ी हो जाओ।'

(एक तीर छांटकर)—'यही यथेष्ट होगा। कुंवर, अपने आखेट को मैं ही विद्ध करूंगी।'

'और कौन यह साहस करेगा कुमारी ! पर सुलतान को ठीक पहचान लेना।'

'वही न, जो श्वेत अश्व पर सवार है।'

'वही जिसकी हरी पगड़ी में हीरा चमक रहा है।'

(तीर धनुष पर सन्धान करके) 'कुंवर देखना, सूअर विद्ध होता है या नहीं।'

'तुम निर्भय वाण छोड़ो कुमारी।'

'वह मारा, तीर सुलतान की छाती के आर-पार हो गया ! वह घोड़े से गिर गया ! हलचल मच गई। देखो वे इधर ही आ रहे हैं ! कुमारी, अपना बर्छा सम्भाले रहो। मेरे बाएं कक्ष से दूर न रहना, सीधी बढ़ी चलो अभी फाटक खोलना है।'

'कुंवर सावधान !' (एक यवन को बर्छे से मारती हुई)

'कुमारी, सावधान !' (तलवार से एक सिपाही को काटकर)

'कुंवर बढ़े चलो !'

'आह, द्वार पर मस्त हाथी खड़ा है, सारी सेना दौड़ी आ रही है।'

'चिन्ता नहीं !' (बढ़कर एक ही तलवार के वार से हाथी की सूंड काट डालती

है। हाथी चिंघाड़ता भागता है। झटपट द्वार खोलकर—)

'विजयसिंह ?'

(सेना का दुर्ग में प्रवेश, भयानक मार-काट, दुर्ग-विजय)

'तारा पुत्री, ये मेवाड़ के राजकुमार पृथ्वीपाल हैं, इन्हें प्रणाम करो। इन्होंने सुलतान को मारकर तुम्हारे पिता का राज्य-उद्धार किया है।'

'पिताजी, मैं इनका यश सुन चुकी हूं।'

'राजकुमार, यही मेरी कन्या तारा है, मुझ दरिद्र के मस्तक का मुकुट, मेरे जीवन की डोर। तारा !'

'पिताजी !'

'तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है ?'

'जी हां, पिताजी !'

'कुंवर, तुम्हें मैं जामाता बनाता हूं, यदि तुम दरिद्र का यह दान स्वीकार करो। मैं तो नहीं, पर तारा तुम्हारे योग्य है।'

'महाराज, यदि आपकी पुत्री स्वीकार करें……'

'वह तो कर चुकी, हाथ आगे लाओ पुत्री, तुम भी आगे बढ़ो पृथ्वी, मेवाड़ के वीर, मैंने तुम्हें अपनी पुत्री दी।'

'पिता, हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'दोनों चिरंजीव रहो ; सुपुत्र और सुयश के भागी बनो।'

# सामाजिक कहानियां

- नवाब ननकू
- सुखदान
- टार्च लाइट

# नवाब ननकू

'नवाब ननकू' एक भावकथा है, जिसमें चरित्र और आचार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। कहानी में कुल तीन मुख्य पात्र हैं। राजा साहब, एक शराबी-कबाबी-वेश्यागामी लम्पट रईस, जिन्होंने इसी काम में अपनी सारी सम्पत्ति फूंक दी और अब दारिद्र्य और रोग का भोग भोग रहे हैं। दूसरी हैं एक विगलितयौवन वेश्या, और तीसरे हैं एक रईस के औरस से उत्पन्न वेश्या-पुत्र, जो अपने को नवाब समझते हैं। कहानी में तीनों दोस्तों की एक मुलाकात का रेखाचित्र है। मुलाकात में जीवन के आगे-पीछे के समूचे जीवन की स्पष्ट झांकी अंकित करने में लेखक ने अपनी अपरिसीम कथा-निर्माण-कला का परिचय दिया है। इससे भी अधिक अपनी उस विश्लेषण-सामर्थ्य को मूर्त किया है—जबकि वह चरित्र को आचार से पृथक् मानता है। तीनों ही पात्र हीन चरित्र हैं। परन्तु उनके हृदय की विशालता, विचारों की महत्ता, भावों की पवित्रता ऐसी व्यक्त हुई है कि बड़े से बड़ा सदाचारी भी उसकी समता नहीं कर सकता। पूरी कहानी पढ़कर तीनों में से किसी भी पात्र के प्रति मन में विराग और घृणा नहीं होती, आत्मीयता और सहानुभूति के भाव पैदा होते हैं। आचारहीन व्यक्ति भी उच्च चरित्र वाले होते हैं। तथा आचार और चरित्र में मौलिक अन्तर क्या है—यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक और आचारशास्त्र-सम्बन्धी नया दृष्टिकोण लेखक ने कहानी में व्यक्त किया है।

सरदी के दिन और सनीचर की रात, कल इतवार। न दफ्तर जाने की फिक्र, न किसी काम की चिन्ता। बस, बेफिक्री से खाना खाकर जो रजाई में घुसे तो अम्बरी तमाखू का कश खींचते-खींचते ही अण्टागफील हो गए।

मगर उस मीठी नींद में शुरू में ही विघ्न पड़ गया। नीचे कोई कर्कश स्वर में चिल्ला रहा था—बाबू साहब, अजी बाबू साहब। उस वक्त आराम में यों खलल पड़ने से तबियत झल्ला उठी। क्या मजे की झपकी आई थी। मैंने उठकर खिड़की से सिर निकालकर कहा—कौन है भई; इस वक्त?

'अजी हम हैं नवाब साहब। गजब करते हैं आप भाई साहब, अभी लम्हा

भर हुआ है सूरज छिपे ; और आपके लिए आधी रात हो गई, चीखते-चीखते गला फट गया। मुहल्ला-भर सिर पर उठा डाला।'

बड़ा गुस्सा आया उस नवाब के बच्चे पर। जी में आया, कच्चा ही चबा जाऊं। परन्तु ज़ब्त करके कहा—कहिए नवाब साहब, इस वक्त कैसे ?

'अजी, दरवाज़ा तो खोलिए, या गली में खड़े ही खड़े राग अलापूं।'

मन ही मन दाव-पेंच खाता नीचे उतरा और कुण्डी खोली। नवाब साहब चुपचाप पीछे-पीछे ज़ीना चढ़कर ऊपर आए; आते ही मसनद पर बेतकल्लुफी से उठंग गए। कहने लगे—खुदा की मार इस सरदी पर। हड्डियां तक ठण्डी पड़ गईं। मगर उस्ताद, खूब मजे में आप मीठी नींद ले रहे थे।

मैंने कहा—आपके मारे कोई सोने पाए तब तो। कहिए, इस वक्त कैसे तकलीफ की ?

नवाब साहब ने बेतकल्लुफी से हंसकर कहा—यों ही, बहुत दिन से भाभी साहिबा के हाथ का पान नहीं खाया था, सोचा—पान भी खा आऊं और सलाम भी करता आऊं।

गुस्सा तो इतना आ रहा था कि मर्दूद को धकेल दूं नीचे। मगर मैंने गुस्सा पीकर कहा—पूरे नामाकूल हो तुम। कल इतवार था। कल यह सलाम की रस्म पूरी नहीं कर सकते थे, जो इस वक्त मेरे आराम में खलल डाला ?

नवाब साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। जेब से सिगरेट का बक्स और दिया-सलाई निकालकर एक होंठों में दबाई, दूसरी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—खैर, सिगरेट तो पिओ और गुस्सा थूक दो। हां, चालीस रुपए मेरे हवाले करो और इसे रक्खो संभालकर।

उन्होंने बगल से एक पोटली निकालकर मेरे आगे सरका दी।

मैंने कहा—यह क्या बला है, और इस वक्त रुपयों के बिना कौन कयामत बरपा हो रही थी ?

नवाब साहब को भी गुस्सा आ गया। कहने लगे—कयामत नहीं बरपा हो रही थी, तो मैं यों ही झख मारने आया हूं इस वक्त ? हज़रत, यह मेरी भी पीनक का वक्त था।

'मगर इस वक्त रुपए तुम क्या करोगे ?'

'फेंक दूंगा सड़क पर, तुम से मतलब ?'

'रुपए नहीं हैं।'

'रुपए न होने की खूब कही, बुलाऊं भाभी को ?'

'भाभी तुम्हारी क्या तोप से उड़ा देंगी, बुलाओ चाहे जिसको, रुपए नहीं हैं।'

'समझ गया, बेहयाई पर कमर कसे हुए हो। लाओ, चुपके से रुपए दे दो, अभी मुझे सदर तक दौड़ना होगा।'

'सदर तक क्यों ?'

'एक बोतल व्हिस्की और गजक लेने, और क्यों।'

'अच्छा, तो हजरत को शराब के लिए रुपए चाहिएं।'

'जी हां, शराब के लिए, और कबाब के लिए भी, निकालो जल्दी से।'

'कह तो दिया, रुपए नहीं हैं।'

'तुमने तो कह दिया, पर हमने तो सुना ही नहीं।'

'नहीं सुना तो जहन्नुम में जाओ।'

'कहीं भी हम जाएं तुम्हारी बला से, लाओ तुम रुपए दो।'

'रुपए नहीं दूंगा, अब तुम खसकन्त हो यहां से नवाब।'

'चे खुश। रुपए तो मैं खड़े-खड़े अभी लूंगा तुमसे।'

'क्या तुम्हारा कर्ज चाहिए मुझपर ?'

'कर्ज ही तो मांगता हूं।'

'मैं कर्ज नहीं देता।'

'देखता हूं कैसे नहीं दोगे, बुलाओ भाभी को भी अपनी हिमायत पर।' नवाब ने गुस्से से आस्तीन चढ़ानी शुरू की।

मुझे बुरी तरह हंसी आ गई। कहा—क्या मारपीट भी करने पर आमादा हो ?

'मारपीट! तुम मारपीट की कहते हो, मैं तुम्हें गोली न मार दूं तो नवाब ननकू नहीं।'

मैंने हंसकर कहा—गोली मार दोगे तो फिर रुपया कहां से वसूल करोगे नवाब साहब ?

'बस इसी बात को सोचकर तो तरह दे जाता हूं, निकालो रुपए।'

'लेकिन नवाब, तुम तो कभी नहीं पीते थे, आज यह क्या बात है ?'

'तो क्या मैं अपने लिए मांगता हूं। मैंने कभी पी है ?'

'फिर किसके लिए ?'

'राजा साहब के लिए।'

'अच्छा—यह बात है, अब समझा। कोई नई चिड़िया आई है क्या ?'

'राजेश्वरी आई है बनारस से।'

'तो तुम क्यों उस शराबी के लिए झख मारते फिरते हो ?'

'तब कौन झख मारे। तुम चाहते हो, राजा साहब खुद तुम्हारे दरवाजे पर आकर चालीस-चालीस रुपल्ली के लिए ज़लील होते फिरें।'

'वे कुछ भी करें, तुम्हें क्या। जो जैसा करेगा, भोगेगा। जिसने लाखों की ज़मीन-जायदाद, ज़र-जवाहरात, सब शराब और रण्डी-भड़ुओं में फूंक दी, तुम उससे क्यों इतनी हमदर्दी रखते हो ?'

'क्या मैं हमदर्दी रखता हूं ?'

'तब ?'

'मैं मुहब्बत करता हूं उनसे भाई, उनकी इज्ज़त करता हूं।'

'किसलिए ? आखिर सुनूं तो।'

'किसलिए ? सुनो, पहले तो वे मेरे बड़े भाई, दूसरे ऐसे दाता, ऐसे प्रेमी, ऐसे बात के धनी, ऐसे दिल वाले···कि दुनिया में चिराग लेकर ढूंढो तो कहीं मिल नहीं सकते।'

'शराबी और रंडीबाज़ भी क्यों नहीं कहते ?'

'वह तुम कहो। वे शराब पीते हैं और रण्डियों से आशनाई करते हैं, इसमें किसीका क्या लेते हैं ? उन्होंने अपनी लाखों की जायदाद उन्हें दे दी, जिन्हें उन्होंने प्यार किया। आज उनका हाथ खाली है, मगर दिल बादशाह है। वे जीते जी बादशाह रहेंगे। मैं उन्हें पसन्द करता हूं, प्यार करता हूं, इज्ज़त करता हूं। मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता कि वे दुनिया के आगे हाथ फैलाएं।'

'और तुम उनके लिए भीख मांगते फिरते हो।'

किससे मैंने भीख मांगी है, कहो तो', नवाब ने तैश में आकर कहा।

'यह अभी तुम चालीस रुपए मांग रहे हो ?'

'और यह क्या है ?'

नवाब ने सामने की पोटली की ओर इशारा किया।

उसे तो मैं भूल ही गया था। मैंने देखा—वह एक ज़री के काम का कीमती लंहगा है।

नवाब ने कहा—बेचना चाहूं तो खड़े-खड़े दो सौ में बेच दूं। तुम से तो मैं चालीस ही मांग रहा हूं।

'लंहगा क्या राजा साहब ने दिया ?'

'वे क्यों देने लगे ? अम्मी जान का है। राजेश्वरी आज आई थीं। मुझे बुलाकर राजा साहब ने कहा—नवाब, हाथ में इस वक्त कुछ नहीं है, राजेश्वरी के लिए कुछ खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दो। आंखें उनकी शर्म से झुकी थीं, और लाचारी से भीग रही थीं। बस इतनी ही तो बात है।'

'अच्छा और तुम चुपके से घर आए, यह लंहगा उठाया और यहां आ धमके।'

'जी हां, और तुम्हारी नींद हराम कर दी! बहुत हुआ अब, बस अब लाओ रुपये दो।'

मैंने चुपके से दस-दस के चार नोट नवाब के हाथ पर रख दिए। मेरी आंखों में आंसू आ गए, और मैंने वह लंहगा उसी तरह लपेटकर नवाब की ओर बढ़ाते हुए कहा—इसे लेते जाओ।

नवाब ने आपे से बाहर होकर चारों नोट फेंक दिए। लाल होकर कहा—अच्छा, तो हज़रत मुझे भीख देने की जुर्रत करते हैं।

'नहीं भाई, ऐसा क्यों सोचते हो, मगर यह लंहगा मैं नहीं रख सकता।'

'तो तुम्हारे रुपए भी नवाब नहीं ले सकता। आज राजा कामेश्वरप्रसाद-सिंह खाली हाथ हैं, और नवाब ननकू अपनी अम्मी जान का लंहगा गिरवी रखने पर लाचार हैं, मगर आप यह मत भूलिए कि वे दोनों सलीमपुर के राजा महाराज नन्दनसिंह के नुतफे से पैदा हुए हैं, जो तीन बार सोने से तुले थे, और जिन्होंने ग्यारह हाथी ब्राह्मणों को दान दिए थे। जिनकी दी हुई जागीरों को सैकड़ों शरीफजादों की आल-औलाद आज भोग रही है। इलाके भर में जिनके पेशाब से चिराग जलते थे।' मैंने खड़े होकर खुशामद करते हुए कहा—वह सब ठीक है नवाब साहब, मगर ये रुपए तुम मेरी तरफ से राजा साहब को नज़र करना।

'हरगिज़ नहीं, राजा साहब कभी किसीकी नज़र कबूल नहीं करते। तुम

यह लंहगा गिरों रखकर चालीस रुपए देते हो तो दो।'

लाचार मैंने हामी भर ली। मैंने लंहगे को उसी तरह लपेटकर रख लिया और नवाब रुपए जेब में रखकर उठ खड़े हुए।

मैंने कहा—यह क्या नवाब, भाभी का पान बिना खाए और विना सलाम किए चले जाओगे?

'हरगिज़ नहीं' नवाब ने बैठते हुए कहा—बुलाओ तो उन्हें।

मैंने पत्नी को नीचे से बुलाया। वे बच्चों को दूध पिलाने और सुलाने की खटपट में थीं; नवाब को एक लफंगा आदमी समझती थीं। मेरे पास उसका आना-जाना और चाहे जब रुपए-पैसे ले जाने को वे हमेशा नापसन्द करती थीं। उन्होंने आकर कहा—इस वक्त मेरी तलबी क्यों हुई है?

'यह इन नवाब साहब से पूछो।'

'यही कहें?'

'पान खिलाइए तो कहूं।'

'कहो, पान भी मिल जाएगा।'

'वादे की सनद नहीं, झपाके से दो बीड़ा बढ़िया पान ले आइए।'

पत्नी चली गईं और एक तश्तरी में कई बीड़े पान लेकर लौटीं। उनमें से दो बीड़े उठाकर नवाब ने हाथ में लिए, अदब से मेरी पत्नी के सामने खड़े हुए और जमीन तक झुककर कहा—सलाम बड़ी भाभी, आपका यह गुलाम नवाब ननकू आपको सलाम करता है, और आपकी दुआ की इस्तुजा रखता है।

पत्नी मुस्कराईं। उन्होंने कुछ झेंपते हुए कहा—कभी बच्चों को भी नहीं भेजते नवाब साहब; एक बार भेजो।

'जो हुक्म बड़ी भाभी, सलाम।'

नवाब साहब ने और एक सलाम झुकाई और चले गए।

मेरी नींद बहुत रात तक गायब रही। मैं अन्दाजा न लगा सका कि यह व्यक्ति संसार के सब मनुष्यों से कितना ऊंचा है?

कमरे में एक ओर अंगीठी जल रही थी। राजा साहब पलंग पर लेटे थे और एक खिदमतगार धीरे-धीरे उनके पांव सहला रहा था। राजेश्वरी नीचे फर्श पर बैठी छालियां काट रही थी। चांदी का पानदान सामने खुला रखा था। राजा

साहब गंगा-जमुनी काम की गुड़गुड़ी पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे थे और धीरे-धीरे राजेश्वरी से बातें कर रहे थे।

राजेश्वरी की उम्र चालीस को पार कर चुकी थी। बदन उसका कुछ भारी हो चला था, और माथे पर की लटों में चांदी की चमक अपनी बहार दिखा रही थी। फिर भी उसकी पानीदार आंखों और मृदु मुस्कान में अभी भी मोह का नशा भरा था।

राजेश्वरी ने कहा—सरकार ने यों नजरें फेर लीं, मुद्दत हुई पैगाम तक न भेजा, सुनती रहती थी, हुजूर के दुश्मनों की तबियत खराब रहती है। आखिर जी न माना, बेहया बनकर चली आई।

'मुझे निहाल कर दिया तुमने इस वक्त आकर राजेश्वरी, दिल बाग-बाग हो गया। क्या कहूं, बहुत याद करता हूं तुम्हें—मगर...'

'हुजूर की नजरे इनायत पर मैंने हमेशा फख्र किया है, और मरते दम तक करूंगी।

'तुम जिओ राजेश्वरी, ईश्वर तुम्हें खुश रखे। यह मूज़ी बीमारी—क्या कहूं, अब तो हिलने-डुलने से भी लाचार हो गया हूं। पर यह सब उस भगवान् की दया है। फिर मुझे अपनी लाचारी का क्या गम है, जब तुम दुनिया की तमाम खुशी लेकर यहां आ जाती हो।'

राजेश्वरी ने चार बीड़ा पान बनाकर राजा साहब को अदब से पेश किए। राजा साहब ने मुस्कराकर पान लेकर मुंह में रखे।

खिदमतगार ने आकर अर्ज की—हुजूर, कुंवर साहब सलाम के लिए हाज़िर हुए हैं।

'आएं वे'—राजा साहब ने धीरे से कहा।

कुंवर साहब ने झुककर राजा साहब को सलाम किया और पैताने की ओर अदब से खड़े हो गए।

राजा साहब ने कहा—चाची को सलाम नहीं किया बेटे। कुंवर साहब ने आगे बढ़कर राजेश्वरी को सलाम किया, और दो कदम पीछे हट गए।

राजेश्वरी खड़ी हुई। आगे बढ़कर कुंवर साहब के पास पहुंची, उनके मुंह पर प्यार से हाथ फेरा, और दो अशर्फियां निकालकर उनकी मुट्ठी में जबरन थमा दीं।

कुंवर साहब ने पिता की ओर देखा।

राजा साहब ने कहा—ले लो, और चाची को फिर मुकर्रर सलाम करो।

कुंवर साहब ने फिर झुककर सलाम किया। राजेश्वरी ने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने इशारा किया और कुंवर साहब चले गए।

एक ठण्डी सांस खींचकर राजा साहब ने कहा—इस निकम्मे बाप ने अपने बेटे के लिए भी कुछ न छोड़ा राजेश्वरी, मगर तसल्ली यही है कि ज़हीन है, पेट भर लेगा।

'हुज़ूर ऐसा क्यों फर्माते हैं। इन मुबारक हाथों से भीख पाकर लोगों ने रियासतें खड़ी कर ली हैं। दुनिया में दिल ही तो एक चीज़ है हुज़ूर, भगवान् भी यह सब देखता है। वह उस आदमी की औलाद पर बरकत देगा जिसने अपनी जिन्दगी में सब को दिया ही है, लिया किसीसे भी कुछ नहीं।'

राजा साहब ने हाथ बढ़ाकर राजेश्वरी का हाथ पकड़ लिया। बहुत देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। दो पुराने किन्तु पानीदार दिल मन ही मन एक-दूसरे को यत्न से संचित स्नेह से अभिषिक्त करते रहे।

आखिर राजा साहब ने एक ठण्डी सांस भरी, और गुड़गुड़ी में एक कश लगाया।

नवाब ननकू हांफते हुए आ बरामद हुए। उनकी नाक पर की ऐनक नाक की नोक पर खिसक आई थी। आते ही उन्होंने खिदमतगार को एक डांट दी—अरे कम्बख्त, बदनसीब, अंगीठी में और कोयले क्यों नहीं डाले, वह बुझ रही है। नवाब साहब जब तक हुक्म न दें, ये नवाब को बच्चे काम न करेंगे। राजा साहब को दौरा हो गया, तो याद रख कच्चा चबा जाऊंगा। उठ, जल्दी कोयले डाल।

खिदमतगार चुपके से उठ गया। नवाब ने ही-ही हंसते हुए कहा—देखा राजेश्वरी भाभी, खिदमतगार साले नवाब ननकू के आगे बन्दर की तरह नाचते हैं। मगर मुंह पर कहता हूं, बिगाड़ दिया है राजा साहब ने, नौकरों को बहुत मुंह लगाना अच्छा नहीं।

'लेकिन नवाब, उन गरीबों को छह-छह महीने तनख्वाह नहीं मिलती है, बेचारे मुहब्बत के मारे पड़े हैं।'

'तो इससे क्या? उनके बाप-दादों ने इतना खाया है कि सात पीढ़ी के लिए काफी है।'

'मगर उन्होंने खिदमत भी तो की है।'

'तो रियासतें भी तो पाई हैं।'

'अच्छा देखूं तो, राजेश्वरी के लिए क्या-क्या चीज लाए हो।'

'देखिए, और दाद दीजिए नवाब को ?'

नवाब ने बोतल बगल से निकाली। और भी बहुत सा सामान।

'अरे, यह इतनी खटपट किसलिए की नवाब साहब।' राजेश्वरी ने कहा।

'जी, जैसे आप चिऊँटी के बराबर तो खाती ही हैं ? फिर आईं कितने दिन बाद हैं राजेश्वरी भाभी। जानती हैं; राजा साहब कितना याद करते हैं। जब राजेश्वरी जबान पर चढ़ती हैं, आंखें गीली हो जाती हैं। अम्मी जान कहती थीं, बड़े महाराज का भी यही हाल था, ज़रा सी बात पर दिल भारी कर लेते थे।'

'वे देवता थे नवाब साहब।'

'और ये ?'

'ये; इन्हें पहिचाना किसने है अभी।'

'दुनिया ऐसों को कभी न पहचान पाएगी।'

खिदमतगार अंगीठी टंच करके रख गया। नवाब साहब ने खुश होकर कहा—यह बात है रामधन, मगर देखो, मैंने तुम्हें एक गाली दी है, और यह दो रुपए इनाम देता हूं।

नवाब ने दो रुपए निकालकर रामधन की ओर बढ़ा दिए।

रामधन ने नवाब के पैर छूकर कहा—हुजूर, आपकी गालियां खाकर ही तो जी रहा हूं। रुपया-पैसा सरकार का दिया बहुत है।

'मगर यह भी रख लो, महरिया को एक बढ़िया सी चुनरी ला देना।'

'वह उस दिन हवेली गई थी सरकार, तो बेगम साहिबा ने जाने क्या-क्या लाद दिया था, गट्ठर भर लाई थी।' नवाब ने तैश में आकर कहा—अबे, रुपए लेता है या मंतिख छांटता है, क्या लगाऊं धौल ? रामधन ने रुपए लेकर उन्हें और राजा साहब को सलाम किया।

राजा साहब ने हंसकर कहा—देखा राजेश्वरी, नवाब का इनाम देने का तरीका।

नवाब खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने कहा—झपाके से तश्तरियां ला,

गिलास ला, पैग ला। जल्दी कर।

क्षण भर में ही सब साधन जुट गए। राजा साहब तकिए के सहारे उठंग गए। शराब का दौर शुरू हुआ। नवाब ने गिलास में सोड़ा और शराब भरकर कहा—राजेश्वरी, राजा साहब की तन्दुरुस्ती और बरकत के लिए। तीनों ने हंसती हुई आंखें मिलाईं और शराब की चुस्कियां लेने लगे।

राजेश्वरी ने कहा—इस सरदी में बहुत दौड़-धूप की नवाब साहब।

'मान गईं न आप नवाब को, लीजिए इसी बात पर दूसरा पैग।'

'नहीं नवाब, मैं तो कभी पीती ही नहीं। बहुत मुद्दत हुई, जब से महाराज की तबियत नासाज़ रहने लगी। आज मुद्दत बाद मुंह से लगा रही हूं।'

'तो पूरी कसर निकालिए राजेश्वरी भाभी, नवाब को इस ठण्डी रात में उस साले ठेकेदार से बहुत मगज़पच्ची करनी पड़ी। साला वही रद्दी माल पटील रहा था। मैंने कहा : वह बोतल निकाल जो उस दिन हमारे सरकार की खिदमत में गई थी। और ये कबाब, सच कहता हूं राजेश्वरी भाभी, कस्बे दूसरा नहीं बना सकता।'

'वाकई बहुत अच्छे बने हैं, मगर आप तो खाते ही नहीं नवाब साहब।'

'वाह, खिलाने में जो मज़ा है, वह खाने में कहां? देखा था अम्मी को, यही एक शौक उन्हें मरते दम तक रहा—एक से एक बढ़कर चीज़ें बनाना और खिलाना।'

'मुझे याद है नवाब, मैं तब बहुत बच्ची थी, आपा के साथ आती थी, वे छोड़ती ही न थीं—खींच ले जाती थीं। कितना खिलाती थीं; क्या कहूं।'

'मगर अब अम्मी तो हैं नहीं, नवाब उनका नालायक लड़का है, उसने विरासत में अम्मी की वह आदत पाई है। लीजिए, यह पैग तो पीना होगा।'

'मगर उधर तो देखो नवाब, महाराज ने सिर्फ होठों से छूकर ही गिलास रख दिया है, पी कहां?'

'क्या कहूं, राजेश्वरी, तकलीफ देती है, पी नहीं सकता। डाक्टरों ने भी मना कर दिया है। मगर तुम पियो राजेश्वरी, आज मैं बहुत खुश हूं। लाओ नवाब, राजेश्वरी को एक पैग मैं भरकर दूं।'

'और हुज़ूर, एक नवाब को भी।'

'अरे, यह कब से? तुम तो कभी पीते नहीं थे।'

'आज ही से, अभी-अभी एक पैग पिया है मैंने।'

'राजा साहब ने दो पैग भरकर तैयार किए। गिलास में भरकर कहा—लो राजेश्वरी, और तुम भी नवाब।'

'वाह हुजूर यों नहीं, ज़रा-सा जूठा कर दीजिए कि यह जाम पाक तवर्रुक हो जाय।' नवाब ने कहा।

राजा साहब हंस दिए। उन्होंने नवाब का हाथ पकड़कर और खींचकर छाती से लगा लिया। फिर आंखों में आंसू भरकर कहा—ननकू, मेरे प्यारे भाई, हमारी माँ दो थीं, मगर वालिद एक थे। फिर भी तुम मेरे सगे भाई हो। ऐसे, जैसा दूसरा मिलना मुश्किल है। और ननकू, मैं सिर्फ प्यार की बदौलत ही जी रहा हूं। उन्होंने प्याला ओठों से छिआकर नवाब को दिया और नवाब गटागट पी गए। उनकी आंखों में आंसू और होठों में हंसी बिखर रही थी।

नवाब ने कहा—राजेश्वरी भाभी, बहुत दिन से सूने-सूने दिन जा रहे थे। आज तो कुछ जंच जाए।

'मगर नवाब, गले में अब सुर तो रहे ही नहीं।'

'बेसुरा ही सही।'

महाराज ने हंसकर कहा—राजेश्वरी, आज नवाब को बहुत मिहनत करनी पड़ी है, उसकी बात रख लो।

'जो हुक्म, मगर मेरी एक अर्ज़ है।'

'कहो।'

'नवाब साहब को जो तबर्रुक बख्शा गया है, वही लौंडी को भी इनायत हो।'

'ओह, अच्छा ठहरो, सब्र करो।'

नवाब ने इशारा किया। रामधन तबला, हारमोनियम ले आया।

हारमोनियम नवाब खींच बैठे, और रामधन ने चारों ओर तकिए लगाकर राजा साहब को आराम से बैठाकर तबले उनकी गोद में रजाई में लपेटकर रख दिए। अम्बरी तमाखू की एक नई चिलम चढ़ा दी। तबले पर एक हल्की चोट देते हुए राजा साहब ने कहा—राजेश्वरी, अभी उंगलियों पर लकुए का असर नहीं है, काम दे रही हैं।

राजेश्वरी ने चुपचाप आंखों में प्यार भरकर राजा साहब पर उंडेल दिया।

और अलाप लिया। हारमोनियम पर नवाब की अभ्यस्त उंगलियां नाचने लगीं, और तबले पर मृदु मन्द ताल नृत्य करने लगा।

राजेश्वरी की प्रौढ़ स्वर-लहरी ने वातावरण में एक प्यास उत्पन्न कर दी। यह वैसी न थी, जैसी वासना और यौवन की आंधी के झोंकों में मिली रहती है। यहां तीन प्रेमी: विश्वस्त, पुराने और ऊंचे हृदय, अपने भौतिक आनन्द की चरम अनुभूति ले रहे थे। वे लोग आप ही अपनी कला पर मुग्ध थे, आप ही अपनी तारीफ कर रहे थे, आप ही अपने में पूर्ण थे।

'तो हुजूर, अब कब ?'

'जब मर्ज़ी हो राजेश्वरी।'

'तबीयत होती है कि कुछ दिन कदमों में रहूं।'

'मैं भी चाहता तो हूं राजेश्वरी, पर तुम्हारी तकलीफ का ख्याल करके चुप रह जाता हूं। देखती हो, मकान कितना गन्दा है, सिर्फ दो ही खिदमतगार हैं। इन्हें भी महीनों तनखाह नहीं मिलती, पर पड़े हुए हैं। तुम इन तकलीफों की आदी नहीं हो।'

'मगर हुजूर, क्या मैं उन खिदमतगारों से भी गई-बीती हूं ?'

'नहीं, नहीं राजेश्वरी, मैं तुम्हें जानता हूं।'

'मगर हुजूर अपने को नहीं जानते, मेरी वह कोठी, जायदाद, नौकर-चाकर सब किसकी बदौलत हैं, हुजूर ने जो पान खाकर थूक दिया उसीकी बदौलत। अब हुजूर गरीब हो गए तो पुराने खादिम क्या बेगाने हो जाएंगे ?'

राजेश्वरी की आंखें भर आईं। कुछ ठहरकर उसने कहा—शर्म के मारे मैं खिदमतगारों को नहीं लाई, और इस टुटहे इक्के पर आई हूं। मैं कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि मालिक जब इस हालत में हों तो उनकी बांदियां ठाठ दिखाएं।'

'नहीं नहीं, राजेश्वरी, यह बात नहीं। पर मैं अपनी आंखों से तुम्हें तकलीफ पाते देख नहीं सकता। कभी देखा ही नहीं।'

'इसीसे हुजूर, मुझे अभी ज़बर्दस्ती भेज रहे हैं, मेरी नहीं सुनते।'

'इसीसे राजेश्वरी।'

'और इस लौंडी का कभी कोई तोहफा भी नहीं कबूल करते ? उस बार

जब जनाना महल नीलाम हो रहा था, मैंने कितनी आरजू की थी कि मुझे रुपया चुकता कर देने दीजिए। पुरखों की यादगार है, सब रियासत गई। मगर रहने का महल—आप मेरे आंसुओं से तो नहीं पसीजे हुजूर, आप बड़े बेदर्द हैं।'

राजेश्वरी फूटकर रो पड़ी, और राजा साहब के सीने पर गिर गई। राजा साहब उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर कहा—तुम भी बच्ची हो गई हो राजेश्वरी, अब भला उतना बड़ा महल मैं क्या करता? अकेला पंछी। फिर उसमें अब खुल गया जनाना अस्पताल, कितने लोगों का भला होता है। बोर्ड ने खामखाह मेरा नाम अस्पताल के साथ जोड़ दिया है।

'जी हां, खामखाह ही। वह लाखों की स्टेट जो कौड़ियों में दे दी। और अब हुजूर इस किराए के मकान में बहुत खुश हैं।'

'बहुत खुश, राजेश्वरी, बहुत खुश। न ऊधो का लेन, न माधो का देन। लेकिन बहुत देर हो रही है राजेश्वरी, गाड़ी पकड़नी है। स्टेशन काफी दूर है, और रास्ता बड़ा खराब है। तुम्हारा इक्का आ गया?'

'धक्के दीजिए मुझे, बुढ़िया जो हो गई हूं, अब आप यही तो करेंगे।'

राजा साहब असंयत होकर पलंग से आधे उठ गए। राजेश्वरी को खींचकर छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसके गंगाजमुनी बालों की लटों को उंगलियों में लपेटते हुए कहा—बुड्ढा-बुढ़िया कौन होता है राजेश्वरी, मेरी आंखों में तुम वही—नए केले के पत्ते से रूप वाली, अछूते यौवन और अपार प्यार वाली, मेरे दिल और दिमाग की तरावट राजेश्वरी हो। तुम या मैं भले ही बूढ़े हो जायं, लेकिन इन आंखों में झांककर जिसने तुम्हें देखा है, वह बूढ़ा नहीं। और तुम्हारे भीतर बैठकर जो एक-एक मोती तुम्हारी आंखों में सजाता जा रहा है, वह भी बूढ़ा नहीं।

राजेश्वरी धीरे से राजा साहब के मुंह के बिलकुल पास फर्श पर बैठ गई। रामधन अम्बरी तमाखू चढ़ाकर गुड़गुड़ी रख गया। राजा साहब चुपचाप तमाखू पीने लगे। तमाखू की खुशबू ने कमरे को मस्त कर दिया।

राजेश्वरी ने कहा—हुजूर वादा-वफा हो।

राजा साहब ने भौंहें सिकोड़कर राजेश्वरी की ओर देखकर कहा—वादा?

'जी'

'क्या?'

'तबर्रुक।'

'ओह, भूली नहीं राजेश्वरी।'

'भूलने की एक ही कही, कल से आस लगाए हूं। नवाब के सामने फिर नहीं कहा।'

राजा साहब कुछ देर चुपचाप गुड़गुड़ी पीते रहे। फिर कहा—ज़रा और पास आओ तो राजेश्वरी।

राजेश्वरी बिल्कुल राजा साहब के मुंह के पास खिसक गई।

राजा साहब ने गुड़गुड़ी की सोने की मूनाल उसके होंठों में लगाकर कहा, एक कश खींचो तो राजेश्वरी।

'लेकिन, लेकिन हुज़ूर—'

'ऐन खुशी होगी, खींचो एक कश।'

राजा साहब की आंखों में प्यार का सारा ही रस उमड़ आया। राजेश्वरी ने आनन्द-विभोर होकर गुड़गुड़ी से कश खींचा।

'खुश हुई अब राजेश्वरी।'

'ओह हुज़ूर, कहीं खुशी से मेरी छाती न फट जाए। हुज़ूर ने गुड़गुड़ी-खास इनायत करके मेरी सात पीढ़ियों को तार दिया।'

राजा साहब ने खिदमतगार से कहा—रामधन, चिलम ठण्डी कर दे और गुड़गुड़ी उस अखबार में लपेटकर इक्के में रख आ।

राजेश्वरी का मुंह सूख गया। उसने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं?

'मेरा दिल बाग-बाग है, तुम दुलखो मत।'

'मगर हुज़ूर'…'

'मैं हुक्म देता हूं—मत बोलो।'

राजेश्वरी का सिर नीचे को झुक गया। उसने खड़े होकर झुककर राजा साहब को सलाम किया और रोती हुई चली गई। राजा साहब चित्त अपने पलंग पर पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल-निर्वाक् पड़े रहे।

'यह क्या तमाशा है रामधन, महाराज मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू पी रहे हैं। गुड़गुड़ी-खास क्या हुई?' नवाब ने कमरे में आते ही हैरान होकर पूछा। रामधन चुपचाप खड़ा रहा। उसे बाहर जाने का इशारा करते हुए राजा साहब

ने मुस्कराकर कहा—यहां आओ नवाब, मैं बताता हूं।

नवाब ननकू एकदम पलंग के पास जा खड़े हुए, राजा साहब ने हंसकर कहा—बैठो।

'मगर मैं पूछता हूं गुड़गुड़ी-खास क्या हुई ?'

'बैठो तो कहूं।'

नवाब ने बैठकर कहा—कहिए।

राजा साहब ने रजाई से हाथ बाहर निकालकर नवाब का हाथ पकड़ लिया। कहा—नाराज न हो नवाब, राजेश्वरी को दे दी।

'क्या उन्होंने मांगी थी ?'

'नहीं, मगर उसे खाली हाथ कैसे जाने देता। तुम देखते ही हो, खानदान की वही एक चीज मेरे पास बची थी।'

नवाब कुछ देर होंठ चबाते रहे, फिर बोले—मगर आप मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू नहीं पी पाएंगे। मैं गुड़गुड़ी लाता हूं।

'कहां से ?'

'घर से।'

'कहां पाई।'

'अम्मी जान की है, बड़े महाराज ने बख्श दी थी। मेरे पास यह अब तक पाक धरोहर थी। अब आज काम आएगी।'

राजा साहब ने कहा—बड़े महाराज ने जो चीज बख्श दी, वह मैं वापस कैसे ले सकता हूं !

'तो अब हुजूर नवाब को जीने न देंगे ?'

राजा साहब हंस दिए। मीठे स्वर से बोले—खैर, इस अम्र पर पीछे गौर कर लिया जाएगा। पर मिट्टी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू बहुत मीठा लगता है नवाब। हां, यह कहो—रात सामान कैसे जुटाया था। मैं जानता हूं तुम्हारे पास छदाम न था।

'जुट गया यों ही। नवाब हूं, कोई अदना आदमी नहीं।'

'मगर सच-सच कहो।'

'झूठ से फायदा ? चालीस रुपए बाबू साहब से लिए थे।

'बड़ी तकलीफ दी उन्हें। अब ये रुपए दिए कैसे जाएं।'

'जल्दी नहीं है सरकार, रहन पर लाया हूं—यों ही नहीं, जब हाथ खुला होगा, दे देंगे।'

'रहन क्या रखा?'

'एक अदद था।'

'क्या अदद, बताओ।'

'आप तो धांधली करते हैं, आपको मतलब?'

'तुम्हें मेरी कसम नवाब।'

'ओफ!'

'कहो-कहो।'

'अम्मी का लंहगा था।'

राजा साहब निश्चल पड़ गए। उनकी आंखों की दोनों कोर से आंसू बह रहे थे, और उनका कांपता हुआ हाथ नवाब के हाथ में था।

# सुख-दान

पति-पत्नी का परस्पर जो आध्यात्मिक सम्बन्ध है—जो शरीर से भिन्न है—इस कहानी में उसीको भावपूर्ण ढंग से प्रकट किया गया है। कहानी पति-पत्नी के अभिन्न अस्तित्व पर तथा परस्पर के सामाजिक जीवन पर केन्द्रित है।

शादी होने के तीन-चार दिन बाद जब सब फालतू मेहमान विदा हो गए, और घर में नवागत वधू, एक नौकर और दूर के रिश्ते की एक विधवा बहिन रह गई तो बहिन ने जोड़-तोड़ लगाकर सुहागरात की जो व्यवस्था सम्भव थी, वह कर डाली।

उस व्यवस्था की सूचना जब संकेत से विद्यानाथ को मिली तो बड़ी देर तक वह चुपचाप नीची गरदन किए अपनी बैठक में बैठे रहे। कई बार नौकर ने उठकर सोने जाने को कहा। एक बार फिर बहिन ने भी आकर कहा; पर विद्यानाथ न तो उठे, न कुछ कह ही सके, चुपचाप नीचा सिर किए बैठे रहे। कुछ देर चुपचाप खड़ी रहकर बहिन चली गई। उसके बहुत देर बाद जब उन्होंने फिर नौकर को अपनी ओर आते देखा तो वह एकाएक उठकर अपने चिर-परिचित शयनागार में चले गए।

शयनागार सजाया गया है, यह कहा जा सकता था। शय्या पर स्वच्छ, सफेद चादर और उसपर नया तकिया, तकिए पर ताज़े बेला के फूलों की दो मालाएं, सिरहाने धूपबत्ती से उड़ता हुआ धूमिल धूम्र, और खिड़कियों पर नए परदे, टेबिल पर जलपान का थोड़ा सामान, और सबके ऊपर कमरे के बीचोंबीच एक अच्छी आरामकुरसी पर बैठी हुई सुषमा, जो एक महीन पाड़ की उज्ज्वल साड़ी पहने कोई पत्रिका उद्विग्न चित्त से पढ़ रही थी! विद्यानाथ चुपचाप सुषमा के सामने जा खड़े हुए। हज़ारों बार देखी हुई सुषमा को इस बार वह सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी आंख उठाकर देखने में समर्थ नहीं हो सके। सुषमा ने पत्रिका से आंख उठाकर देखा, और मृदु हास के साथ कहा—वहां खड़े क्यों

रह गए आप ? यहां आइए ! दो घण्टे से मैं आपकी इन्तजार में बैठी हूं। आज-कल क्या आप बहुत देर में सोते हैं ? पहिले तो आप जल्दी ही सो जाया करते थे। मैं...

सहसा सुषमा रुक गई। उसने देखा, विद्यानाथ की आंखों से झर-झर आंसू गिर रहे थे और उनकी पलकें नीचे झुकी हुई थीं। वह आंखें उठाकर उसकी ओर देख नहीं सकते थे। सुषमा ने कुर्सी से उठकर उनका हाथ पकड़कर कहा—बैठिए न यहां ! अब आपको क्या दुःख है, और मैं उसमें आपका कहां तक हाथ बंटा सकती हूं, मुझसे कहिए तो !...आप तो बोलते ही नहीं। क्या...

सुषमा फिर रुक गई। उसने देखा, उनकी आंखों से अश्रुधारा ज्यों की त्यों बह रही है ! मन के प्रबल उद्वेग को रोकने में वे असमर्थ हैं। उनका सम्पूर्ण शरीर बेंत की तरह कांप रहा है। सुषमा ने भयभीत होकर कहा—आपको हुआ क्या है ? क्या किसीको बुलाऊं ? और वह उठकर बाहर जाने लगी।

पर विद्यानाथ ने उसका हाथ पकड़कर खींच लिया, जाने नहीं दिया। अपनी सम्पूर्ण शक्ति खर्च करके उन्होंने कहा—बैठ जाओ, सुषमा ! मैं अभी ठीक हो जाऊंगा !

सुषमा ने उन्हें धीरे से पलंग पर बैठा दिया, और आप उनके पास खड़ी रही। उसका हाथ विद्यानाथ के हाथ में था। उन्होंने बिलकुल टूटी-फूटी वाणी में कहा—तुम भी यहीं बैठ जाओ, सुषमा !

सुषमा चुपचाप उनके पास पलंग पर बैठ गई।

उसने विद्यानाथ के हाथ को दूसरे हाथ से छूकर कहा—आप लेट जाइए ! आपकी तबीयत ठीक नहीं है। बदन बर्फ-सा ठण्डा हो रहा है, और आप कांप भी रहे हैं ! क्यों न डाक्टर को बुलवा लिया जाए ?

'नहीं, नहीं ! तुम्हीं काफी हो, सुषमा ! मैं अभी ठीक हो जाऊंगा !'

सुषमा ने फिर और कुछ नहीं कहा। हाथ का सहारा देकर विद्यानाथ को पलंग पर लिटा दिया। कुछ देर विद्यानाथ पलंग पर चुपचाप पड़े रहे। फिर उन्होंने भर्राए गले से कहा—यह सब क्या हो गया, सुषमा ? कैसे हो गया ?

सुषमा हंस पड़ी। उसने स्निग्ध, कोमल स्वर में कहा—जो कुछ आपने चाहा और किया, वही तो हुआ !

'सच ? इसे भाग्य की अमिट रेखा और विधाता का अटल विधान नहीं

कहना चाहिए ?'

'आप क्या भाग्य और विधाता को अब मानने लगे ? मुझे तो आप ही ने सिखाया था कि भाग्य और विधाता, यह सब दुर्बल मानव-मस्तिष्क की कल्पना है।'

विद्यानाथ थोड़े लज्जित हुए। उन्होंने धीमे स्वर में कहा—तुम जो कहती हो, यदि वही सही है, और मेरा चाहा और मेरा ही किया हुआ, तो यह अनहोनी हो गई !

'इसमें आश्चर्य क्या है ? आपकी शक्ति अपरिसीम है, और आपका प्रभाव असाधारण है, आपका विरोध करने की क्षमता किसमें है ?'

'फिर भी, सुषमा, इस काम में मेरा सम्पूर्ण साहस और पौरुष खर्च हो गया। अब तुम अपना साहस और शक्ति थोड़ी मुझे दो तो शायद मैं कुछ प्रतिकार...'

'मैं आपकी पत्नी हूं, और अपना सर्वस्व आपपर न्योछावर करने आपके पास आई हूं। फिर आप प्रतिकार किस बात का किया चाहते हैं ?'

विद्यानाथ ने कराहकर कहा—सुषमा, मेरे ऊपर दया करो ! मुझे नग्न न करो ! मैंने तुम्हारे साथ अन्याय तो किया ही है !

'तो क्या हुआ ? सामर्थ्यवान् पुरुष अनिवार्य होने पर न्याय भी करते हैं, अन्याय भी करते हैं ! परिताप और पश्चात्ताप उन्हें शोभा नहीं देते, क्योंकि वे जो कुछ भला-बुरा करते हैं, खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर और करणीय समझकर ही करते हैं !'

'तो, सुषमा, तुम मेरे ही शस्त्र से मुझे घायल करोगी ? मेरे ही तर्क का मुझीपर वार करोगी ?'

'और तर्क आएगा कहां से ? आपने जो कुछ सिखाया है वही तो मेरी तमाम जमापूंजी है !'

विद्यानाथ थोड़ी देर चुपचाप पड़े रहे। सुषमा का हाथ अब भी उनके हाथ में था। उन्होंने फिर कहा—तुमने मेरे लिए बड़ा त्याग किया है, सुषमा !

'यही बात सब लोग कहते हैं। पर आप भी कहेंगे, इसकी आशा मुझे नहीं थी।'

'क्यों ? क्या यह सत्य नहीं है ?'

'नहीं !'

'कैसे ?'

'मैंने क्या आगे बढ़कर अपने मन से अपने को आपको समर्पण किया है ? क्या मैंने स्वेच्छा से, प्रसन्नतापूर्वक आपसे ब्याह किया है ?'

'परन्तु तुमने विरोध भी तो नहीं किया !'

'विरोध नहीं किया ?'

'कहां ? हर बार, जब-जब बाबूजी ने ब्याह का प्रस्ताव किया, मैंने यही कहा—सुषमा से पूछ लीजिए ! और हर बार उन्होंने कहा—'वह राज़ी है। अपने इस सौभाग्य को वह अस्वीकार नहीं कर सकती।'

सुषमा ने बंकिम कटाक्ष करके वही धवल हास्य बिखेरा। उस हास्य का करुण और द्रवित भाव देख विद्यानाथ क्षोभ और लाज से अधीर हो उठे। उनके मुंह से बात नहीं निकली। सुषमा का हाथ उनके हाथ से छूट गया। सुषमा ने फिर उसे स्नेह से पकड़ लिया और तनिक और उनके पास खिसककर कहा—बाबूजी की बुद्धि का नाप-तोल मैं जानती हूं। उन्होंने जब-जब विवाह के सम्बन्ध में मेरी राय पूछी, मैंने एक मौन हास्य में उसका उत्तर दिया। उसका अर्थ उन्होंने जो भी समझा हो।

'पर सुषमा तुम्हें खुल्लमखुल्ला 'न' कहना चाहिए था।'

'किसलिए ? बाबूजी का अपमान करने के लिए ? उनका दिल तोड़ने के लिए ? ऐसा मैं नहीं कर सकती थी। आपने मुझे ऐसी शिक्षा नहीं दी थी। यदि मैं मुंह खोलकर 'न' कहती तो आपकी शिक्षा को लजाती।'

'तो तुम्हें मुझसे कहना था।'

'आपसे ?' सुषमा इस बार बच्चों की तरह खिलखिलाकर हंस पड़ी। उसने वैसी ही स्निग्ध, कोमल वाणी में कहा—आप तो मेरे मन की राई-रत्ती सब कुछ जानते हैं, उसी भांति जैसे मैं आपके मन की। आप मेरी 'न' जानते थे, फिर भी 'हां' की प्रतीक्षा में थे। मैं आपकी प्रतीक्षा को जानती थी, फिर 'न' कैसे कहती ?

'लेकिन...'

'अच्छा, तो आप इन्कार करते हैं ? आप मेरे साथ भी शतरंज की चाल...'

'नहीं नहीं, सुषमा, शतरंज की चाल नहीं ! जब तुम मेरे भीतर-बाहर की सब बात जानती हो तो मुझे कहना ही क्या है ! मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने

अपना स्वार्थ-साधन ही किया, और तुम्हारे अधिकार पर आघात भी किया। कहो, इसका प्रतिकार क्या होगा ?'

'इसपर विचार करने को सम्पूर्ण जीवन पड़ा है ! इसके लिए जल्दी क्या है ?'

विद्यानाथ उदास और शिथिल हो गए। और सुषमा का मुंह बादलों से घिरे हुए सांध्य आकाश के समान गम्भीर हो गया।

बहुत देर बाद विद्यानाथ ने कहा—सुषमा, हम लोग कैसे मिलकर एक हो सकते हैं ?

सुषमा हंसी। उसने कहा—उस वेद-मन्त्र की व्याख्या के अनुसार, जो विवाह के समय पंडितजी ने की थी, जैसे दो बर्तनों का जल एक में मिलकर एक हो जाता है, उसी भांति !

'सुषमा, हंसी मत करो ! मेरे दुःख को देखो !'

'देख रही हूं ! पर हम एक तो हैं ही। आज से नहीं तभी से जब मैं इतनी सी थी ! मेरी सारी जमा पूंजी तो आप ही की है। आपने मुझे अक्षराभ्यास कराया, और कालेज की डिग्री दिलाई। आपके विचार, आपकी प्रतिभा आपके आदर्श, सभी तो मेरी नस-नस में हैं। आप ही तो मुझे अपने मस्तिष्क की प्रतिलिपि कहा करते थे।'

'वह सब तो है। पर तुम्हारी यह 'न' ?'

'आप मेरे गुरु हैं, और अब पति भी। आप मेरे तन-मन के स्वामी हैं। उस अभागी 'न' के साथ आप जैसा ठीक समझें, सलूक करें। मैं 'न' नहीं कहूंगी !'

सुषमा की आंखों में उज्ज्वल मोती के समान दो अश्रु-बिन्दु छलक आए। पर उसके होंठों पर वैसी ही मृदु, मन्द मुस्कान थी।

विद्यानाथ ने मर्मपीड़ित होकर कहा—सुषमा, मैं देख रहा हूं कि वह 'न' तुम्हारे हृदय में उस स्थान पर आसीन है जहां मेरे हृदय में तुम हो। वह मेरी अजेय प्रतिद्वन्द्वी है, सुषमा ! मैं उसे ईर्ष्या की नजर से देख भर सकता हूं। उसे उस स्थान से च्युत करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है।—कुछ देर चुप रहकर उन्होंने फिर कहा—मैं जीवन भर एक उद्ग्रीव योद्धा की भांति रहा। मैंने जीवन भर युद्ध किए, और कभी साहस न खोया। उस दिन जब तुम्हारी जीजी को अकस्मात्

ही चिरविदा करने का प्रसंग उपस्थित हो गया तो अपने साहस और धैर्य पर स्वयं मैं ही आश्चर्यचकित हो गया। परन्तु अब तुम्हारे इस 'न' के सम्मुख, सुषमा, मैं एक हारा हुआ, तिरस्कृत और ऐसा भाग्यहीन पुरुष हूं, जिसका सब-कुछ लुट चुका, सब-कुछ नष्ट हो चुका हो।

विद्यानाथ चुप हो गए। सुषमा भी निर्वाक्, निस्पंद बैठी रही। थोड़ी देर बाद विद्यानाथ ने सुषमा का हाथ अपनी ओर खींचकर कहा—सुषमा, आओ, तनिक मेरे निकट···और निकट! जो कुछ भी साहस अभी बचा है, उसका मैं उपयोग कर देखूं कि हम लोग कहां तक एक-दूसरे को सुख-दान कर सकते हैं!

विद्यानाथ के हाथ के उस हल्के खिंचाव से सुषमा निर्विरोध खिंची उनके हृदय के निकट तक चली गई। विद्यानाथ ने ऐसा अनुभव किया, जैसे अति दूर आकाश में उड़ती हुई पतंग अकस्मात् कट गई हो, और वह उसकी ढीली डोर को खींचकर अपने पास ढेर कर रहे हों।

सुहाग-रात के बाद का वह दूसरा दिन नव-दम्पति के लिए पहाड़ हो गया। दोनों एक बहुत भारी बोझ-सा हृदय में लिए फिरते रहे। विद्यानाथ उस दिन कालेज नहीं गए। तमाम दिन लाइब्रेरी में बैठे रहे। सुषमा दिन भर हारमोनियम पर उंगलियां चलाती रही। बीच-बीच में साहस करके विद्यानाथ सुषमा के कमरे में जा जितना सम्भव होता उतने उत्साह से कहते—वाह, कितना अच्छा बजा रही हो! बहुत मंज गया है अब तुम्हारा हाथ! गाओ, गाओ! यह राग तुम्हारे कण्ठ से बहुत मधुर लग रहा है। तब सुषमा मुस्कराकर एक बार सिर्फ एक दिन पूर्व के उस नवीन पति को जिससे कुछ और ही रूप में वह परिचित थी, कुछ-कुछ सहमी और कुछ-कुछ लजाई आंखों से मुस्कराकर देखती और जैसे किसी आने वाली विपत्ति से घबरा रही हो, झट स्वर मिलाकर गाने लगती। विद्यानाथ 'वाह-वाह' करते। फिर एकाएक जैसे जान बचाकर भाग खड़े होते। लाइब्रेरी में आकर हांफते-हांफते कुर्सी पर पड़ जाते। वे सोचते: यह क्या ठीक हुआ? सुषमा को बुरा नहीं लगेगा? गीत खत्म होने के पहले ही मैं भाग क्यों आया? कैसा माधुर्य है उसके कण्ठ में! पर··· वे फिर तुरन्त जाना चाहकर भी जा न पाते।

उनके जाने पर सुषमा तुरन्त ही गाना बन्द कर चुपचाप कोच पर लेट

जाती, जैसे बहुत थक गई हो। बहुधा वह चौंककर, उठकर लाइब्रेरी में पहुंच जाती, और जितना सम्भव होता, आत्मीयता और घनिष्ठता से कहती—आज क्या आप कोई खास विषय स्टडी कर रहे हैं? इतना क्यों पढ़ते हैं आप? स्वास्थ्य खराब न हो जाएगा? कौन किताब है वह? अच्छा, ज़रा मुझे भी सुनाइए न! रूखा-सूखा विषय भी आपके मुंह से बहुत सरस लगता है। कालेज क्यों नहीं गए आप? विद्यानाथ भी समयोचित जवाब देते। उनकी बात अन्ततः जल्द ही समाप्त हो जाती। उन्हें न विषय ही मिलता, न शब्द ही। तब सुषमा जैसे एकाएक कोई बात याद कर भाग खड़ी होती। और उसकी कोमल, पतली मुलायम उंगलियां हारमोनियम पर फिर थिरकने लगतीं। बीच-बीच में एकाध टूटा-फूटा चरण होंठों से बाहर निकलकर हारमोनियम के स्वर में मिश्रित होकर उसे उत्साहित-सा कर जाता।

तीसरे पहर चाय पीने के बाद विद्यानाथ ने सिनेमा चलने का प्रस्ताव किया। अच्छी फिल्म आई है, यह भी कहा। पर सुषमा ने मुस्कराकर अपनी अलस मुद्रा से कहा—आज तो जी नहीं चाहता। फिर कभी चलूंगी। आप देख आइए।

विद्यानाथ ने उस बात को टालकर कहा—अच्छा चलो, मैं एक नई 'ट्यून' तुम्हें बताऊं। कहकर वह उसे उसके कमरे में खींच लाए, और हारमोनियम पर वह ट्यून बजाने लगे। पर तुरन्त ही उन्हें पता लग गया कि सुषमा देखने को तो ध्यान से देख रही है, पर मन न जाने किस आकाश में विचरण कर रहा है। उन्होंने अकस्मात् ही हारमोनियम बन्द कर दिया। हंसकर बोले—अभ्यास ही छूट गया। बड़ी अच्छी ट्यून थी। अच्छा, इसका एक रिकार्ड लगाऊंगा।

सुषमा ने जैसे स्वप्न से जागरित होकर कहा—छोड़िए इन सब झगड़ों को। आप मुझे इसी साल एम० ए० फाइनल में बैठा दीजिए। अभी बहुत समय है।

'समय अब कहां है? तीन महीने तो यों ही बर्बाद हो गए।'

'समय बहुत मिलेगा।'

'कैसे?'

'पहले आप अधिक से अधिक दो घंटे पढ़ा पाते थे। उसमें भी बहुत बन्धन-बाधाएं थीं। पर अब तो रात-दिन एक कर पढ़ूंगी!'

'तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो पढ़ो फिर!' विद्यानाथ ने खिन्न होकर कहा।

सुषमा ने उधर ध्यान नहीं दिया। उसने आग्रह के स्वर में कहा—कल ही से मैं स्टडी शुरू कर देना चाहती हूं। आपको पूरा समय देना होगा।

विद्यानाथ ने फीकी हंसी हंसकर कहा—मेरा समय तो सब तुम्हारा है ही, सुषमा। उसमें देना-लेना क्या ?

वह उठे और लाइब्रेरी में आकर बैठ गए।

सुषमा उठकर बक्स में कपड़े तहाकर रखने लगी। फिर उसे आलमारी ठीक करने की सूझी। वह संध्याकाल तक इसी काम में लगी रही।

अंधेरा होने पर घीसू ने आकर कमरे की बड़ी बत्ती जलाकर कहा—बीबीजी, खाना तैयार है।

सुषमा ने चौंककर कहा—अच्छा !···और बाबू कहां हैं ?

'लाइब्रेरी में हैं, सरकार।'

सुषमा ने लाइब्रेरी में जाकर देखा, अंधेरे में विद्यानाथ चुपचाप बैठे सर-सर चलते पंखे को घूर-घूरकर देख रहे थे। सुषमा ने बत्ती जला दी। प्रकाश होते ही विद्यानाथ ने सुषमा को देखकर कहा—आओ, आओ ! एक ही दिन में पूरी गृहस्थिन बन गईं तुम !

'सब गड़बड़ हो रहा था। बक्स, आलमारी, सब ठीक किया है। आप क्या घूमने नहीं गए ? यहां अंधेरे में बैठे क्या कर रहे हैं ?'

'दो बार तुम्हें देखने गया। तुम काम में जुटी थीं। लाचार यहां आ बैठा।'

'तो चलिए, खाना खा लीजिए ! महाराज देर से इन्तजार कर रहा है।'

विद्यानाथ ने उठकर कहा—चलो !

रामानन्द बाबू ने पसीने से लथ-पथ अपना भारी भरकम शरीर लिए हांफते-हांफते पुकारा—बिटिया, बिटिया ! अरे ओ, घीसू ! सब लोग गए कहां ? इस हिन्दुस्तान की ऐसी-तैसी !

सुषमा बैठी रेशमी कपड़े पर फूल काढ़ रही थी। पिता का कण्ठ-स्वर सुन वह आंधी की तरह भागी, और गिरती हुई सी सीढ़ियां उतरकर पिता की छाती से जा लगी।

रामानन्द बाबू ने क्रुद्ध होकर कहा—यह कौन कायदा रहा आने का ! कहीं गिर जाती तो एक दांत भी साबित न बचता। मुंह के बल गिरती तो

नाक पिचक जाती।

सुषमा ने हंसकर कहा—नाक पिचक जाती तो क्या करते, बाबूजी ?

'क्या करता ? पेरिस से मंगाता नकली नाक, पेरिस से।'

'लेकिन वार टाइम में मिलती कैसे ?' फिर हंसकर कहा—जाने दीजिए, नाक पिचकी नहीं ! हां, हिन्दुस्तान की क्या वात कह रहे थे ?

'कह रहा था'''लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान के लिए जान दो, चन्दा दो, जेल जाओ ! बड़ा प्यारा है हमारा देश, स्वदेश है ! पर देखती हो, कैसा है ? यह पसीने से बुरा हाल है। कितनी गर्मी है इस देश में। सेकेन्ड क्लास का गद्दा जैसे आग से भरा हो। पंखा जैसे आग बरसाता हो। धूल-गर्द से परेशान हो गया। लानत है ऐसे मुल्क पर ! एक मिनट भी यहां न रहूं, पर तेरी मां'''' रामानन्द बाबू ही-ही करके हंस पड़े।

सुषमा ने हंसकर कहा—अच्छा, चलिए ऊपर ! कपड़े उतारकर ठण्डे होइए। मैं तब तक शर्बत बनाए लाती हूं।

'मगर बर्फ बहुत सी डालना। तोवा ! लेकिन'''लेकिन'''।'

सुषमा ने रुककर कहा—लेकिन क्या बावूजी ?

'यह तेरा मुंह।' धूप से सूखे हुए फूल की तरह मुरझाए हुए पुत्री के मुख को देखकर आनन्दी जीव रामानन्द बाबू का सारा हास्य-विनोद क्षण भर में ही बरसाती धूप की भांति विलीन हो गया।

सुषमा ने हंसकर कहा—क्या हुआ मेरे मुंह को बाबूजी ? क्या सींग निकल आए ? हाथी के जैसे दो दांत तो नहीं उग आए ?

'कुछ नहीं, कुछ नहीं !' कहते-कहते रामानन्द बाबू ऊपर चले गए। वहां घीसू सामान ठीक कर रहा था। रामानन्द को देखकर उसने पैर छूकर प्रणाम किया। रामानन्द ने व्याकुल भाव से कहा—क्या बिटिया बहुत बीमार हो गई थी, घीसू ?

'नहीं तो, बड़े बाबू, बीमार तो नहीं हुई।'

'नहीं तो ! अच्छा, अच्छा, देखा जाएगा !' वे बड़बड़ाते हुए इधर से उधर टहलने लगे।

इसी समय सुषमा ने शर्बत का गिलास लाकर पिता के हाथ में देकर कहा—थर्मस में जितनी बर्फ थी सब ले आई हूं। और बर्फ अभी दो मिनट में

आई जाती है। तब तक आप इसे पीजिए, बाबूजी ! पर आप पहले कपड़े तो बदलिए।

रामानन्द बाबू कुछ बोले नहीं। चुपचाप शर्बत पीकर कपड़े बदलने लगे। फिर धम से कुर्सी पर बैठकर बोले—कहां हैं प्रोफेसर साहब ?

'कालेज गए हैं। छुट्टी थी, पर उनका कोई खास काम हो रहा है। उसी काम में लगे हैं।'

'और तुम दिन भर अकेली यहां क्या करती रहती हो ? सूखकर कांटा हो गई हो ! यह सब क्या है ? ठहरो, मैं वहीं कालेज जाकर उनसे अभी जवाब तलब करता हूं ! आखिर इसका मतलब क्या है ?' उन्होंने छड़ी उठाई।

सुषमा ने हंसकर धीरे से छड़ी उनके हाथ से लेकर कहा—इस धूप में भला आप कहीं जा सकते हैं, बाबूजी ! मैं अभी घीसू को भेजकर बुलवाती हूं। साइकिल से दस मिनट में लौट आएगा।

घीसू बर्फ लेकर आ गया। उसे कालेज भेजकर सुषमा शर्बत तैयार करने लगी।

रामानन्द ने चिल्लाकर कहा—रहने दे, रहने दे, सुषमा ! निमोनिया हो जाएगा ! मुझे प्यास-वास नहीं है। तू यहां आ तो तनिक !

पर सुषमा सुवासित शर्बत का शीतल गिलास लिए हंसते-हंसते आई, और कहा—निमोनिया क्यों हो जाएगा, बाबूजी ?

'होगा नहीं, इतना ठण्डा शर्बत इतनी गर्मी में पीने से ?'

'कभी नहीं होगा ! पीजिए !'

'तो भुगतना तुम !' रामानन्द गटागट शर्बत पी गए। फिर गिलास एक ओर रख, गहरी सांस लेकर बोले—अच्छा, अब कह !

'क्या ?'

'यह मामला क्या है ?'

'कौन मामला, बाबूजी ?'

'तेरी यह हालत कैसी है ?'

'हालत कैसी है !'

'रंग स्याह…'

'और ?'

'चेहरा ऐसा जैसे पन्द्रह दिन से खाया न हो !'

'बहुत ठीक ! और ?'

'बातें न बना ! सब बातें कह !'

सुषमा हंसते-हंसते पिता की गोद में बच्चे की भांति लेट गई। उसने फिर स्नेह से पिता के गले में हाथ डालकर कहा—अम्मा ने मेरे लिए क्या-क्या भेजा है ? पहले वह दो, बाबूजी !

रामानन्द स्नेह से गद्गद हो गए। कहने लगे—तुझे सब चीजें दूंगा। विद्यानाथ को कुछ भी नहीं दूंगा ! कहे देता हूं।

'मत देना ! मुझे तो दो !' सुषमा ने हंसकर कहा—अच्छी बात है। देखूं, क्या लाए हैं !

रामानन्द ने चाभी देकर कहा—खोल फिर वह ट्रंक !

सुषमा ने देखा, ऊपर ही एक केस रखा था। उसमें बहुत सुन्दर हीरे के एक जोड़ी इयररिंग थे। उसने बच्चे की भांति उछलकर कहा—वाह, कैसे सुन्दर हैं ये ! फिर आईने के सामने जा उन्हें कान में पहना और पिता के पास जाकर कहा—अच्छा, सच कहो, तुम लाए हो या अम्मां ने भेजे हैं ?

'अम्मां ने भेजा है तेरा सिर ! मैं लाया हूं, मैं ! कोई पचास जोड़ी बाजार में देखीं। नाक में दम कर दिया जौहरी के। तब यह पसन्द किया। कह, कैसा है ?'

'बहुत सुन्दर ! पर, बाबूजी, यह अम्मां ने भेजा है। तुम झूठ-मूठ अपनी तारीफ कर रहे हो !'

'मैं तो जानता ही हूं कि तू अम्मां की बेटी है ! खैर, वह साड़ी भी तो देख ! पसन्द आती है या नहीं ? पूरी लोमड़ी है तू।'

जरी के काम की साड़ी देखकर सुषमा ने कहा—मानती हूं, बाबूजी ! यह आप ही की पसन्द है ! यह रंग अम्मां नहीं चुन सकती थीं।

'वह देहातिन क्या जाने ! उसकी भेजी चीजें भी देख ले ! उस हांडी में हैं।'

'मिठाइयां हैं न ?' सुषमा ने भोली बालिका की भांति हांडी में हाथ डालकर मिठाई निकालकर चखना शुरू कर दिया।

इसी समय विद्यानाथ ने आकर ससुर को नमस्कार किया। रामानन्द

एकाग्र चित्त से पुत्री के आनन्द से आनन्दविभोर हो रहे थे। उद्विग्न हो, खड़े होकर कहने लगें—अच्छा, आ गए आप! पर यह सुषमा···जाने दीजिए, जाने दीजिए! हां, ठीक है। अच्छी है न? काम बहुत है, क्यों? मैं कह रहा था, बेचारी सुषमा यहां अकेली···अच्छा, जाने दीजिए उस बात को! हां, सुषमा को अब मैं ले जाऊंगा। ठीक है न?

विद्यानाथ ने सिर झुकाकर कहा—जैसी आपकी इच्छा हो! पर अभी दो-चार दिन रहिएगा न?

'नहीं, भाई, कल ही सुबह···'

'ऐसा क्यों, बाबूजी? हम लोगों ने तो आपके साथ शिमला जाने का प्रोग्राम बना रखा था! क्यों सुषमा?'—विद्यानाथ ने हकलाते हुए कहा।

सुषमा ने अकचकाकर कहा—हां हां, शिमला जाने का, बाबूजी! रुक जाइए।

'नहीं, नहीं, मैं रुक नहीं सकता। तेरी मां ने कहा है। पर अभी यह बात रहने दे तू। इनके लिए शर्बत नहीं बनाया? सारी बर्फ क्या मुझे ही दे दी?'

'जी, नहीं, अभी बहुत है। एक गिलास आपके लिए भी लाऊं?'

'एं! मेरे लिए? कुछ हर्ज नहीं। ले आ! मगर शर्त यह है कि बर्फ जरा ज्यादा हो।'

सुषमा शर्बत लाने चली गई। विद्यानाथ एक कुर्सी पर बैठ गए। रामानन्द बाबू देर तक बातचीत का कोई विषय ढूंढते रहे और विद्यानाथ एक अपराधी की भांति चुपचाप उनके सामने बैठे रहे।

आखिर रामानन्द बाबू ने नींद से चौंके हुए के समान कहा—कुछ चिन्ता नहीं। सब ठीक हो जाएगा। मगर जरा अपनी और सुषमा की तन्दुरुस्ती का ख्याल रखिए। वह बालक है। पर आप तो समझदार हैं। ऐसा तो होता ही है। क्या वह आपसे झगड़ा करती है? रोती है?

'जी, नहीं! ऐसी कोई बात नहीं है।'

'यही होना भी चाहिए। झगड़ा करने से क्या फायदा? प्रेमपूर्वक मिल-कर···मेरा मतलब यह है कि बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय।' रामानन्द बाबू के माथे पर पसीना आ गया। इसी समय सुषमा ने आकर गिलास पिता के हाथ में दिया।

उन्होंने कहा—अरे, पहले प्रोफेसर साहब को दो, बेटी ! कैसी पागल हो तुम !

तब तक विद्यानाथ ने स्वयं उठकर गिलास ले लिया।

अकस्मात् रामानन्द ने कहा—पगली बेटी, तूने तो शर्बत पिया ही नहीं ! ले, इसे पी !'

'नहीं, बाबूजी ! और है। मैं अभी लाती हूं।'

'तो ला।'

सुषमा एक गिलास और ले आई, और पिता के पास बैठकर पीने लगी। पर पिता के पास पति के साथ बैठने में उसका दम घुटने लगा। उसने कहा—बाबूजी, बेसनी पकौड़ी और बैंगनी बनाऊं आपके लिए ?

'बहुत अच्छे पकौड़े बनाती है, सुषमा ! आपने खाए हैं, प्रोफेसर साहब ? अच्छा, बना फिर झटपट।'

सुषमा चली गई। ससुर और दामाद विचित्र झिझक के बीच बातें करने लगे।

'बाबूजी के साथ क्यों नहीं गईं, सुषमा ?'

'आप ही कहिए, क्यों नहीं गई !' सुषमा ने हंसकर कहा।

'मुझे दण्ड देने को तुम बहुत उतावली हो रही हो, सुषमा !'

'यह आप क्या कहते हैं ?'

'मैं जो कह रहा हूं, वह तुम जानती हो ! तुम्हारा जाना उचित था, अम्मां का हुक्म था। कितनी दुःखी होंगी वह !'

'वह दुःखी क्यों होंगी ? फिर कभी चली जाऊंगी।'

'पर इस वक्त चली जातीं तो तुम्हारा मन बहलता।'

'यहां नहीं बहल रहा है क्या ? ओफ ! यह आपने खूब युक्ति दी ! मैं तो हमेशा यहां ही रही थी। कभी अम्मां के पास जाती थी, तो जी ही नहीं लगता था। जीजी...'

'उस बात को जाने दो, सुषमा ! यहां तुम न सोती हो, न खाती हो। तुम्हारे हास्य में विषाद, विलास में शैत्य और श्वास में जीवन का अभाव है। तुम मुझे नहीं बहका सकतीं, सुषमा ! मैंने तुम्हें मोहक पक्षी की भांति हवा में

उलझते देखा है, तुम्हारे आह्लाद पर ईर्ष्या की है। अपनी हंसी में तुम मुझे भुलाना चाहती हो, पर अभी मैं इतना मूढ़ नहीं हुआ हूं।'

कुछ देर सुषमा चुप रही। फिर बोली—आप भीतर ही भीतर इतना दुःख पा रहे हैं! कहिए, क्या करूं मैं! मैं आपको दुःखी देख नहीं सकती! अम्मां सुनेंगी, तो क्या कहेंगी? जीजी तनिक उदास देखती थीं तो खाना-सोना भूल जाती थीं। आप हमारे जीवन की ज्योति हैं। आप सुखी रहें, शान्त रहें, तृप्त रहें, इसीमें मेरे जीवन की सफलता है!

'दूसरे शब्दों में यही तुम्हारे तप, साधना का ध्रुव ध्येय है!'

'मैं तप कौन सा करती हूं? कहिए तो?'

'मुझ जैसे पुरुष को, जो आयु में तुमसे बहुत बड़ा और विधुर है, तुमने हठपूर्वक अपना पति बनाया, जबकि तुम्हें अधिक उपयुक्त जीवन-साथी मिल सकता था! और इसपर भी हंसती हो, गाती हो, खेलती हो, पिता और माता को भूली हुई हो! अपने अयोग्य पति को उदास भी नहीं देख सकती हो! सुषमा, यह क्या तपस्या नहीं है?'

सुषमा हठात् पति के पैरों के पास कालीन पर बैठ गई। उनका एक घुटना अपनी गोद में लेकर उसपर सिर रख लिया। उसने कहा—आप जब इस अनावश्यक और असम्बद्ध विषय पर बातचीत किया ही चाहते हैं तो सुनिए! मैं कहती हूं कि आप जो कुछ कहते हैं, यदि वह सत्य भी है तो अतिरंजित और अति अद्भुत है!

'क्यों, सुषमा?'

'क्योंकि स्त्री की सामाजिक स्थिति पुरुष की अपेक्षा सर्वथा हीन है। वह समाज का अंग नहीं है, उपांग है। वह आर्थिक और सामाजिक सभी बातों में पुरुष के आश्रित है। वह विवाह होने पर पति की कमाई, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य, इन सभीको मालिक की भांति भोगती है। घर में पड़ी-पड़ी बेकार समय काटती है, गाती-बजाती है, कसीदा-फूल काढ़ती है, या मांगपट्टी करती है, सैर-सपाटे और सिनेमा के प्रोग्राम बनाया करती है, पति को भोंदू और अपने को बुद्धिमती बनाने के कोई मौके नहीं चूकती। दिन में छत्तीस बार रूठती है। व्यंग्य, उपालम्भ उसके शस्त्र हैं। वह पति के सर्वस्व को पाकर भी असन्तुष्ट ही रहती है। पति उसे अपेक्षाकृत अयोग्य ही प्रतीत होता है। तिसपर पति उसके सभी अत्याचार सहन करता

है, केवल थोड़े सुखदान की आशा से, जिसकी उसे इसलिए बड़ी आवश्यकता होती है कि वह बाहरी जगत् की सभी सामाजिक और आर्थिक जिम्मेदारियों के बोझ से निरन्तर थककर चूर रहता है। पर कितनी स्त्रियां पुरुष को वह सब दे सकती हैं ? वे स्त्रियां धन्य हैं, जिन्हें ऐसे पुरुष पति मिले हैं, जो अपना आत्म-समर्पण पत्नी को करने के आदी हैं ! पत्नी उनपर अबाध शासन चलाती है, और उनकी सम्पूर्ण सम्पदा स्वच्छन्द भोगती है, तथा उसके धन से निर्बाध जीवन-यापन करती है।'

'और वैसा ही एक पति तुम्हें मिला है, यही तुम कहना चाहती हो ?'

'कहना चाहती तो हूं, फिर ?'

विद्यानाथ फीकी हंसी हंसकर बोले—जगत् से कहो, मुझसे नहीं।

'आपसे क्यों नहीं ? आप विश्वास नहीं करते, मैं जानती हूं। पर विश्वास आपको करना होगा।'

विश्वास करने को तैयार हूं, सुषमा !'

'किस तरह आप विश्वास करेंगे ? कहिए न !'

'एक बार मुझे 'तुम' कहकर पुकारो, सुषमा ! मुझे सब-कुछ मिल जाएगा ! यह तुम्हारा 'आप' तुम्हारी 'न' का प्रतिनिधित्व कर रहा है। जब तक तुम ऐसा नहीं करतीं, हम-तुम दूर-दूर हैं। और अब, जबकि हम पति-पत्नी हैं, ऐसा होना कितना बुरा है !'

सुषमा ने धीरे से कहा—आप इतने बड़े हैं, इतने विद्वान् ! लोग आपका इतना आदर करते हैं कि बाबूजी भी आपको 'तुम' नहीं कह पाते। फिर मैं कैसे कह सकूंगी ? नहीं, नहीं कह सकूंगी !

'तो फिर, सुषमा !'

विद्यानाथ एक ठण्डी सांस खींचकर धीरे-धीरे चले गए। सुषमा आंखों में आंसू-भरे कुछ देर वहीं बैठी रही। फिर जहां पति के चरण थे, वहां हृदय रखकर उसने अपनी ही आत्मा से कहा—एक बार हृदय में वह भाव उत्पन्न हो जाए, हम छोटे-बड़े का सब भेद-भाव भूल जाएं हम एक हो जाएं तो कैसा सुख मिले ! उसकी आंखों से टप-टप आंसू की दो बूंदें टपक पड़ीं।

चन्द्रमा की उज्ज्वल किरण के समान एक नवजात शिशु को आंचल में छिपाए

सुषमा अस्पताल के स्पेशल वार्ड के एक कमरे में पड़ी थी। मिनट-मिनट पर पूछ रही थी—क्या अभी गाड़ी का समय नहीं हुआ ? घड़ी ठीक तो चल रही है ? गाड़ी स्टेशन पर भेज तो दी गई है न ?—और सुषमा की माता बार-बार उसे संतोषजनक उत्तर दे रही थीं। सुषमा का पीला किन्तु माधुर्यपूर्ण मुख आज ओस से भरे श्वेत गुलाब की भांति शोभायमान था। उसके होंठों में मन्द मुस्कान थी। हृदय में उमंग और उछाह था।

आंधी की भांति विद्यानाथ ने कमरे में प्रवेश कर पुकारा—सुषमा !

सुषमा ने होंठों में मुस्कान और आंखों में जल भरकर दोनों हाथ फैला दिए। धाय और माता बाहर चली गईं। विद्यानाथ ने झुककर पत्नी के होंठों पर मधुर चुम्बन दिया। फिर कहा—देखूं तो तुम्हारे कौशल को।

सुषमा ने आंचल हटाकर अपने हृदय के टुकड़े को दिखा दिया। वह निश्चिन्त अंगूठा चूस रहा था। उसकी आंखों में विद्यानाथ ने अपना प्रतिबिम्ब पाया।

सुषमा ने कहा—देखो !

विद्यानाथ एकटक उसे देखते रह गए। फिर उन्होंने जेब से हीरे का एक बहुमूल्य हार निकालकर सुषमा के गले में डालकर कहा—सुषमा बड़ा सुख है, है न ?

'है तो !'

'कहो तो यह सुख-दान किसने किया ?'

सुषमा के कमल की पंखुरियों के समान होंठों से निकला—तुमने !

'नहीं, तुमने !'

'नहीं, तुमने !'

×××

×××

# टार्च लाइट

यह कहानी चरित्र-दौर्बल्य और कुत्सा का एक अच्छा विश्लेषण है।

दुर्भाग्य एक अपरिसीम और अपर्याप्त वस्तु है। वह मनुष्य के जीवन का बहीखाता है। उस बहीखाते में मनुष्य के जीवन के पुण्य ही नहीं, चरित्र-दौर्बल्य और कुत्सा का एवं मानसिक कलुष का भी लेखा-जोखा आना-पाई तक हिसाब करके ठीक-ठीक लिखा जाता रहता है। लोग कहते तो यह हैं कि यह दुर्भाग्य मनुष्य पर लादा गया बोझा है परन्तु सच पूछा जाए तो यह मनुष्य की पाप-कमाई की पूंजी ही है। पाप के विषय में भी एक बात कहूं, लोग पाप की गठरी को बहुत भारी बताते हैं। मेरी राय इससे बिलकुल ही दूसरी है। वह न तो उतनी भारी ही है जिसे लादने को कुली या छकड़ागाड़ी की आवश्यकता है, न वह --जैसा कि लोग कहते हैं--ऐसी ही है कि जो केवल मरने के बाद परलोक में ही खोली जाएगी, मरने तक उसे मनुष्य लादे फिरेगा। वह तो शरीर में हाथ-पैरों के बोझ के समान है जिसे आदमी बड़े चाव से लादे फिरता है और कभी भी उकताता नहीं है। वह चाहे जब उसकी एक चुटकी का स्वाद ले लेता है और उसके तीखे और कड़वे स्वाद पर उसी तरह लट्टू है जैसे वह अन्य नशे-पानी की चीज़ों के कुस्वाद पर। नशे-पानी की चीज़ों से पाप में केवल इतना ही अन्तर है कि नशे-पानी की चीज़ें महंगे मोल बिकती हैं परन्तु पाप मनुष्य के जीवन के चारों ओर बिखरा पड़ा है और उसे जितना वह चाहे बटोरकर अपने कन्धों पर लाद लेने से रोकने के लिए कोई मनाही नहीं है। उसपर कोई चौकीदार-जमादार-सिपाही पहरा नहीं दे रहा है। वह हवा-पानी से भी अधिक सस्ता और सुलभ है। इसीसे मानव स्वच्छन्द भाव से युग-युग से उसके सेवन का अभ्यासी रहा है। परन्तु अभी यह चर्चा यहीं तक रहे, फिलहाल आप हमारी कहानी सुनिए।

एक दिन सन्ध्या समय अकस्मात् ही विनय की उससे भेंट हो गई। विनय

के लिए यह साधारण घटना थी। जीवन के पौर पर ही उसे विधुर होना पड़ा, पत्नी का पाप पति का दुर्भाग्य हो जाता है। उस दुर्भाग्य ने विनय को स्वाभाविक नहीं रहने दिया। इन्द्रियों की भूख की ज्वाला ने उसे इधर-उधर देखने ही न दिया। जो मिला उसने खाया, जो बचा फेंक दिया। यौवन था, वेतन था, विदेश था और निर्मम सैनिक जीवन था, जिसका व्यवसाय ही हिंसा है। वहां कोमल भावुक जीवन कहां ? वैसी-वैसी न जाने कब कितनी टकराईं, चूर-चूर हुईं और फेंक दी गईं—विस्मृत भी कर दी गईं।

परन्तु यह छुई भी न जा सकी ! भावना की भीति ही उसकी रक्षक बनी। असहाय बालिका दुर्भाग्य की चक्की में पिसी हुई अज्ञात वैधव्य का सूनापन माथे पर लिए, नवयौवन के ज्वर को स्कूल की पुस्तकें पढ़-पढ़कर दूर किया चाह रही थी। यही सबने कहा था : स्त्रियों का सौभाग्य-दुर्भाग्य पुरुषों के सौभाग्य-दुर्भाग्य के समान क्षण में बदलने वाला नहीं। वह अपना नारी-भाव उसी अपरिपक्वावस्था में जान गई थी और अपने दुर्भाग्य की अमिट अशुभ छाया से भी वह अभिज्ञ थी। वह चुपचाप रोगी पिता की दैनिक परिचर्या पूरी कर, मृत माता के लिए एक बूंद आंसू बहाकर स्कूल जाती, धरती पर दृष्टि दिए कोमल तलुओं के मृदुल चिह्न पक्की चमचमाती नागरिक सड़कों पर बनाती हुई अनधिकारिणी-सी। क्योंकि वे सड़कें वास्तव में उसके लिए नहीं, मोटरों पर, बग्घियों पर चलने वालों के लिए थीं। स्कूल से लौटती बार तारकोल की गर्मी से उसके तलुए झुलस जाते थे। घर पहुंचकर पिता की आंख बचा वह अपनी ही गोद में लेकर उनपर प्यार के हाथ फेरती। केवल यौवन के स्वप्न की सूचना की ही उमंग ने उसे यह अनुभूति दी थी कि सौभाग्य यदि होता तो कोई इन तलुओं पर इसी भांति सुखस्पर्श करता।

पति को उसने स्पर्श तो किया था पर तब वह युवती नहीं, बालिका थी। पति के साथ का मर्म उसने तब जाना नहीं। अब यौवन ने, शिक्षा ने, संसार ने और भावुक स्वप्नों ने पति की करोड़ों कोमल और प्रिय मूर्तियां उसके सामने नित्य बनानी और बिगाड़नी प्रारम्भ कर दीं। बहुत बार वह उन मूर्तियों के साथ खेलकर हंसी, रूठी, मचली। और उनके टूट जाने से फूट-फूटकर रोई। धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि मन के भोजन से ठोस शरीर की तृप्ति नहीं होती। शरीर के लिए ठोस पति चाहिए—सशरीर पति।

विनय से ज्यों ही उसका अकस्मात् साक्षात् हुआ, उसने पहली ही दृष्टि में उसकी भूखी आंखों की याचना को जान लिया। उसने चाहा, याचक को कुछ देकर सुखी करना चाहिए। उसने यह भी अनुभव किया कि कुछ देने से कुछ मिलेगा भी, सम्भवतः सुख। परन्तु उसकी संस्कृत आत्मा ने तभी उसे सावधान कर दिया कि नहीं, नहीं। ऐसा देन-लेन किसी भी स्त्री-पुरुष में हो नहीं सकता जब तक वे पति-पत्नी न हों। उसकी भीरुता, शील और संस्कार सब मिलकर उसकी प्रवृत्ति का विरोध कर उठे। उधर विनय की याचना सीमा लांघ गई। वह अपने सम्पूर्ण पौरुष को अनाहत करके निरीह भिखारी भांति दीन वचनों पर उतर आया। कहिए, वह सरल, तरल, कोमल बालिका अब क्या करे? देने ही के लिए जिस सम्पदा का भार वह लिए फिर रही है, उसे याचक सामने पाकर कैसे न दे? फिर याचक की प्रिय मूर्ति, जिसके दर्शन ही से संचारी भावों का उदय होता है, और उसकी आतुर आकुल प्रार्थना, वेदना-प्रदर्शन की ज्वाला का दाह, आंखों की गर्म पानी की बूंदें! कहिए आप? सामने घर को आग में जलता देखकर हाथ में पानी भरा घड़ा रहते कौन उसे आग में झोंक देने के लिए आनाकानी करेगा? कौन पात्रापात्र का विचार करेगा?

परन्तु लड़की ने सत्साहस किया, दान का बोझा लादे ही रही। विनय में ले डालने की जितनी आतुरता थी, दे डालने की उससे अधिक आतुरता हृदय में रखकर भी उसने कुछ दिया नहीं—दान का बोझा ढोती ही रही। और एक दिन विनय से उसकी जी भरकर बातें हो गईं।

'क्या डरती हो मुझसे?'

'जिसे प्यार किया जाता है क्या उससे कोई डरता है?'

'तो दूर-दूर क्यों?'

'दूर तो तुम्हीं हो?'

'तो तुम मेरे निकट आती क्यों नहीं?'

'कैसे?'

'क्या मुझपर विश्वास नहीं?'

'फिर वही, जब डर नहीं तो विश्वास क्यों नहीं?'

'विश्वास करती हो?'

'क्यों नहीं ?'

'तो मेरे निकट आओ, इतनी निकट कि हम-तुम दो न रहें।'

'किन्तु कैसे ?'

'बाधा क्या है ?'

'यही कि तुम मर्द हो, मैं औरत।'

'मर्द के लिए औरत और औरत के लिए मर्द है।'

'नहीं, नहीं।'

'तब ?'

'पति के लिए पत्नी, पत्नी के लिए पति।'

'अच्छा यह बात है ?'

'क्या यह इसके योग्य है ?'

'ओह, क्या बुरा मान गईं, परन्तु सुना है मर्द ही तो पति होता है।'

'नहीं।'

'तब ?'

'पति ही पति होता है।'

'कैसे ?'

'मर्द जगत् में बहुत हैं, पति केवल एक है। वह है तब भी है, नहीं है तब भी है !'

'और मर्द ?'

'वह है तब भी नहीं, और नहीं है तब भी नहीं।'

'किन्तु ?'

'किन्तु क्या ?'

'मर्द ही में पति की भावना की जाती है।'

'नहीं, पति में मर्द की भावना की जाती है।'

'तो स्त्री को पहले पति चाहिए पीछे मर्द ?'

'हां।'

'और यदि पति पीछे मर्द न निकले ?'

'तो लाचारी है। वह रहे ही नहीं तब भी लाचारी है।'

'आह, तुम्हारे मन में पति के लिए इतनी वेदना है ?'

'पति के लिए नहीं।'

'तब ?'

'तुम्हारे लिए !'

'मेरे लिए नहीं।'

'मैं तुम्हें प्रेम करती हूं।'

'क्या मुझसे भी अधिक ?'

'हां !'

'तब दूर-दूर क्यों ?'

'कह तो दिया।'

'समझ गया, मैं आज से मन-वचन-कर्म से धर्मपूर्वक तुम्हारा पति बनता हूं।'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'यह कोई मर्यादा नहीं है।'

'तब मर्यादा क्या है ?'

'यह सब जानते हैं।'

'तुम चाहती हो कि मैं नियमपूर्वक तुमसे विवाह कर लूं ?'

'यदि यही चाहूं तो ?'

'मुझे स्वीकार है।'

'तो मैं मन-वचन से तुम्हारी दासी।'

'नहीं, रानी।'

'रानी भी सही।'

'तो प्रिये अब ?'

'नहीं, नहीं।'

'अब क्यों नहीं ?'

'जब तक दुनिया मुझे पति-स्वरूप में तुम्हें न दे दे।'

'किन्तु वह झूठा दिखावा है, मैं आज देवता, नक्षत्र और दिवंगत गुरुजनों के समक्ष तुम्हें पत्नी-भाव से ग्रहण करता हूं, लाओ हाथ दो।'

'नहीं, ऐसा न करो।'

'यह मर्यादा से विपरीत नहीं है प्रिये, ऐसा सदा होता आया है।'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं।'

'नहीं प्रिये, देवता साक्षी हैं, वह स्तब्ध रात्रि, नदी का यह शीतल उपकूल, यह चांदी-सी रेती और आकाश में हंसते हुए तारे। आओ मेरे निकट···।'

'नहीं, नहीं।'

'आओ!'

'नहीं, नहीं, नहीं।'

'आओ!'

'नहीं, नहीं।'

'आओ!'

'नहीं।'

'आओ, आओ···।'

'न-न-हीं···।'

'आ-आ-आ-आ-ओ······'

और इस प्रकार उसका देन-लेन प्रारम्भ हो गया। वह अधिकाधिक बढ़ता ही गया। जहां विश्वास है, प्रेम है, परस्पर की एकता है, वहां देन-लेन बढ़ेगा क्यों नहीं। वह बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया। कलरव करते हुए परी, कलकल करती हुई लहरें, टिमटिमाते तारे और चांदी के समान अमल रेती उनके लेन-देन की साक्षी रही। मानव-जनपद के सामने इस लेन-देन का हिसाब रखने की उन्हें फुर्सत नहीं ही मिली। और एक दिन अचानक उसने देखा : उस लेन-देन में असमानता-सी आ गई है। उसे एक दिन अचानक ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने—जो यह समझती रही थी कि वह देती ही रही है—जो लिया है उसका भार कुछ बढ़ रहा है। थोड़े दिनों में संदेह मिट गया। उसने जो दिया था वह सब बट्टे खाते गया। और उसने जो लिया उसके भार से वह एक दिन अधमरी हो गई।

उसने डरते-डरते विनय से कहा—

'यह बोझ बढ़ता ही जा रहा है, यह तुम्हारा प्रेमोपहार है। इसे सबसे कह दो। कोई यह न समझे कि चोरी की है।'

विनय ने सिगरेट के धुएं का बादल बनाते हुए कहा—चिन्ता न करो, चुटकी बजाते इस बोझ को कहीं कूड़े के ढेर में फेंक दिया जाएगा।

पर बोझा उसे ढोना पड़ा। कूड़े के ढेर में नहीं फेंका गया। वह उसे ढोते-ढोते थक गई, पीली पड़ गई, कमजोर हो गई। किसीकी भी उसपर नज़र न पड़े इसके लिए उसने बड़े-बड़े झूठ, जाल, असत्य और न जाने क्या-क्या किए। वह अब विनय के जितने पास आना चाहती वह दूर हटता। जब बोझे की बात चलती। कहता—फिक्र न करो। वह झुंझला भी उठता, खीझ भी उठता, डांट भी देता। उसे रोना पड़ा—पहले छिपकर, सिसक-सिसककर, दहाड़ मारकर, पछाड़ खाकर, धरती पर सिर पटककर।

परन्तु कुछ हुआ नहीं।

एक दिन स्कूल से आकर उसने देखा घर में अंधकार है, सन्नाटा है, दिया जला नहीं है। पिता को उसने पुकारा—पर जवाब नहीं मिला। दिया जलाकर देखा और उसका सारा रक्त पानी हो गया।

उसने देखा, बूढ़े पिता ने अपनी महायात्रा उसकी गैरहाज़िरी ही में कर ली है। उसका मृत शरीर पड़ा है। उसने कठिनता से अपने को मूर्छित होने से रोका। वह आंखें फाड़-फाड़कर मृत पिता के विकृत मुख को देखने लगी। उनकी अधखुली निस्पन्द आंखें देख वह उस सूने अंधेरे घर में भय से चीख उठी।

परन्तु यह सब निरर्थक ही था। जीवन एक कठोर सत्य है। वह भीति, भावुकता और करुणा के वशीभूत नहीं होता। उसने आंसू पोंछे, एक गहरी सांस ली। उसने टार्चलाइट हाथ में ली और वह विनय के घर की ओर चली। सड़क, गली और रास्ते उसने पार किए। आते-जाते जनों के उसे धक्के खाने पड़े, पर वह अंधेरी-अशुभ गलियों में हाथ के टार्च की लाइट फेंकती हुई आगे बढ़ती गई।

गली के किनारे पर ही से देखा। सामने बिजली की रोशनी और गैस के हंडों से गली जगमगा रही है। बैंड बज रहा है। बहुत से स्त्री-पुरुष बढ़िया वस्त्र पहने एकत्र हैं। चांदी के वर्क लगे पान बांटे जा रहे हैं। गुलाब जल छिड़का जा रहा है। वह आगे बढ़ी। घोड़े पर दूल्हा था। उसने टार्च की लाइट दूल्हे पर फेंकी। वह विनय था। क्षणभर को उसका सिर घूम गया। परन्तु अकस्मात् ही उसकी वेदना और विस्मृतियां मुस्करा उठीं। एक मुस्कान की झलक उसके

होंठों पर आई। विनय ने देखा। धीरे से झुककर एक साथी मित्र से कहा—यह इस वक्त यहां क्यों ?

मित्र ने पूछकर बताया। यह कहती है, पिता मर गए, उनकी अकेली लाश घर पर पड़ी है। विनय ने क्षण भर सोचा और मित्र के कान में एक बात कही। मित्र उसे एक ओर अंधेरे में ले गया। एक कागज़ का टुकड़ा उसकी मुट्ठी में पकड़ा दिया और भर्त्सना के स्वर में कहा—इस मौके पर तुम्हारा यहां रहना आज ठीक नहीं था। इसे लो और अपना काम करो।

मित्र तेज़ी से फिर भीड़ में मिल गए। उसने टार्च लाइट से देखा, उसकी मुट्ठी में एक सौ रुपए का नोट था। कह नहीं सकते, उसने उसे अस्पृश्य समझकर फेंक दिया या वह उसके बोझ को न सम्हाल सकी, वह नोट वहीं उसकी मुट्ठी से गिर गया। उसने हाथ के टार्च को नीचे झुका दिया। रौशन नहीं किया। वह अंधेरी, सूनी, गंदी और ऊबड़-खाबड़ गलियों को पार करती, ठोकर खाती, गिरती, उठती अपने घर की ओर चली गई, जहां उसका एकमात्र आधार पिता चुपचाप महानिद्रा में सो रहा था।

# समस्या कहानियां

- बाहर और भीतर
- ककड़ी की कीमत
- कहानी खत्म हो गई

# बाहर और भीतर

विवाह के लिए स्त्री की सुन्दरता ही आज भी प्रधान मानी जाती है, और उसके दूसरे गुण-दोषों को पीछे डाल दिया जाता है। इस कहानी में अत्यन्त मोहक रीति से इसी प्रश्न का व्यावहारिक और मनोरंजक वर्णन है। यह कहानी भी आचार्य की समाज-समस्या पर अब से तीस वर्ष पूर्व की विचारशृंखला की द्योतक है।

उसे देखते ही नैन विद्रोही हो उठे। मैं दशहरे की छुट्टियों में कॉलेज से बड़ी उमंग से घर आया था। ब्याह के बाद वह पहली ही बार घर आई थी। इसकी खबर भाभी ने मुझे बड़े ही रस-भरे शब्दों में दे दी। ब्याह में मैंने उसकी एक झलक-भर देखी थी, उसी झलक की याद में मैंने ये तीन साल के एक हज़ार दिन उंगली पर गिन-गिनकर काटे थे।

पाठको, आपमें क्या कोई भी ऐसा है, जो मेरी तरह नई दुलहिन से पहली बार मिलने की प्रसन्नता में अपना आपा न भूल जाए? इस दुनिया में युवक के लिए दुलहिन से बढ़कर कौन चीज़ मीठी हो सकती है? मैंने दर्जनों हिन्दुस्तानी और विलायती काव्य, नाटक तथा उपन्यास पढ़े थे। कालिदास की शकुंतला की मूर्ति तो मेरे मानस-नेत्रों में बस रही है। जैसे ओस से भीगा हुआ गुलाब का फूल वसंत की हवा में झूम रहा हो, वैसे ही लज्जा, कोमलता और सुंदरता की मूर्ति-सी शकुंतला मेरे मन में झूमती रहती है। मैंने शेक्सपियर की रोज़ालिंड और जूलियट भी अपनी आंखों के हिंडोलों में झुलाई हैं। मैं क्या मनुष्य नहीं, युवक नहीं, मेरी रगों में गर्म खून नहीं? अजी, मैंने नई दुलहिन पाई थी तीन साल पहले। पर हिन्दू-जाति में जन्म लेने के कारण ब्याह से पहले उसे नहीं देख सका; पसन्द करने, प्यार करने, हृदय और आंखों का सौदा करने का सुभीता न पा सका तो भी क्या हुआ? भारतीय स्त्रियों जैसा रूप, सच्चा प्यार! भाभी ही को लो। दुनिया में कौन फूल ऐसा सुन्दर और कोमल हो सकता है! वह ईश्वर का दिया हुआ आशीर्वाद-सा है, संसार को सुखी बनाने के लिए वही काफी

है। भैया तो जैसे भाभी में घुल गए हैं। मैं जब उन्हें याद करता हूं, उन्हें प्रणाम करता हूं।

ऊषा कैसा प्यारा नाम है। जब से मैंने ऊषा से ब्याह किया है, हमेशा ऊषा-काल में जाग उठता हूं। मैं एकटक देखता रहता हूं। कितनी प्यारी सुनहरी किरणों को धरती पर बिखेरती है। पूर्व के आसमान पर पीली लगती है। वह ऊषा—पीला, शांत, उजला आलोक। वह कैसी प्यारी लगती है, किस तरह आनन्द देती है।

ऐसे ही मेरी ऊषा भी मेरे जीवन के अंधेरे को छूते ही उज्ज्वल आलोक करेगी।

उसके पिता रायबहादुर हैं, सेशन जज हैं, प्रतिष्ठित नागरिक हैं। वह फ़ार्वर्ड घराने की शिक्षिता कन्या है। ऐसे उच्च घराने की शिक्षिता कन्याएं क्या मैंने देखीं नहीं? मेरी ही क्लास में लगभग आधी दर्जन ऐसी कुमारियां पढ़ती हैं। जब वे क्लास में आकर बैठती हैं, क्लास जैसे जगमगा उठती है, देखकर प्राण हरे हो जाते हैं, संसार सुन्दर हो जाता है। उन शिक्षा-संगिनियों का वह क्षण-भर का संग मेरी नस-नस को जवान बना देता है। नीला की गहरी आसमानी साड़ी, चन्द्रमा-सा मुख और हथिनी के समान मस्तानी चाल–प्रोफेसर भी देखते ही रह जाते हैं। नलिनी जब आती है, आंधी की तरह; उसके मोती-से दांत और उभारदार सीना देखकर कलेजे में हिलोरें उठने लगती हैं। लीला की चश्मेदार आंखों से जो हंसी बिखरती है, उसपर क्लास भर के लड़के लोट-पोट हो जाते हैं। कहां तक कहूं? लेकिन मैं तो तीन साल तक यही सोचता रहा कि मेरी ऊषा इन सबसे बढ़-चढ़कर होगी। जब-जब मेरा मन इन स्वदेशी मिसों की ओर मचला, जो बीसवीं सदी में लापरवाही से सड़कों पर अपना रूप छितराती फिरती हैं, तो मैंने उसे समझा-बुझाकर काबू में ही रक्खा। तीन साल इसी तरह मैंने पूरे किए। भीतर ही भीतर मैं ऊषा को अपने बिलकुल नजदीक खींच लाया। मैंने उसे देखा नहीं, समझा भी नहीं, पर इससे क्या? वह मेरी दुलहिन है। मैं इस बात को नहीं मानता कि जिन स्त्री-पुरुषों में प्रेम हो वे ही ब्याह करें। मैं तो इस उसूल का कायल हूं कि जिनसे ब्याह हो जाए, वे स्त्री-पुरुष आपस में प्यार करें। इसलिए ऊषा को न पाकर भी मेरे प्यार का पौदा तो बढ़ता ही गया।

अब मैं एम० ए० पास कर चुका। मेरी पढ़ाई पूरी हो चुकी। ऊषा भी घर आ गई। भाभी ने मुझे दौड़ आने को लिखा था, सो मैं तूफान-मेल से दौड़ा हुआ घर आ पहुंचा। पहली मुलाकात थी, इससे मेरा कलेजा धड़क रहा था; लेकिन खुशी में मेरे रक्त की एक-एक बूंद नाच रही थी। दिन इन्तजारी और इधर-उधर की खट-पट में बीता, रात को ज्यों ही वह मेरे कमरे में आई, उसे देखते ही मेरी आंखें जल उठीं।

क्यों? सो कहता हूं, सुनिए। मैंने सोचा था, वह धीरे से ज्यों ही मेरे कमरे में आएगी, लेवेंडर और सेंटों की लपटों से कमरा महक उठेगा। उसकी रूप-ज्योति से मेरे कमरे में चांदनी हो जाएगी। जैसे मेरे क्लास में मेरी सुघड़, काली सहपाठिकाओं के आने से हो जाता था। वह उन्हींकी तरह छिप-छिपकर, नयन-बाण चला-चलाकर मेरे सोए हुए हृदय को जगाएगी, और उन्हींकी तरह मन्द मुस्कान से मेरे मन को सुख-सागर में डुबोएगी। वह आकर, धीरे-धीरे लाज से नीचा मुंह कर मेरे पास खड़ी हो जाएगी। इसके बाद क्या करना होगा, सो क्या मैं जानता नहीं? अनाड़ी नहीं हूं, मैंने सब सोच रक्खा है। मैं उसे खींचकर पास बिठा लूंगा, घूंघट दूर करूंगा, और उस चांद-से मुख को चूम लूंगा। बार-बार चूमूंगा। इतने ही से मेरा जीवन सफल हो जाएगा। जिस दिन की याद में मैंने दुनिया की सुन्दरियों को हेच समझा था, वह समय आज आ गया। अहा! मैं कितना भाग्यवान् हूं। उसके सदुपयोग के सब साधन मैं जुटाए बैठा हूं। भाभी ने बहुत सी मिठाई, फूल-मालाएं, इत्र, सेंट और न जाने क्या-क्या मेरे पास रख दिए थे। फिर मैं भी तो ऊषा के लिए बहुत से उपहार लाया था। वे सब मेरे पास थे। इन सबका किस तरह उपयोग करना होगा, यह सब मैंने सोच रखा था।

हां, तो मैं कह रहा था कि वह ज्यों ही मेरे निकट आएगी, मैं उसका घूंघट हटा, लज्जावन्त मुख उठाकर मधुर चुंबन लूंगा। ओह, पति का प्रथम चुंबन नववधू के लिए कैसा अमिट स्नेह-चिह्न होगा! वह फिर धीरे-धीरे मेरे पास आएगी, मैं उसे अंकगत करूंगा, मीठी बातों से संकोच दूर करूंगा, उसे प्रेम में डुबो दूंगा; वह मेरे चरणों को चूमेगी, मुझे पाकर धन्य होगी, चिरवियोग के लिए रोवेगी। अरे, वह साक्षात् कालिदास की शकुंतला की भांति प्रेम-विह्वला

होगी। उस दिन मैं शकुंतला को कई बार पढ़ गया।

पर जब वह आई तो मैंने अपनी आशा के बिलकुल उल्टा पाया। लेवेंडर और सेंट का नाम न था। वह एक साधारण, किन्तु उज्ज्वल साड़ी पहने थी। पैर में चप्पल थे। बाल बिखरे तो न थे, पर बहुत टीमटाम से संवारे भी न थे। उसका वेश बिलकुल सीधा-सादा था। हां, उसे उज्ज्वल और सोफियाना कह सकते हैं। उसने न नमस्ते किया, न हाथ जोड़े। वह सिकुड़कर पलंग के पास भी खड़ी नहीं हुई, आकर धीरे से कुर्सी खींचकर उसपर बैठ गई। इसके बाद तनिक मुस्कराकर उसने कहा—कहिए, आप प्रसन्न तो हैं?

भई वाह, यह कैसी नई-नवेली वधू? मैंने आंख फाड़कर उसकी ओर देखा। देखते ही आंखें जल उठीं। वह न तो वैसी सुन्दर ही थी, और न उसका रंग ही गोरा था। मैं क्षणभर ही में अपने क्लास की सब युवतियों से उसका मिलान कर गया। भला, कहां वे परियां और कहां यह? मेरा हृदय तिलमिला उठा। मैंने ताने के तौर पर कहा—क्या आप ऊषारानी की कोई दासी हैं? क्या सन्देश लाई हैं आप?

'यही कि ऊषारानी के स्थान पर आप मेरा स्वागत-सत्कार करें।'

'आप हैं कौन?'

'ऊषारानी मेरी दासी हैं।'

'आपकी?'

'जी हां, और उनका यह फैसला है कि मैं उनके पति महाशय को अपना दास समझूं। आप ही शायद उनके पति हैं?'

उस साधारण, प्रतिभा-हीन मुख से ऐसी करारी, चुटीली बात सुनकर मैं दंग रह गया। वह नई-नवेली की मुलाकात का पुराना डिज़ाइन हवा हो गया। मैं न गुस्सा कर सका, न मेरे मुंह से कोई बात ही निकली। मैं चुपचाप उस मुंह-ज़ोर बालिका के मुस्कराहट-भरे, फड़कते होंठों को देखने लगा। उसे देखकर मैं खड़ा नहीं हुआ, उसका स्वागत नहीं किया, उसके साधारण रूप की अवहेलना की, इसके कारण जो उसकी आंखों में एक चमक–जो उन चुभती हुई तीखी बातों के साथ निकली थी–देखकर मैं उसके रुआब में आ गया। मैं सोचने लगा: इसी तरह क्या स्त्रियों का आदर किया जाता है? यही क्या मेरी शिक्षा और सभ्यता है?

ऊषा ने फिर कहा—समझे आप ? क्या आपको श्रीमती ऊषारानी के आज्ञा-पालन में कुछ आपत्ति है ?

'कुछ भी नहीं।' अनायास ही मेरे मुंह से निकल गया।

'तब आप पलंग से खड़े हो जाइए। आपने एम० ए० तक शिक्षा पाई, उच्च संस्कृति के लोगों में रहे, पर आपको इतनी तमीज़ न आई कि स्त्रियों का मान कैसे किया जाता है।'

बाप रे, नई दुलहिन से डांट खाकर, मैं सचमुच लज्जित-सा होकर, उठकर खड़ा हो गया; पर फिर भी अपनी अकड़ तो कायम रक्खी।

मैंने कहा—अब क्या करना होगा ?

उसने एक कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—बैठिए, घबराते क्यों हैं ?

यह खूब रही, नववधू को देखकर मैं घबराता हूं। मैंने कुर्सी पर बैठकर कहा—घबराता क्यों हूं ?

वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। फिर उसने परीक्षा की, कालेज की, कालेज के जीवन की, भविष्य की, स्वास्थ्य की, न जाने क्या-क्या बातें करनी शुरू कर दीं।

मैं तो जैसे खो गया। उस रात्रि के धीमे प्रकाश में मैंने देखा, मैं किसी अत्यन्त स्नेही मित्र से–जो अत्यन्त बुद्धिमान्, कुशाग्रबुद्धि, वाक्पटु और मृदु-भाषी है–बातें कर रहा हूं। मेरा विद्रोह तो गायब हो चुका था। थोड़ी ही देर में मैंने डरते-डरते उसका हाथ पकड़कर कहा—ऊषारानी, मुझे क्षमा करो।

वह मुस्कराकर मेरी ओर देखने लगी। मैंने फिर कहा—क्षमा करो देवी !

उसने फिर कहा—किस अपराध की क्षमा ?

मैंने कहा—मेरी आंखें तुम्हें देखते ही जल उठी थीं। मैंने तुम्हारा बाहरी रूप देखना चाहा था। अब से कुछ मिनट पहले तक मैं नहीं जानता था कि स्त्री के भीतर एक और चीज़ रहती है। मैं तो कुछ और ही सोच रहा था।

उसने हंसकर कहा—एक गुड़िया-सी सुन्दर दुलहिन, जिसकी एक नाक, दो कान, एक मुंह, दो आंखें, सफेद चमड़ी, नन्हा-सा शरीर, यही न ?

'लगभग यही, पर थोड़ा और भी कुछ।'

'वह कालेज की संगिनियों का प्रदर्शन ?'

मैं चौंका, मेरे मन की बात यह कैसे जान गई ? वह मुस्कराने लगी।

मैंने कहा—ऊषा, मुझे क्षमा करो। अपने इस दास को क्षमा करो।

उसने कहा—दास को क्षमा कर सकती हूं, पर पति को नहीं। वह धीरे से अपनी कुर्सी से उठी, और एक मुग्धा बालिका की तरह मेरी गोद में आ बैठी। उसके शिथिल बाहु मेरे गले में आ गए, मैं उस जीवन-संगिनी सखी को—जिसने मेरे विद्रोह को विद्रोह से विजय किया था—इस प्रकार विजित देख फूला अंग नहीं समाया। मैंने उसे हाथों-हाथ उठाकर हृदय से लगा लिया।

कुछ देर तक हम दोनों दुनिया को भूले बैठे रहे। उसने मेरे गले में बांहें डालकर हंसते-हंसते कहा—मैंने तुम्हारे पिछले तीन वर्षों की सौ बातें पूछ डालीं, पर तुमने मेरी एक भी नहीं पूछी। तो क्या मैं यह समझूं कि तुम मेरी तरफ से वेफिक्र हो ?

मैं लज्जित हुआ। मैंने कहा—प्यारी, तुमने तो आते ही युद्ध छेड़ दिया, और इस दास को ऐसा पछाड़ा कि मन सिट्टी-पिट्टी भूल गया।

'अच्छा, लाओ, इस सुहाग-रात के उपलक्ष्य में मेरे लिए क्या लाए हो ?'

मैं बहुत कुछ लाया था—सोने की चेन, घड़ी, एक कीमती बनारसी साड़ी, एक-दो जड़ाऊ गहने, पर वे सब क्या इस महामहिमामयी, गौरवशालिनी पत्नी के योग्य थे ? मैंने लज्जित होकर कहा—तुम्हारे योग्य तो कुछ नहीं है ऊषा, देते लाज लगती है।

'देखूं तो।'

उसने एक-एक वस्तु को देखा, हंसी। उन्हें आदर और उछाह से पहना, फिर प्यार-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—सुहागरात तो तुम्हारी भी है, कुछ मुझसे उपहार न लोगे ?

'मैंने तुम्हें पा लिया, अब और कुछ न चाहिए।'

'मैंने भी तो तुम्हें पा लिया, फिर भी मुझे उपहार मिले ही। तुम्हारे लिए मैं भी कुछ लाई हूं।'

मैंने सोचा—रायसाहब ने कुछ रुपए दिए होंगे, या कोई चीज। मैंने कहा—रहने दो, मुझे अब और कुछ न चाहिए।

'हां, वह कुछ उतनी कीमती चीज़ नहीं है, पर वह मैं तुम्हारे लिए लाई हूं।' उसके मानी चेहरे पर फिर वही तेज और नेत्रों में चमक उत्पन्न हो गई। मैंने जल्दी से कहा—तो मेरी रानी, दो न, मैं उसे पाकर कृतार्थ हो जाऊं।

उसने धीरे से आंचल से एक कागज़ निकालकर मेरे हाथ में दे दिया। मुझे कौतूहल हुआ। क्या रायसाहब ने मुझे कुछ दान-पत्र दिया है? रोशनी तेज़ करके देखा तो दंग रह गया। यह ऊषा के बी० ए० ऑनर्स में प्रथम श्रेणी में पास होने का सार्टिफिकेट था।

मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऊषा इतनी उच्चशिक्षाप्राप्त है। मैं पागल की भांति ऊषा की ओर दौड़ा। मैंने कहा—ऊषा, मेरी रानी, मेरी मालकिन, तुमने मेरा जीवन सफल कर दिया!

ऊषा ने धीरे से कहा—इन तीन वर्षों में यही कर सकी।

उसका स्वर कांप रहा था। दूसरे ही क्षण हम दोनों एक थे। हम लोग प्रेमी ही नहीं, गम्भीर दम्पति हैं। हमारे प्राणों से प्राण और शरीर से शरीर घुलकर एक हो गए हैं। हम भीतर तक स्त्रीत्व और पुरुषत्व को देख चुके हैं; बाहर के लिए हम अधेड़ हैं।

# ककड़ी की कीमत

यह दिल्ली के बीते हुए दिनों के एक रईस की इज़्ज़त की हृदयग्राही कहानी है।

आज तो दिल्ली का सब रंग-ढंग ही बिगड़ गया है। बाजार में, मकानों में, चाल-ढाल में, सड़कों में, सबमें विलायतीपन आ गया है। जब से दिल्ली भारत की राजधानी बनी है और नई दिल्ली की चकाबू को मात करने वाली विचित्र नगरी बसी है, तब से दिल्ली यद्यपि पंजाब से पृथक् अलग सूबा बन गया है, फिर भी उसमें बुरी तरह से पंजाबीपन भर गया है। नई दिल्ली जब बस रही थी। तब ढेर के ढेर पंजाबी सिक्ख और सभी उत्साही लोग—जिन्होंने पंजाब के गेहूं और उर्द एवं चने खाकर अपने शरीर-बल को खूब वृद्धि दी है—नई दिल्ली पर चढ़ दौड़े। ठेकेदार से लेकर साधारण मजदूर तक पंजाब के साहसी पुरुष भर गए। उन्होंने नई दिल्ली में प्रारम्भ में कौड़ियों के मोल जमीन ली और बस गए। अब नई दिल्ली में वे सरदारजी होकर मोटर में दौड़ते हैं; वीरभोग्या वसुन्धरा। दिल्ली के महीन आदमी न जाने कहां खो गए। अब जगह-जगह होटल खुल गए हैं। लाइन की लाइन खालसा होटलों की दुकानें आप दिल्ली के बाजारों में देख सकते हैं, जहां झटका पकने का साइनबोर्ड लगा होगा। और वहां अनगिनत सरदारगण बड़े-बड़े साफे बांधे, लम्बी दाढ़ी फटकारे, कोट, पैंट, बूट डाटे, खाट या टेबुल पर बैठे रोटियां खाते दीख पड़ते हैं। छुआ-छूत को तो इन्होंने डंडे मारकर दिल्ली से नज़ाकत के साथ दूर ही कर दिया है। शाम को आप जरा चांदनीचौक में एक चक्कर लगाइए। पंजाबी युवतियां और प्रौढ़ाएं बारीक दुपट्टा माथे पर डाले, सलवार डाटे, मुंह खोले बेफिक्री से कचालू वाले के इर्द-गिर्द बैठकर कचालू-आलू खाती नजर आएंगी।

कभी-कभी ब्याह-शादी के जलूसों में जौहरियों की वह देहलवी नुक्केदार पगड़ियां कुछ पुराने सिरों पर नज़र आ जाती थीं। परन्तु वह नीमास्तीन अंगरखे, वसली के जूते, दुपल्ली दो माशे की टोपी, बगल में महीन शबंती का दुपट्टा

तो बिल्कुल हवा हो गए हैं। सरदे के दामन और सफेद शर्बती की चादरें लपेटे अब दिल्ली की ललनाएं नहीं दीख पड़तीं। न अब वे जड़ाऊ ज़ेवर ही उनके बदन पर दीख पड़ते हैं जिनकी बदौलत दो हज़ार जड़िए और पांच हज़ार सुनार दिल्ली में अपनी रोज़ी चलाते थे। अब तो बारीक क्रेप की फ़ैशनेबिल साड़ियां, उनपर नफासत से कढ़ी हुई बेलें, बिना आस्तीन के जम्पर, जिनमें से आधी छाती और समूची मृणाल-भुजाएं खुला खेल खेलती हैं, साथ में ऊंची एड़ी के रंग-बिरंगे सेंडिल-जूते—चांदनीचौक में देखते-देखते आंखें थक जाती हैं। देश की इन पर्दाफाश बहनों में सुशिक्षिताएं तो बहुत ही कम हैं। ज्यादातर मोर का पंख खोंसकर मोर बनने वाले कौए जैसी हैं। इसका पता उनके चेहरे पर पुते हुए फूहड़ ढंग के पाऊडर से, होठों में खूब गहरे लगे गुलाबी रंग से, तीव्र सेंट से, तराबोर चटकीले रेशमी रूमाल से, बालों में चमचमाते नकली जड़ाऊ पिनों से अनायास ही लग जाता है। कभी-कभी तो इन अधकचरी मेमसाहिबा की कोमल कलाइयों में दिल्ली फैशन के सोने के दस्तबन्दों और अनगिनत चूड़ियों के बीच फ़ैन्सी रिस्टवाच तथा पैरों के ज़ेवरों पर ऊंची एड़ी का सैंडिल शू मन में अजब हास्य रस उत्पन्न करता है; खासकर उस हालत में जबकि उनके पालतू पति महाशय पतलून पर लापरवाही से स्वेटर पर कोट डाले उनके पीछे-पीछे उनकी खरीदी चीज़ों का बंडल लिए बड़े उल्लास से चलते-फिरते और मुसाहिबी करते नज़र आते हैं।

३८ वर्ष हुए। उस समय दिल्ली के चांदनीचौक में अब जहां अगल-बगल पैदल चलने वालों के लिए पटरियां बनी हैं, वहां सड़कें थीं। सड़कें कंकड़ की थीं। उनमें बहली, मझोलियां, इक्के सरपट दौड़ा करते थे। दोनों समय उन सड़कों पर छिड़काव हुआ करता था। बीचोंबीच अब जहां चमचमाती सीमेंट की पुख्ता सड़क है, नहर पर पटरी बनी थी। उसके दोनों ओर खूब घने वृक्षों की छाया थी। ज्येष्ठ-बैसाख की दोपहरी में भी वहां शीतल वायु के झोंके आया करते थे। उस पटरी पर बड़ी-बड़ी भीमकाय बेतों की छतरियां लगाए खोंचे वाले अपनी-अपनी छोटी-छोटी दुकानें लिए बैठे रहते थे। उनमें बिसाती टोपी वाले, टुकड़ी वाले, घी के सौदे वाले, दही-बड़े वाले, चने की चाट वाले, कचालू वाले, मेवाफरोश तथा फल वाले सभी होते थे। उनसे भी छोटे दुकानदार अपनी

छोटी सी दुकान को किसी टोकरी में सजाए गले में लटकाए घूम-फिरकर सौदा बेचा करते थे। सैकड़ों आदमी उन वृक्षों की घनी छाया में पड़े हुए थकान उतारा करते थे। घंटाघर के सामने कमेटी की संगीन इमारत के आगे अब जहां महारानी विक्टोरिया की मूर्ति रखी हुई है, वहां काले पत्थर का एक विशालकाय हाथी खड़ा था, जिसे जयमल फत्ते का हाथी कहकर बूढ़े आदमी उस पटरी पर वृक्षों की ठंडी छाया में लेटे उनींदी आंखों में खमीरी तम्बाखू का मद भरे भांति-भांति के किस्से-कहानी कहा करते थे। दिल्ली के निवासियों की बोली में एक अजीब लोच था। खोंचे वालों की आवाज़ें भी एक से एक बढ़कर होती थीं। सब्ज़ी-तरकारियों में जो पहले चलती, वही दिल्ली के रईस खाते थे। भिंडी और करेले जब तक रुपए सेर बिकते थे, कच्ची आम की कैरियां जब तक बारह आने सेर बिकती थीं, तभी तक वे दिल्ली वालों के खाने की चीज़ समझी जाती थीं। सस्ती होने पर उन्हें कोई नहीं पूछता था। बेर के मौसम में लोग बेरों को चाकू से छीलकर उनपर चांदी का वर्क लपेटकर खाते थे। लताफत और नज़ाकत हर-एक बात में थी। जैसे वे महीन आदमी थे, वैसे ही उनका रहन-सहन भी था।

फागुन लग गया था। वसन्त पुज चुका था। सर्दी कम हो गई थी। वासन्ती हवा मन को हरा कर रही थी। बाज़ार में नर्म-नर्म पतली ककड़ियों के कूंजे बिकने आने लगे थे। पर उनके दाम काफी महंगे थे इसलिए यह रईसों का ककड़ी खाने का मौसम था। एक जवान कुंजड़ा सिर पर नारंगी साफा बेपरवाही से बांध, बदन पर तंजेब का ढीला कुरता पहने, गले में सोने की छोटी सी ताबीज़ काले डोरे में लटकाए, आंखों में सुरमा और मुंह में पानों की गिलौरियां दबाए कमर में चौखाने का तहमत और पैर में फूलदार सलेमशाही आधी छटांक का जूता पहने ककड़ियां बेचता पटरी पर मस्तानी अदा से घूम रहा था। उसके हाथ में झाऊ की एक सूफियानी चौड़ी टोकरी थी। उसपर केले के हरे पत्तों पर गुलाब के फूलों के बीच ककड़ी के दो रवे रखे थे। टोकरी उसके दाहिने हाथ में अधर धरी थी। वह अपनी मस्त आंखों से इधर-उधर घूरता झूमती-झूमती ललकती भाषा में आवाज़ लगाता था—नाज़ुक ये ककड़ियां ले लो···लैला की उंगलियां ले लो···मजनूं की पसलियां ले लो। नाज़ुक ये ककड़ियां ले लो।

पीछे से आवाज़ आई—ककड़ी वाले, ज़रा वरे को आना। उसी भांति

मस्तानी अदा से पुकारता हुआ ककड़ी वाला पीछे को फिरा। पुकारने वाला कहार था। वह एक बुड्ढा आदमी था। उसकी सफेद-सफेद बड़ी मूंछें, पक्का रंग, लट्ठे की मिर्ज़ई, दुपल्ली टोपी और चौखाने का अंगोछा कंधे पर पड़ा हुआ था।

ककड़ियों को देखकर उसने कहा—सिर्फ दो ही रवे हैं ?

'अभी ककड़ियां कहां ? वह तो कहो, मैं चार रवे लाया था। दो बिक गए, दो ये हैं। लेना हो तो लो, मोलभाव का काम नहीं, चवन्नी लूंगा।'

बूढ़ा कहार अभी नहीं बोला था। एक युवक ने तीव्र आवाज़ में कहा—अठन्नी लो जी, ककड़ियां हमें दो।

पहलवान युवक भी कहार था। उसकी मसें अभी भीगी थीं। भुजदण्डों में मछलियां उभर रही थीं। उसने हेरती हुई आंखों से बूढ़े कहार की ओर देखा और अठन्नी टन से झाबे में फेंक दी।

'सौदा हमसे हुआ है जी, ककड़ियां हम लेंगे। यह लो एक रुपया। ककड़ियां हमें दो।'

कुजड़ा क्षणभर स्तम्भित रहा। उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से युवक की ओर देखा। युवक ने कहा—कुछ परवाह नहीं, हम दो रुपए देंगे।

'हम पांच रुपए देते हैं।'

'हम दस देते हैं।'

'यह लो बीस रुपए। ककड़ी तो हम खरीद चुके।'

'पच्चीस हैं यह, ककड़ी हमने ले ली।'

'हमने तीस दिए।'

युवक के माथे पर बल पड़ गए। उसने कहा—हम पचास में खरीदते हैं। लाओ ककड़ियां इधर दो।

बूढ़े कहार ने हंस दिया और आज्ञा की दृष्टि से युवक की ओर देखकर ज़रा सीधा खड़ा होकर उसने तेज़ स्वर में कहा—मैंने सौ रुपए में दोनों ककड़ियां खरीद लीं।

युवक कहार क्षणभर घबराई दृष्टि से बूढ़े की ओर देखता रहा। बूढ़े ने विजयगर्वित दृष्टि से उसे घूरते हुए कहा—दम हो तो बढ़ो आगे। ककड़ियां पांच हज़ार तक मेरे यहां जाएंगी।

सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए थे। युवक लज्जा और क्रोध से भरकर चुप-

चाप चल दिया। सैंकड़ों कण्ठों से नारा बुलन्द हुआ—वाह भाई, महरा, क्यों न हो? आखिर तू है किस घराने का नौकर, जो इस समय दिल्ली की नाक है। शाबास!

बूढ़े ने कमर से रुपए खोलकर गिन दिए। ककड़ियां लीं और इस भांति अपने मालिक के घर को चला, जैसे वह एक राज्य विजय कर लाया हो।

बूढ़े ने अपने मालिक लाला जगतनारायणजी के सामने जाकर फूलों और केले के पत्तों में लिपटी हुई ककड़ियां रख दीं। शाम हो चली थी।

लालाजी ने पूछा—क्या दो ही मिलीं?

'जी हां, बाजारभर में सिर्फ दो ही ककड़ियां थीं। जिन्हें आपका सेवक सौ रुपए में खरीद लाया है।'

इसके बाद कहार ने जो घटना बाज़ार में घटी थी, सब कह सुनाई। लाला ने सब सुना। क्षणभर वे स्तम्भित रहे। क्षणभर बाद उन्होंने अपने गले से सोने का तोड़ा उतारकर बूढ़े के गले में डाल दिया और उसके बदन को दुशाले में लपेटकर स्वयं भी उससे लिपट गए। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से कहा—शाबास मेरे प्यारे रामदीन, तुमने बाज़ार में मेरी प्रतिष्ठा बचा ली। इसके बाद उन्होंने चांदी की तश्तरी में ककड़ियों को उन्हीं गुलाब के फूलों में रखकर ऊपर कमख्वाब का एक रूमाल ढांककर कहा—जाओ, लाला शिवप्रसादजी से मेरा जयगोपाल कहना, और कहना कि आपके सेवक ने यह प्रेम की सौगात भेजी है और हाथ जोड़कर अर्ज़ की है कि स्वीकार करके इज़्ज़त अफज़ाई करें।

युवक से सब घटना सुनकर शिवप्रसादजी चुपचाप मसनद पर लुढ़क गए। मुंह की गिलौरी उन्होंने थूक दी। नौकर-चाकर चिन्तित हुए। पर कोई कुछ नहीं कह सकता था। थोड़ी ही देर में बूढ़े रामदीन ने आकर अदब से आगे बढ़कर तश्तरी लाला शिवप्रसादजी के सामने रख दी और हाथ जोड़कर अपने मालिक का सन्देश भी निवेदन कर दिया। लाल शिवप्रसादजी चुपचाप एकटक तश्तरी में रखी दोनों ककड़ियों को देखते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने ककड़ियां भीतर भिजवा दीं और तश्तरी अशर्फियों से भरकर कहा—यह तुम्हारा इनाम है।

लाला जगतनारायणजी से हमारा जयगोपाल कहना।

बूढ़े रामदीन ने झुककर सलाम किया और चला आया।

दूसरे दिन सूर्योदय के साथ ही सारे शहर में खबर फैल गई कि नगर के प्रसिद्ध रईस लाला शिवप्रसादजी ने रात जहर खाकर जान दे दी। वे एक पुर्जे पर यह लिखकर रख गए कि बाजार में मेरी इज्जत किरकिरी हो गई। अब मैं दुनिया में मुंह नहीं दिखा सकता।

ऊपर जिन दो प्रतिष्ठित रईसों के नाम दिए गए हैं, वे काल्पनिक हैं। आज भी ये दोनों घराने दिल्ली में उसी भांति प्रतिष्ठित हैं। हां, जिनका नाम जगतनारायण कल्पित किया गया है, उनके घर से लक्ष्मी रूठ गई है। आज वह विशाल हवेली टूट-फूटकर खण्डहर हो गई है। उसमें जो एकाध कमरा बचा है उसमें उनके उत्तराधिकारी बड़े कष्ट से काल-यापन करते हैं। नीचे के खण्ड के खण्डहरों में छोटे दर्जे के किराएदार रहते हैं, जिनकी आमदनी पर ही उनका निर्वाह निर्भर है।

# कहानी खत्म हो गई

एक असहाय विधवा के पतन की दर्दनाक कथा, जिसे नीचे धकेलने में समाज ने चेष्टा की परन्तु पाप और अपराध की गठरी उसीके सिर बंधी।

चाय आने में देर हो रही थी। और मेरा मिजाज गर्म होता जा रहा था ! आप तो जानते ही हैं, मैं इन्तज़ार का आदी नहीं। फिर, चाय का इन्तज़ार।

मेजर वर्मा ने यह बात भांप ली, उन्होंने एक हिंट दिया। बोले—चौधरी, उस औरत का फिर क्या हुआ ?

क्षण भर के लिए चाय पर से मेरा ध्यान हट गया, एक सिहरन-सी सारे शरीर में दौड़ गई, जैसे बिजली का तार छू गया हो। मैंने चौंककर मेजर की ओर देखा। पर जवाब देते न बना, बात मुंह से न फूटी। एक अजीब सी बेचैनी मैं महसूस करने लगा।

लेकिन मेजर वर्मा जैसे अपने प्रश्न का उत्तर लेने पर तुले हुए थे। वे एक-टक मेरी ओर देख रहे थे। प्रश्न का मेरे ऊपर जो असर हुआ था, उसे मित्र-मण्डली ने भी भांप लिया। वे लोग अपनी गपशप में लगे थे, पर विंग कमांडर भारद्वाज ने हंसकर कहा—कौन औरत भई, उसमें हमारा भी शेअर है।

भारद्वाज की हंसी में न मैंने साथ दिया न मेजर वर्मा ने। वर्मा की उत्सुकता उनकी आंखों से प्रकट हो रही थी। मैं उनकी आंखों से आंख न मिला सका। आप ही मेरी आंखें नीचे को झुक गईं। मैंने धीरे से कहा—मर गई।

मेजर को छाती में जैसे किसीने घूंसा मारा। उन्होंने एकदम कुर्सी से उछलकर कहा—अरे, कब ?

'कल सुबह'—मैंने धीरे से कहा।

मित्र-मण्डली की गपशप एकदम बन्द हो गई। वे सब मेरी ओर देखने लगे। वातावरण एकदम गम्भीर हो गया। मेरे चेहरे पर जो वेदना की रेखाएं उभर आई थीं, उन्होंने सभीको अभिभूत कर दिया। सब से अधिक फ़ील किया

मिसेज़ शुक्ला ने। उन्होंने मेरी ओर खिसककर अपने नंगे कंधे मेरे कंधों से छुआ दिए, फिर धीरे से पूछा—कौन थी ?

'थी एक,' एक गहरी सांस लेकर मैंने कहा।

'क्या बीमार थी ?'

'बीमार कोई और था, लेकिन मर गई वह।' मेरा जवाब असाधारण था, और मैं एकाएक उत्तेजित और असंयत हो उठा था। मेजर भी जैसे मेरे जवाब से जड़ बन गए थे। इसीसे इस औरत के सम्बन्ध में सभी की जिज्ञासा जाग गई।

वेटर कब चाय रख गया, इसका ज्ञान भी हममें से किसीको नहीं हुआ। भारद्वाज ने कहा—यह तो कोई बहुत ही सीरियस केस मालूम पड़ता है।

मेजर वर्मा ने बीच ही में बात पकड़ ली। उन्होंने कहा—सीरियस होने में क्या शक है। लेकिन हुआ क्या ?

'क्या पूरा ही किस्सा सुना दूं ?' मैंने कुछ दर्द भरे स्वर में कहा। मेरे कहने का ढंग शायद कुछ प्रभावशाली था। सभी मेरे मुंह की ओर देखने लगे। भारद्वाज ने कहा—ज़रूर, ज़रूर। पूरा ही किस्सा सुनाइए।

मिसेज शर्मा ने चा' का प्याला तैयार किया, मेरी ओर बढ़ाया, कहा—लीजिए, एक सिप लीजिए।

मैंने दो सिप लिए और प्याला एक ओर टेबुल पर रख दिया। फिर मैंने कहा—आप लोग समझते होंगे, ज्यादातर ट्रेजेडी शहरों में होती है, क्योंकि वहां संघर्ष है, दिमाग है, कानून है, रुपया है, शान है।

सब चुपचाप सुनते रहे। मैं आगे क्या कहना चाहता हूं इसीपर सबका ध्यान केन्द्रित था। मैंने कहा—लेकिन हमारे देहातों में भी कभी ऐसी ट्रेजेडी हो जाती हैं जो मनुष्यता और सभ्यता को एक करारा चैलेंज देती हैं। वहां रुपया नहीं है, दिमाग नहीं है, कानून नहीं है, शान नहीं है, केवल दिल है।

कमांडर भारद्वाज उछल पड़े। ज़ोर-ज़ोर से बोले—अरे यार, तो यह कोई दिल वाला मामला है। तब मैं ज़रूर सुनूंगा। उन्होंने सिगरेट का एक गहरा कश लिया। भारद्वाज का यह गुंडा जैसा टोन मुझे पसन्द न आया। वास्तव में मेरा मूड कुछ दूसरा ही था—मैंने एक व्यंगबाण छोड़ा, कहा—क्यों नहीं, आप दिल-फेंक जो ठहरे। पर यह कहानी दिल वालों की है।

भारद्वाज उतर गए। पर झेंप की हंसी हंसते हुए बोले—सुनाओ यार, यहां दिल वाले भी बैठे हैं।

और एक सिप चा' का लिया। फिर मेजर वर्मा की ओर मुखातिब होकर कहा—आपने तो उसे पुलिस की हिरासत में ही देखा था न?

मेजर ने कहा—जी हां, ओह, उस दिल हिला देने वाले वाकए को तो मैं ज़िन्दगी भर नहीं भूल सकता। खासकर वह घटना जब पुलिस के अफ़सर ने तरबूज़ की मिसाल देकर वह झोला मेरे सामने उलट दिया था। तोबा-तोबा!!

मिसेज़ शर्मा एकदम बौखला उठीं, बोलीं—अजी, पहेली न बुझाइए, किस्सा सुनाइए। हुआ क्या?

मेजर की आंखें भय से फटी-फटी हो रही थीं। जैसे अभी भी वे उस झोले से बाहर निकली हुई चीज़ को देख रहे थे। मैंने उन्हींको लक्ष्य कर कहा—उस वक्त तक भी पूरा किस्सा मुझे मालूम न था, सारी बातें तो पीछे मुझे मालूम हुईं। पर तब तो वह मर ही चुकी थी। अपने पर शर्मिन्दा होने और अफसोस करने के अलावा हम कर ही क्या सकते थे?

बहुत देर तक मेरे मुंह से बात न फूटी। कितनी ही बातें-कल्पना और सत्य की-मेरे मानस-नेत्रों में नाच उठीं, सच पूछिए तो मैं अभी तक उस घटना से मर्माहत न था, अभी—एक दिन पहले ही की तो वह घटना थी। घाव ताज़ा था। इस क्षण उसकी वे आंखें, आंखों की वह वेदना, निराशा, और सारी ही मानव-सभ्यता को धिक्कार का संदेश, जो मृत्यु के समय उसके निस्पन्द होंठ दे रहे थे, मेरे नेत्रों में आ खड़े हुए। मेरा कण्ठ रुक गया।

मिसेज़ शर्मा बहुत विचलित हो गईं। उन्होंने कहा—जाने दीजिए, यदि आपको वह किस्सा सुनाने में तकलीफ हो रही है तो मत कहिए। आप चा' लीजिए। उन्होंने एक ताज़ा प्याला तैयार कर मेरे आगे बढ़ाया। उनकी उंगलियां कांप रही थीं और उद्वेग तथा भावावेश से उनका हृदय आन्दोलित हो रहा है, यह स्पष्ट दीख पड़ता था।

प्याले की ओर मैंने आंख उठाकर भी न देखा और मैंने किस्सा कहना शुरू किया—

वह हमारे ही गांव की लड़की थी। उसका बाप हमारी ज़मींदारी में

सर्वराहकार था। बूढ़ा और भला आदमी था। हमारा ग्रामीण जीवन शहर के जीवन से सर्वथा भिन्न होता है। आप कदाचित् उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। गांव में हम सब छोटे-बड़े, ऊंच-नीच एक पारिवारिक भावना से रहते हैं। न जाने कब से—सम्भवतः आदियुग की यह परिवार-भावना हमारे गांवों में अब तक चली आ रही है। सुनते हैं कि प्राचीन काल में, जब नगर नहीं थे, सभ्यता नहीं थी, जीवन अपने ही में केन्द्रित था और मनुष्य जीवन-संघर्ष को सबसे बड़ा मानता था। आदर्शों की, समाज की, सभ्यता की, धर्म-मर्यादा की तब तक उत्पत्ति भी न हुई थी तभी से मनुष्य ने ग्राम-संस्था स्थापित की। सामाजिक जीवन का वह प्रथम अध्याय था। उसीसे मनुष्य ने सामूहिक हितों का सर्जन करके समाज-संस्था की नींव डाली। 'ग्राम' का अर्थ था—समूह। कुछ लोग एकत्र होकर जहां बसते वह ग्राम कहाता था। आवश्यक नहीं था कि यह ग्रामवास स्थायी हो। वह तो चलग्राम था। ग्राम का अर्थ स्थानसूचक न था, समूहसूचक था; अतः उस काल मनुष्यों के ये ग्राम जीवन-यापन के संघर्ष से प्रताड़ित घूमा करते थे—यहां से वहां, वहां से यहां। परिस्थितियों ने उनमें सामूहिक हितों की सृष्टि कर दी। सुख-दुःख, लाभ-हानि सभी में उनके स्वार्थ एकत्र हो गए और एक ग्राम-समूह एक परिवार की भांति रहने लगा। इस परिवार में जाति-भेद को स्थान न था। सब वृद्ध पितृतुल्य थे, सब वृद्धाएं माता, और सब युवक-युवतियां परस्पर भाई-बहिन। उनका सबका एक ग्राम था, एक गोत्र था। गोत्र का अर्थ था चरागाह, जहां उनके पशु चरते थे। एक ग्राम का परिचय दूसरे ग्राम के मनुष्यों से इसी ग्राम-गोत्र के द्वारा होता था। प्रत्येक ग्राम और गोत्र का एक कुलपति होता था। उसीके नाम से वह ग्राम-गोत्र प्रसिद्ध होता था।

शताब्दियां बीतीं, सहस्राब्दियां बीतीं। नगर बसे, सभ्यता का विकास हुआ। जीवन के आदर्श बदले, क्रम बदला, समाज बदला, बदलता चला गया।

गांवों में भी यह परिवर्तन पहुंचा। सहस्राब्दियों के प्रभाव से गांव भला अछूते कैसे रह सकते थे! अब 'गांव' स्थान के अर्थ में था—समूह के अर्थ में नहीं। अब लोगों की बस्ती को गांव कहते थे। समाज में अनेक जातियां हो गई थीं। गंगो गांव में भी अनेक जातियां बसती थीं; हिन्दू थे, मुसलमान थे।

हिन्दुओं में भी ब्राह्मण थे, क्षत्रिय थे, जाट थे, अहीर थे, लुहार थे, भंगी थे, चमार थे, धोबी थे, नाई थे। समाज की व्यवस्था के अनुसार वे अपना-अपना काम करते थे। गांवों में किसानों की ही बस्ती अधिक होती है। जो लोग किसान और किसानों के उपजीवी नहीं होते वे शहरों में, कस्बों में बसते हैं। जो लोग वहां बसते हैं उनकी वहां सम्पत्ति भी है। ज़िमींदार हैं, किसान हैं, उनके खेत हैं, घरबार है। किसीके कम, किसीके अधिक। कोई रईस है, कोई अमीर। इस प्रकार समाज के संगठन का, व्यवस्था का, राजसत्ता का, कानून का, धर्म का—सभी का युगवर्ती प्रभाव गांवों पर पड़ा है। उनसे उनमें परिवर्तन भी आया है, पर एक प्राचीनतम बात अभी तक गांवों में चली आ रही है। वह है परिवार-भावना। गांव की बूढ़ी भंगन को भी गांव के ब्राह्मण की पतोहू सास कहकर पांव पड़ती है। गांव की प्रत्येक लड़की गांव के प्रत्येक लड़के की बहिन और प्रत्येक प्रौढ़ की लड़की है। गांव में सब छोटे-बड़ों का सम्बन्ध—चाचा, ताऊ, भाई, भतीजा, देवर, भाभी, काकी, ताई आदि पारिवारिक सम्बन्ध हैं। यहां तक कि गांव की लड़की जिस दूसरे गांव में ब्याही जाती है, उस गांव का पानी भी न पीने वाले वृद्ध पुरुष अब भी गांवों में जीवित हैं। यह है हमारे गांवों की परिवार-परम्परा—शताब्दियों, सहस्राब्दियों से चली आती हुई।

हां, तो मैं उस लड़की की बात कह रहा था। वह हमारे गांव की लड़की थी, और हमारी ज़मींदारी के सर्वराहदार की बेटी थी। हमारा घर ज़मींदार का घर था। गांव के सारे ही स्त्री-पुरुष हमारी रैयत थे। वे हमारे घर आते-जाते रहते थे—स्त्रियां भी, पुरुष भी। काम से भी और बेकाम से भी। बाहर पिताजी का दीवानखाना और भीतर ज़नाने में माताजी का कमरा आने-जाने वाले स्त्री-पुरुषों से भरा ही रहता था। हवेली हमारी बहुत भारी थी। सत्तावन के गदर में अंग्रेज सरकार ने हमारे दादा को इक्कीस गांव इनाम दिए थे और तभी हमारे दादा ने अपनी हवेली के लिए इतनी जगह घेर ली थी कि उसमें आधा गांव समा जाता था। सस्ते का ज़माना था। राज, बढ़ई उन दिनों दो-ढाई आना रोज़ मज़दूरी लेते, मज़दूर एक आना। बड़े-बड़े महराव, मोटी-मोटी दीवारें, लम्बे-लम्बे दालान भी आज भला बन सकते हैं? अब तो हम उनकी मरम्मत भी नहीं कर सकते। हवेली वीरान होती जा रही है। अब तो न हाथी, न घोड़े,

न रथ, न बहली। इनके सब थान वीरान पड़े हैं। अब तो सिर्फ यह मोटर है। और हम हैं।

मैं असल बात से दूर होकर बहकता जा रहा था। भीतर मेरे रक्त में एक गर्मी-सी आ रही थी। और जोश में ये सब बातें मैं कहे जा रहा था—एकाएक मुझे ध्यान आया। असल मुद्दे की बात तो पीछे ही रह गई।

परन्तु सब सन्नाटा बांधे सुन रहे थे। सब जैसे किसी अतीत उदारचित्त वातावरण में पहुंच चुके थे। मैंने ज़रा रुककर कहना शुरू किया—

उन दिनों मैं कालेज में ला का फ़ाइनल दे रहा था। दसहरे की छुट्टियों में जब मैं घर आया तो पहली बार उसे देखा–'देखा' कहना ठीक न होगा। मुझे कहना चाहिए: पहली बार मेरा ध्यान उसकी ओर गया। इससे पहले बहुत बार देख चुका था–रूखे-बिखरे बाल, मैला मोटा ओढ़ना, पुराना घाघरा, नंगे धूलभरे पैर, पर रंग गोरा। लेकिन गांव में ऐसी बहुत लड़कियां थीं–राह-बाट में, खेत में बहुधा मिल जाती थीं। मैं तो ज़मींदार का लड़का था। शहर में पढ़ता था। सूट-बूट पहनकर ठसक से गांव में निकलता था। सो किसी लड़की-लड़के की क्या मजाल जो मुझसे बात करे। मुझे देखते ही वे सहमकर पीछे हट जाते थे। जो समझदार होते थे वे सलाम करते थे। सयानी लड़कियां ओट में छिप जाती थीं, छोटी कौतुक से मुझे देखती थीं। इसीसे इस लड़की पर भी पहले कभी मेरा ध्यान नहीं गया।

पर इस बार की बात जुदा थी। मैं घर कोई डेढ़ साल में आया था। पिछली गर्मी की छुट्टियों में यूनिवर्सिटी की टीम कश्मीर चली गई थी। मैं भी उसमें चला गया था, अतः छुट्टियों में घर नहीं आया था। घर में दशहरे की सफाई-सजावट की धूम-धाम थी। भाभियां घर सजाने में व्यस्त थीं और वह उनकी सहायता कर रही थी। अब उसके बाल बिखरे न थे। ठीक-ठीक बालों की मांग निकली थी, कपड़े सलीके के शहरी ढंग के बारीक और बढ़िया थे। स्वस्थ तारुण्य उसकी एड़ियों में झांक रहा था। जीवन की ताज़गी से वह लहलहा रही थी। जीवन में पहली ही बार किसी लड़की को मैंने ऐसी रुचि से देखा था। उसका चेहरा गुलाब के समान रंगीन और आंखें तारों के समान चमकीली थीं। वह हंसती नहीं थी–फूल बखेरती थी, चलती न थी–धरती को डगमग करती थी। मैं क्या कहूं? मुझे एक ही क्षण में ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे

दस-पांच अंगीठियां मेरे अंग में धधक रही हैं और मैं तपकर लाल हो रहा हूं। आग की लपटें मेरी आंखों से निकलने लगीं और मैं वहां से लड़खड़ाता हुआ ऊपर कमरे में आकर औंधे मुंह पलंग पर पड़ रहा। मैंने समझा—मुझे बुखार चढ़ गया है।

इतना कहकर मैं जरा चुप हुआ। बीते हुए दिन एक-एक करके मेरे नेत्रों में आने लगे।

लेकिन कमांडर भार्गव बेचैन हो रहे थे। उन्होंने इतमीनान से कुर्सी पर आसन जमाते हुए कहा—कहे जाओ, कहे जाओ दोस्त; मामला ठण्डा मत होने दो। उन्होंने नई सिगरेट सुलगाई।

मैंने आगे कहना आरम्भ किया—

वह मुझे देखकर लजाई थी, मुस्कराई थी, भाभी की ओट में छिप गई थी, छिपकर उसने फिर मुझे देखा था। वह सब—देखना मुस्कराना, छिपना, लजाना, अब सिनेमा की तस्वीर की भांति अनेक बार, सौ बार, हजार बार तेज़ी से मेरी आंखों में घूम रहे थे। मेरा सिर घूम रहा था। धरती-आसमान भी सब शायद घूम रहे थे।

बहुत देर तक मेरी यही हालत रही। पर फिर मुझे ज़रा सी नींद आ गई। जगने पर मेरा मन कुछ शान्त था। मुझमें समझ आ गई थी। अभी हृदय मेरा कोरा था, तारुण्य मेरा निर्दोष था। इस प्रथम विकार पर मुझे लज्जा आई। मुझे लगा; यह खराब बात है। गांव की सभी बहू-बेटियां मेरी बहनें हैं। पिताजी ने कई बार यह कहा है: हम ज़मींदार हैं, इससे और भी हमारा गौरव बढ़ जाता है। मुझे ऐसा न सोचना चाहिए। यह मेरी प्रतिष्ठा-मर्यादा के सर्वथा विपरीत है। मैं मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा। और एकबारगी ही उसे मन से निकाल फेंका।

लेकिन कहां? पलंग से उठते ही मैं खिड़की में आ खड़ा हुआ, और नीचे आंगन में चारों ओर देखने लगा। जैसे कुछ खो गया है। किसे भला? यह मैंने अपने मन से पूछा। और जब मन ने कहा—'उसीको' तो मैं अपने पर बहुत झुंझलाया। वैसे ही कमीज़ पहने मैं नीचे उतरा और सीधा बाग की तरफ चल दिया। देर तक बाग में और नहर की पटरी पर फिरता रहा। माली से बातें कीं। मुझे प्रसन्नता हुई कि वह तूफान खत्म हो गया। अब उसकी कभी याद न

करूंगा। वाहियात बात पर रात को बहुत देर तक नींद न आई। उसका वह मुस्कराना, लजाकर भाभी की ओट में छिपकर देखना! वाहियात! वाहियात! ये सब खुराफात, गंदी बातें हैं। भला इनसे मुझे क्या सरोकार!

लेकिन नींद नहीं आ रही थी। मैंने एक मोटी-सी कानून की किताब उठा ली, और एक कठिन कानूनी नुक्ते पर कुछ रूलिंग्स पढ़ने लगा। लेकिन वहां तो प्रत्येक अक्षर की ओट से वह झांक रही थी—मुस्करा रही थी। धुत्!

भारद्वाज जोर से हंस पड़े।

मैंने कहा—ठीक है, आप हंस सकते हैं। मेरे दुश्चरित्र और दुराचार का यह प्रमाण जो आपको मिल गया!!

मैं चुप हो गया। और मैंने आंखें बन्द कर लीं। लेकिन वही तरबूज!!! एक प्रकार से मैं चीख उठा।

मेजर वर्मा ने कहा—रहने दीजिए। बाकी कहानी फिर कभी सुन ली जाएगी। अभी आपकी तबियत दुरुस्त नहीं है। लेकिन मैंने कहना आरम्भ कर दिया—

दूसरे दिन मैंने उसे नहीं देखा। यह नहीं कह सकता कि देखना नहीं चाहा। पर मैंने अपने मन को रोकने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। पर बेकार। उसकी छिपी हुई नजरें झांकती ही रहीं। उसके होंठ मुस्कराते ही रहे। मैंने सुना: उसकी सगाई हो गई है, और इसी साहलग में उसका ब्याह होगा।

दशहरे के दिन मेरा तिलक चढ़ा। बहुत धूमधाम हुई। गाजे-बाजे, जशन-दावत, कहां तक कहूं। पिता का सबसे छोटा बेटा था। वे सबसे अधिक मुझको प्यार करते थे। भीड़-भाड़ में एक होकर मैंने देखा, हर बार मुझे प्रतीत हुआ: वह मुझको देख रही है।

छुट्टियां समाप्त होने पर मैं होस्टल में लौट आया। धीरे-धीरे वह उन्माद बीत गया। स्मृति अवश्य बनी रही, वह भी धुंधली होते-होते छिप गई। अगले वर्ष मेरी शादी हुई। सुषमा ने आकर मेरे जीवन को एक नया मोड़ दिया। सुषमा जैसी पत्नी पाकर मैं कृतार्थ हो गया। वह जैसी सुशिक्षिता है, वैसी ही शीलवती, परिश्रमी और हंसमुख स्वभाव की है। उसके प्रेम, सेवा और विनय से मैं उसमें लीन हो गया। उस लड़की की याद करके और अपनी हिमाकत का विचार करके कभी-कभी मुझे हंसी आ जाती थी—पर कभी मैंने किसीसे अपने

मन का यह कलुष कहा नहीं। परीक्षा पास करके मैं घर पर रहकर ज़मींदारी की देखभाल करने लगा। खेती और बागवानी का मुझे शौक था। उसमें मैंने मन लगाया। बड़े भाई डिप्टी-कलक्टर होकर बिहार चले गए थे। पिताजी का स्वर्गवास हो गया। मंझले भाई भी केन्द्र के शिक्षा-विभाग में अंडर सेक्रटरी हो गए। घर पर केवल मैं अकेला रह गया। दिन बीतते चले गए। तीन बरस बीत गए। और ईश्वर की कृपा से सुषमा की कोख भरी। मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा।

एक दिन बूढ़े सर्वराहकार रोते हुए मेरे पास आए। चौधारे आंसू बहाते हुए उन्होंने कहा—बर्बाद हो गया, छोटे सरकार! लुट गया! लड़की मेरी विधवा हो गई, उसकी तकदीर फूट गई। मेरी इकलौती बेटी थी सरकार, उसे बेटा बनाकर पाला था। उसपर यह गाज गिरी।

बूढ़ा बहुत देर तक रोता रहा। यद्यपि वे सब बातें मैं भूल चुका था। पर स्मृति के चिह्न तो बाकी ही थे। सुनकर मुझे दुःख हुआ। बूढ़े को तसल्ली दी। और जब वह चला गया, एक बूंद आंसू मेरी आंख से भी टपक पड़ा। वाहियात बात थी। लेकिन मन का कच्चा तो सदा से हूं। मेरा मन द्रवित हो गया। बूढ़े ने कहा था कि वह उसे यहां ले आया है, तब एक बार उसे देखने की भी लालसा हो गई। पर वह सब बात मन की थी—मन में रही। महीनों बीत गए। कभी-कभी उसका ध्यान आता, दया आती, पर कुछ विशेष आकर्षण न था। सुषमा धीरे-धीरे कमज़ोर और पीली पड़ती जा रही थी। मुझे उसकी चिन्ता थी। ज्यों-ज्यों डिलीवरी का समय निकट आ रहा था, मेरी उद्विग्नता बढ़ती जाती थी—इन सब कारणों से मैं उस बिचारी विधवा को भूल ही गया। सुषमा के प्यार ने मुझे अभिभूत कर लिया था। सुषमा मेरे जीवन का आधार थी। और अब मैं इस प्रकार के विचारों को भी मन में रखना पाप समझता था। मुझे पाकर सुषमा भी खुश थी। वह देवता की भांति मेरी पूजा करती थी।

मिसेज़ शर्मा एकदम द्रवित हो उठीं। उन्होंने कहा—भई बंद करो। आप सचमुच देवता हैं। आप जैसा पति पाने के कारण मैं तो सुषमा बहिन से ईर्ष्या करती हूं।

मैं जैसे चीख पड़ा। मेरे गले की नसें तन गईं और मुट्ठियां भिच गईं। मैंने कहा—श्रीमतीजी, जल्दी अपनी राय कायम न कीजिए, पूरी कहानी सुन लीजिए।

मेरी वहशत और भावभंगी देख मिसेज़ शर्मा डर गईं। वह फटी-फटी आंखों से मेरी ओर टुकुर देखने लगीं। मैं इस योग्य न था कि इस समय उनसे अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा मांगूं। मैंने कहानी आगे बढ़ाई—

एक दिन देखता क्या हूं कि वह सुषमा के पास बैठी है। इस समय वह यौवन से भरपूर थी। उस समय यदि वह खिलती कली थी तो आज पूर्ण विकसित पुष्प। परिधान उसका साधारण था। पर स्वच्छता और सलीका—जो बहुधा देहात में नहीं देखा जाता—उसकी हर अदा से प्रकट होता था। उसका रंग अब ज़रा और निखर गया था, अंग भर गए थे और रूप की दुपहरी उस पर चढ़ी थी। अथवा एक ही शब्द में कहूं तो वह इस समय वसन्त की फुलवारी हो रही थी। एकाएक मैंने उसे पहिचाना नहीं, पर दूसरे ही क्षण जब उसने उठकर हाथ जोड़कर मुस्कराकर मुझे प्रणाम किया, मैंने उसे पहचान लिया। हाय री तकदीर! वही मुस्कराहट, वही चितवन! क्षणभर को मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई और मेरे पैर कांपने लगे। साहस करके मैंने पूछा, 'अच्छी हो' तो उसने लाज से सिर झुकाकर सिर्फ 'जी' कह दिया।

छी छी! फिर वह भूली हुई बातें न जाने कहां से जीवित हो उठीं। वही मुस्कराना, छिपना और आंखें······मैं तेजी से वहां से भाग आया। सीधा ऊपर जा दरवाज़ा बन्दकर अपने शयनागार में आ पड़ा। एक आहत हिरन की भांति—जिसे अभी-अभी शिकारी ने तीर मारा हो।

उस दिन मैंने खाना नहीं खाया। सिरदर्द का बहाना करके पड़ा रहा। सुषमा की परेशानी ने मुझे और भी पागल बना दिया। कभी यूडीक्लोन सिर पर डालती, कभी नर्म-गर्म हथेलियों से सिर दबाती, कभी बाल सहलाती, कभी डाक्टर बुलाने का आग्रह करती। मुझ बेईमान, पाखण्डी, मक्कार के लिए वह उस एक ही दिन में आधी रह गई।

मैंने जलती हुई आंखों से मिसेज़ शर्मा की ओर देखा और कहा—काहिए, कहिए, अब भी आपको सुषमा पर ईर्ष्या होती है, परन्तु अभी ज़रा और ठहर जाइए!!

एकाएक मेरी आवाज़ मुर्दे की जैसी मरी हुई हो गई। खूब ज़ोर लगाकर

मैं कहने लगा—

दूसरे दिन सुबह होते ही मैं जमींदारी के जरूरी काम का बहाना करके इलाके पर चला गया। ६-७ दिन तक मैं घर नहीं लौटा। आप दाद दीजिए मेरे जानवरपन की, जबकि सुषमा की यह हालत थी, इस कदर नाजुक; कोई उसे देखने वाला न था। पहली ही डिलीवरी थी उसे, और मैं नफ्स का गुलाम कहां, किस हालत में फिर रहा था। मैं आपसे नहीं छिपाना चाहता था कि मुझे न खाना भाता था, न नींद आती थी; न दिन चैन पड़ता था, न रात को कल पड़ती थी। वही शैतान आंखें, वही मुंह छिपाकर मुस्कराना, वही गहरे गुलावी गाल, कम्बख्त न जाने कहां से उभरे चले आते थे, मेरी बदनसीब नजरों में? जैसे मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में उन आंखों का खेत उग आया था। उस चितवन की, उस मुस्कान की रिमझिम बरसात हो रही थी। जी हां, एक क्षण को भी मैं उसे न भूल सका, एक क्षण को भी मैंने सुषमा को याद नहीं किया एक क्षण को भी मैंने उसकी असहायावस्था पर गौर न किया। अन्त में मैंने अपने-आपको धिक्कारा, मन में पक्का इरादा किया, उस शैतान को मैं गांव से निकाल दूंगा, एक क्षण भी न रहने दूंगा।

सातवें दिन मैं घर लौटा। अभी दहलीज पार करके मैं सुषमा के कमरे में जा ही रहा था कि देखता क्या हूं—सामने से वह आ रही है मुझे देखकर वह ठिठक रही। निकट आने पर उसने मुस्कराकर और हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया। फिर वह मुस्कराती हुई ही चली गई। अजी, मुस्कराती हुई नहीं—मेरे मन में छिपी समूची वासना का सांगोपांग विवरण पढ़ती हुई। वह गहरे लाल रंग का लहंगा और उसपर चिलकेदार दुपट्टा पहने हुई थी।

भाड़ में जाय यह! गुस्से से होंठ चबाता हुआ मैं सुषमा के कमरे में पहुंचा। कल ही से उसे ज्वर था। मुझे देख वह मुस्कराई और मैं उसकी जलती हुई हथेलियों को मुट्ठी में दबाए देर तक चुपचाप बैठा रहा। कुछ बोलने की ताव ही न रही। सुषमा ही बोली। उसने कहा—

'गुमसुम क्यों हो?'

'कुछ नहीं। बहुत थक गया हूं, बहुत दौड़-धूप करनी पड़ी।'

सुषमा एकदम व्यस्त हो उठी। वह लेटी न रह सकी। उसने अधीर स्वर में कहा—मुंह कैसा सूख गया है! बिस्तर लगवाती हूं, जरा सो रहो। उसने

आवाज दी—अरी······, और वह आ खड़ी हुई। मैंने उसकी ओर नहीं देखा। सुषमा ने कहा—ज़रा झटपट यहीं बिस्तर लगा दे। बाबू की तबियत ठीक नहीं है।

मैंने बहुत ना-नूं की। वहां–सुषमा के सामने मैं अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं करना चाहता था। मैंने कहा—नहीं नहीं, ऐसा ही है तो मैं ऊपर अपने कमरे में जा सोऊंगा। मगर तुम आराम करो। तुम्हें ज्वर है।

पर उस साध्वी पतिप्राणा को अपने ज्वर की क्या चिन्ता थी? क्या उसे उस पाखण्डी के मन का ही हाल मालूम था? उसने कहा—तो जा बहिन, ऊपर ही जाकर बिस्तर लगा दे।

मेरा निषेध सुषमा ने माना नहीं। उसे भेज दिया। मैं जड़ बना वहीं बैठा रहा।

वह लौटकर आई। उसी तरह मुस्कराकर उसने कहा—भैयाजी का बिछौना बिछा है।

'भैयाजी', यह शब्द जैसे बन्दूक की गोली की भांति मेरे मस्तिष्क में घुस गया। लेकिन मुझे तो गांव की सभी लड़कियां भैयाजी ही कहती हैं। वही गांव का प्राचीन पारिवारिक सम्बन्ध। परन्तु इस समय तो यह शब्द मेरे मुंह पर एक तमाचा था। मैं वहां न ठहर सका। तेज़ी से उठकर ऊपर अपने कमरे में बिस्तर पर आ पड़ा। कमरे की चटखनी भीतर से चढ़ा ली। क्यों? मैं कह नहीं सकता।

बहुत देर तक मैं सोता रहा। जब उठा तो शाम हो चुकी थी। उठकर मैं सीधा सुषमा के पास जा बैठा। क्षण-भर बाद ही वह चा' लेकर आई। चा' टेबुल पर रखकर चली गई। सुषमा जानती थी कि मैं इंतजार नहीं कर सकता, खासकर चाय का। पर यह बात क्या यह भी जानती है?

उसके जाने के बाद मैंने सुषमा से कहा—क्या इसे तुमने नौकर रख लिया है?

उसने हंसकर कहा—नहीं, नहीं! बहुत अच्छी लड़की है। मुझे अकेली और बीमार देखा तो आप ही मेरे पास आ गई। तभी घर के काम-काज में जुटी है। तुम्हारे जाने के बाद से रोज़ ही दिन-भर यहीं रहती रही है। कितना सहारा मिला मुझे इससे! तुम्हारे ऊपर जाने के बाद ही मैंने इससे कह दिया

था कि तुम चा' का इन्तजार नहीं कर सकते। चा' तैयार कर देना। सब बातें मुझसे पूछकर यह न जाने कब से बैठी इन्तजार कर रही थी। सुषमा हंस दी। और मैंने मन का उद्वेग छिपाने को एक बिस्कुट समूचा ही मुंह में ठूंस लिया।

अब मेरे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होने में देर न थी। मुझे सुषमा शीघ्र ही कुसुम-कोमल पुत्र देगी, जो हम दोनों के प्रेम का जीता-जागता प्रमाण होगा। अब मुझे इस शैतानी विचार को मन में नहीं लाना चाहिए। फिर मेरा अपना चरित्र है, प्रतिष्ठा है, उसका भी तो मुझे ख्याल रखना चाहिए। जैसे मेरे भीतर एक नए बल का संचार हुआ, मेरे ओठों पर हंसी खेल गई, मैंने बड़े आनन्द से चाय का एक प्याला अपने हाथ से बनाकर सुषमा को दिया। सुषमा आनन्द से विभोर हो गई। कुछ तो अपनी अस्वस्थता के कारण—और कुछ मुझे अस्त-व्यस्त देखकर वह बहुत परेशान हो गई थी। अब मेरे हाथ से प्याला लेकर वह खुश हो गई। उसने कहा—अब तो कुछ ही दिनों की बात है। उसकी आंखें हंस रही थीं। और मैं आनन्द-सागर में गोते लगा रहा था। अपनी मूर्खता पर मैं मन ही मन हंसने लगा। चुड़ैल कहीं की। धुत्! धुत्!

सुषमा ने कहा—आओ, ज़रा घूम आओ, तबियत ठीक हो जाएगी। खाओगे क्या, मिसरानी से कह दो।

मैंने कहा—सुषमा, आज तो मैं तुम्हारे साथ ही खाऊंगा! जो चाहे बनवा लो। लेकिन, उठना नहीं–तुम्हें ज्वर है। ज़रा शरीर का ध्यान रखो।

स्त्रियां कितनी भावुक और कोमल होती हैं। मेरी इतनी ही सी बात पर सुषमा गद्गद हो गई। और मैं अपने को तीसमारखां समझने लगा था। अपनी समझ में तो मैंने मन का सारा ही मैल धो डाला था। अब तो दिल में कहीं किसी कोने में भी न वह हंसी थी, न चितवन। इसे कहते हैं मार पर विजय। मदनदहन शिव ने इसी भांति किया था। बुद्ध ने भी मार पर इसी भांति विजय पाई थी।

मैं कपड़े बदलकर ज्यों ही सीढ़ियों से उतरा। देखता क्या हूं, वह सुषमा के लिए एक कटोरा दूध लेकर उसके कमरे में जा रही है। मैंने मन में कहा—इसकी ओर देखना ही न चाहिए। मैं आंखें नीची किए दस कदम बढ़ गया। वह भी उसी भांति आंखें नीची किए आगे बढ़ गई। लेकिन न जाने क्यों मैंने ठिठक-कर मुंह फेरकर उसकी ओर देखा! छी, छी, वह भी मुंह फेरकर मेरी ओर देख

रही थी। मुझे उचटकर देखते देख वह चल दी। गुस्से से मेरा शरीर कांपने लगा, और मैं तीर की भांति वहां से बाहर निकल गया। कमांडर भारद्वाज ज़ब्त न कर सके। ठठाकर हंस पड़े। बोले—यह गुस्सा किसपर था, उसपर या अपने पर ?

क्षण-भर को सभी के चेहरों पर मुस्कान दौड़ गई। पर मिसेज़ शर्मा बहुत गम्भीर थीं। मेरे ऊपर घड़ों पानी गिर गया। मेरी वाणी रुक गई। बहुत देर तक कोई न बोला।

मेजर वर्मा एकाएक बहुत उत्तेजित हो उठे। वे कुर्सी से उछलकर खड़े हो गए। हाथ की सिगरेट उन्होंने फेंक दी और तेज नज़र से मेरी ओर ताकने लगे। मैं समझ गया, मेजर वर्मा कहानी के दूसरे छोर तक पहुंच चुके हैं। और अब उनके मस्तिष्क में वह तरबूज़······

मेरे होंठ नीले पड़ गए। और आंखें पथरा गईं। मैंने एक असहाय मूक पशु की भांति, जिसकी गर्दन पर छुरी चल गई हो, करुण-कातर दृष्टि से मेजर वर्मा की ओर देखा। मिसेज़ शर्मा घबरा गईं। उन्होंने कहा—आपकी तबियत तो एकदम बहुत खराब हो गई है, चौधरी साहब।

'नहीं, मैं ठीक हूं।' कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए मैंने कहा। मेजर वर्मा चुपचाप कुर्सी पर बैठकर मेरी ओर ताकते रहे। मरे हुए स्वर में मैंने कहा—मेजर, सारी बातें मैं न बता सकूंगा। आप और ये सब सज्जन मुझे क्षमा करें।

डिलीवरी की खटपट में मैं फंस गया। सुषमा बहुत बीमार हो गई थी। उसे मसूरी ले जाना पड़ा। पुत्र-जन्म का उत्सव धूम-धाम, शोर-गुल, बाजे-गाजे से हुआ, ये सब बातें क्या कहूं। ४-५ महीने इन सब बातों को बीत गए।

एक दिन शाम को जब मैं घूमकर लौट रहा था, गांव की जनशून्य राह पर मैंने देखा : चादर में लिपटा हुआ कोई खड़ा है। वही थी। और मेरी ही प्रतीक्षा में खड़ी थी। निकट पहुंचने पर उसने कहा—बड़ी देर से खड़ी हूं ज़रा उधर चलिए—मुझे आपसे कुछ कहना है।

सच पूछिए तो मैं अब उससे सचमुच ही कतराने लगा था। वह नशा तो काफ़ूर हो चुका था। और इधर महीनों से उससे मुलाकात ही नहीं हुई थी।

मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि मुझे एकान्त में उससे बात करते कोई देख ले। पर मैं उसका अनुरोध न टाल सका। मैंने कहा—क्या बहुत जरूरी बात है ?

उसकी आंखें भर आईं। उसने धीरे से कहा—जी हां।

और जब हम रास्ते से हटकर उस बड़े बरगद की छांह में गए तब चारों ओर अंधेरा फैल चुका था। उसने एक ही वाक्य में वह बात कह दी। सुनकर मैं ठण्डा पड़ गया। मेरे मुंह से बात न निकली।

बहुत देर वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। फिर उसने धीरे से कहा—आपको मैं न किसी झंझट में डालना चाहती हूं, न आपपर मैं कोई बोझ लादना चाहती हूं। सब कुछ मैं स्वयं भुगत लूंगी। परंतु पिताजी का देहांत हो चुका। मेरा अब पृथ्वी पर कोई नहीं है। आप गांव के राजा हैं ; रियाया के माई-बाप हैं। मैं और किसी अधिकार की बात नहीं कहती–किसी बदनामी के भय से आप डरें नहीं। मर जाऊंगी, पर आपका नाम न लूंगी। परन्तु, मैं औरत हूं, असहाय हूं। मेरा कोई हमदर्द नहीं, आप ही अब मुझे राह बताइए।

मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। समझ रहा था कि वह औरत मुझे कितना कायर समझ रही है। यह कुछ झूठ भी न था। मैंने अन्त में कहा—मुझसे तुम क्या चाहती हो ? मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं ? आखिर मैं एक इज़्ज़तदार आदमी हूं। तुम्हें यह सोचना चाहिए।

'सोचकर ही तो कह रही हूं।'

'क्या तुम कुछ रुपया-पैसा चाहती हो। ?'

'नहीं।'

'तब क्या चाहती हो ?'

'अपनी इज़्ज़त बचाना। आप राजा रईस हैं, मैं गरीब, अनाथ, विधवा, रांड स्त्री हूं। जिस परिस्थिति में मैं फंस गई हूं उसके लिए मैं अकेले आपको जिम्मेवार नहीं ठहरा सकती। दुर्बलता मेरी भी थी। फिर, मैं तुच्छ स्त्री हूं। सभी भोग मैं ही भोग लूंगी पर इज़्ज़त-आबरू मेरी भी है। मेरे पिता आपके एक ईमानदार सेवक थे। मैं आपके गांव की बेटी हूं, मेरी बदनामी गांव की बदनामी है। वह मैं न होने दूंगी, इसमें आप मेरी मदद कीजिए।

'लेकिन कैसी मदद ? रुपया-पैसा तो तुम चाहती ही नहीं।'

'जी नहीं ?'

'तब मैं क्या करूं ?'

'गांव के किसी इज़्ज़तदार गरीब ठाकुर से मेरा ब्याह करा दीजिए।'

इज्जतदार ठाकुर क्यों ब्याह करने को राज़ी होगा।'

'आप कहेंगे तो होगा। मेरा सहारा हो जाएगा ? मेरा कलंक ढका रह जाएगा। और मैं अपनी सेवा से उसे प्रसन्न कर लूंगी।'

अब आप मेरे दिल की बात भी सुन लीजिए। मेरी आंखों में अब मेरे पुत्र का निर्मल हास्य खेल रहा था। सुषमा प्रसव के बाद मसूरी से लौटने पर अधिक आकर्षक हो गई थी। मैं अपनी लम्पट वृत्ति पर खीझ रहा था। न जाने मुझे क्या हो गया था उस समय। यही मैं सोचता रहता था। और अब वह आग तो सर्वथा बुझ चुकी थी। पर उससे जलकर जो फफोला पड़ गया था, वह इतना भारी जंजाल हो उठेगा-यह मैंने कभी न सोचा था। और अब मुझे इस औरत में कोई दिलचस्पी भी न थी। इससे सब भांति पीछा छुड़ाने और भविष्य में अपने दाम्पत्य का पूरा आनन्द लेने को मैं बेचैन था। कुछ रुपए-पैसे की बात होती तो मैं उसे दे देता। पर उसका ब्याह रचाना—यह तो एक नया सिर-दर्द था। अब भला मैं किससे कहूं ? कैसे कहूं ? सुनकर कोई क्या समझेगा, क्या कहेगा ? इन्हीं सब बातों पर मैं देर तक विचार करता रहा। कुछ देर बाद मैंने धीमे स्वर में कहा—क्या तुमने किसी आदमी को पसन्द किया है ?

'नहीं, पसन्द-नापसन्द की बात ही नहीं है, मुझे आप काना, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, अपाहिज, बूढ़ा-किसीके पल्ले बांध दीजिए। उज्र न होगा। बस, मेरी लाज ढकी रह जाय। मेरे पिता का कुल न कलंकित हो।'

उस समय मैं उस एकान्त में उससे अधिक बात करने को सर्वथा अनिच्छुक था। मैंने केवल टालने की दृष्टि से कह दिया—अच्छा देखूंगा।

मैं चलने लगा। उसने कहा—ज़रा रुकिए। एक बात और है।

'क्या ?'

'वह कल गढ़ी में आकर सबके सामने कहूंगी। यहां कहना ठीक नहीं है।'

'अच्छा' कहकर मैं चल दिया।

दूसरे दिन पहर दिन चढ़े वह गढ़ी में आई। आकर सीधी कचहरी में जाकर दीवानजी के पास जा खड़ी हुई। उसने कहा—छोटे सरकार से अर्ज़ करने

आई हूं। दीवानजी उसे मेरे पास ले आए। धड़कते हृदय से मैं सोच रहा था—अब यह यहां किसलिए आई है। परन्तु, उसने एक साधारण रैयत की भांति अधीनता दिखाकर कहा—सरकार, मैं असहाय विधवा स्त्री हूं, मेरे पिता ने मरते दम तक रियासत की ईमानदारी से सेवा की है, अब न मेरे मां-बाप हैं, न कोई हितू-सम्बन्धी। आप गांव के राजा हैं, इसीसे मैं आपकी शरण आई हूं।

मेरा दम घुट रहा था। पर मैंने मन पर काबू रखकर पूछा—क्या चाहिए तुम्हें!

'सरकार एक भैंस यदि मुझे खरीद दें तो उसका दूध-घी बेचकर अपना भी पेट पाल लूंगी, सरकार का भी कर्ज़ा चुका दूंगी।'

मैंने बिना किसी आपत्ति के उसे भैंस खरीदवा दी। वह कहती तो मैं उसे दो-चार हज़ार रुपए भी दे सकता था। मैं जानता था कि यह उसका अधिकार था। पर उसने तो मुझसे केवल वही मांगा जो कोई एक साधारण रैयत ज़मींदार से मांगती है। अब यह कैसे कहूं कि उसकी यह मांग मेरी प्रतिष्ठा के लिए ही थी या उसकी प्रतिष्ठा के लिए।

उसके बाद वह और दो-चार बार मुझसे एकान्त में मिली। और ब्याह की बात पर उसने ज़ोर दिया। मैंने टालटूल की और अन्त में मैंने साफ इन्कार कर दिया।

उस दिन अकस्मात् पुलिस दलबल-सहित उसे लेकर गढ़ी में आ गई। मामला क्या है, इसे जानने के लिए उसके साथ बहुत लोगों की भीड़ थी। सब भांति-भांति की बातें कर रहे थे। पुलिस वालों ने उसे मारा-पीटा भी था। चोट के निशान उसके मुंह और शरीर पर थे। उसके वस्त्र जगह-जगह फट गए थे। बाल उसके बिखरे थे और चेहरे पर मुर्दनी छाई थी। आंखें उसकी फटी-फटी सी हो रही थीं। शरीर में जगह-जगह खून लगा था। ओठों से भी खून बह रहा था।

पुलिस का अफसर सुशिक्षित तरुण था। वह मुझे जानता था। कहना चाहिए, मेरा मित्र था। पुलिस ने एक औरत के साथ मारपीट की है मेरे गांव में आकर?—यह बात जानकर गुस्से से मैं लाल हो गया। मेजर वर्मा उस दिन वहीं थे। गुस्सा इन्हें भी बहुत हुआ। हम लोगों ने पुलिस को खूब खोटी-खरी

सुनाई। मैंने कहा—उसने क्या जुर्म किया है, क्या नहीं ?–इसकी बात मैं नहीं कहता। पर आपको इसे मारने-पीटने का कोई अधिकार न था।

पुलिस अफसर ने शान्तिपूर्वक हमारा–मेरा और मेजर साहब का गुस्सा सहन किया। फिर उसने कहा—चौधरी साहब, मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है। यदि गांव आपका न होता तो मैं यहां आता भी नहीं। इसे थाने में ले जाता। पर आपका मुझे बहुत लिहाज़ था—इसीसे।

मैंने कहा—आखिर मामला क्या है ?

'आप जरा दूसरे कमरे में चलिए।

मैं, मेजर वर्मा, वह और पुलिस अफसर दूसरे कमरे में चले आए। अफसर के कहने से मैंने भीतर से चटखनी चढ़ा दी। किसी अज्ञात भय से मेरी अन्तरात्मा कांप उठी। मैं एकटक पुलिस अफसर के मुंह की ओर देखने लगा। और तब उसने तरबूज़ की मिसाल दी। और मैं अब बयान नहीं कर सकता। मेजर वर्मा कहेंगे, इन्होंने वह सब देखा है।

'बेशक मैंने देखा था। ऐसा खौफनाक, दिल हिला देने वाला वाकया ज़िन्दगी भर मैंने नहीं देखा था।' कुछ ठहरकर मेजर वर्मा बोले—अफसर ने मेरी तरफ देखकर–क्योंकि मैं ही ज्यादा गर्म हो रहा था–व्यंग्यपूर्ण भाषा में कहा—जनाब, आप एक तरबूज़ लेकर उसे सिर से ऊपर उठाकर पटक दें तो कह सकते हैं कि उसका क्या परिणाम होगा ?

उस नौजवान पुलिस अफसर की यह दिल्लगी मुझे न भाई। मैंने ज़रा गर्म लहजे में कहा—तरबूज़ फट जाएगा। लेकिन आपका मतलब क्या है ? इस औरत ने क्या तरबूज़ की चोरी की है ?

'जी नहीं ! क्या किया है देखिए।' उसने कान्स्टेबिल को संकेत किया। और उसने हाथ में लटकते हुए झोले को ज़मीन पर उलट दिया। एक वजनी सी चीज़ धमाके के साथ ज़मीन पर आ गिरी। वह एक ताज़ा बच्चे की लाश थी। मिसेज़ शर्मा के मुंह से चीख निकल गई। भारद्वाज हाथ की सिगरेट फेंककर खड़े हो गए, दूसरे लोग भी अवाक् रह गए। भारद्वाज ने कहा—क्या ताज़ा बच्चे की लाश ? हौरेबल—माई गॉड !

लेकिन मेजर वर्मा ने आगे कहना जारी रखा—बच्चे को शायद पत्थर पर या किसी सख्त चीज़ पर पटका गया था, जिससे उसका सिर उसी तरह फट गया

था जैसे ऊंचे से फेंक देने से तरबूज फट जाता है। और उसके भीतर से लाल-लाल लोहू—तोबा-तोबा! मेजर वर्मा वाक्य पूरा किए बिना ही सिर पकड़कर बैठ गए।

फिर उन्होंने कहा—पुलिस अफसर ने बताया कि यह औरत तस्लीम करती है कि पहले हमल गिराया गया, लेकिन बच्चा ज़िन्दा पैदा हुआ। उसका गला घोटकर मार डालने की चेष्टा की गई, पर बच्चा मरा नहीं। तब उसे चक्की के पत्थर सिर के बल पटक दिया गया। उससे उसका सिर फट गया। पुलिस वालों ने बताया कि मार खाने पर ही इन सब बातों का पता इसने बताया है। पर बच्चा किसका है यह किसी हालत में बताती नहीं है। इसीसे हम निरुपाय इसे यहां लाए हैं। उसने चौधरी साहब से आग्रह किया था कि वह इस औरत से उस आदमी का पता पूछें और कानून की मदद करें। चौधरी तब बहुत परेशान हो उठे थे, इसका कारण मैं तब नहीं समझा था—अब समझा कि······

अब फिर मैं कहने लगा—कचहरी में मैं पागल की भांति चीख उठा कि उस बालक का पिता मैं था। जी हां, उस बालक का पिता मैं था। वह मेरा बच्चा था-वैसा ही जैसा सुषमा की गोद में हंस-खेल रहा है। लेकिन······

मिसेज़ शर्मा भी एकदम उठ खड़ी हुईं। उन्होंने कहा—बस बस, चौधरी अब खत्म कीजिए। और वह बिना कुछ कहे चल खड़ी हुईं। परन्तु मैंने कहा—

'अब तो थोड़ी ही सी बात रह गई है। मेजर तो तुरन्त वहां से चल दिए थे। मेरे लिए मामला रफा-दफा करना लाज़िमी हो गया। पुलिस को विदा कर, और अपराध का खोज-पता मिटाकर उसे मैंने उसके घर भिजवा दिया। थोड़ी ही देर बाद एक पड़ौसी के हाथ उसने भैंस मेरे पास भिजवा दी और इसके कुछ ही देर बाद मुझे सूचना मिली कि वह मर गई।'

कहानी खत्म हो गई और सन्नाटा छा गया। चाय प्यालों में भरी हुई ठण्डी हो गई थी पर किसीने उसे छुआ भी नहीं! एक-एक करके चुपचाप सब लोग उठकर चल दिए: मुझे प्रतीत हुआ जैसे एक लानत की नज़र मेरे ऊपर फेंककर। मैं खामोश बैठा था। मेरा सिर घूम रहा था। आंखों में उस झोले में से निकली हुई चीज़ और सुषमा की गोद में खेलता-हंसता हुआ मेरा पुत्र! होंठों से खून बहाती फटे कपड़ों में लांच्छिता वह नारी और गृहणी-गौरव-मण्डिता

सुषमा—सब मूर्तियां जैसे घुलमिलकर मेरे चारों ओर तेजी से चक्कर काट रही थीं। भय और आवेश से मैं चिल्ला उठा। मुझे इतना ही होश है—मेजर शर्मा ने किसी तरह मुझे घसीटकर अपनी मोटर में डाला था। इसके बाद तो मैं बेहोश हो गया।

# राजनीतिक कहानियां

- *लम्बग्रीव*
- *जीवन्मृत*
- *खूनी*

# लम्बग्रीव

इस कहानी में कलाकार की आहत आत्मा असह्य वेदना से चीत्कार कर रही है। उस चीत्कार से देव-दैत्य तक विचलित हो गए हैं। कलाकार, जो नित्य ही भूत-दया, प्राणियों के सुख और जीवन के आनन्द के स्वप्न देखता रहता है, जब महामहानरमेध का द्रष्टा बना तो फिर उसकी वेदना की सीमा क्या होगी? शायद ही विश्व के किसी कलाकार ने भारत की विभाजन-विभीषिका पर ऐसा हाहाकार किया होगा। कहानी के टेकनिक का जहां तक सम्बन्ध है, लेखक को जातिगत विद्वेष से अछूता रहने में अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। कहानी में विशुद्ध मानव-प्रेम और भूत-दया है। रत्तीभर भी प्रोपेगण्डा नहीं है, व्यंग्य और श्लेष के चमत्कार के तो कहने ही क्या हैं। चन्द्रकला कहानी का प्राण है, जो शिव का शिरोभूषण और विभाजन के पुरोहित का राष्ट्रचिह्न है। कहानी-लेखक की सर्वोत्कृष्ट कहानियों में यह अन्यतम है।

उत्तुङ्ग हिमकूट पर धूर्जटि क्रोध से फूत्कार कर उठे। उनका हिम-धवल दिव्य देह थरथरा गया। अभी-अभी उनकी समाधि भंग हुई थी और उसी समय उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके जटाजूट से कोई चन्द्रकला को चुरा ले गया। चन्द्रकला की रजत-प्रभा से हीन उनकी पाण्डुर जटा धूमिल और मलिन हो रही थी, जाह्नवी की शुभ्र रेखा सूख गई थी। उनके क्रोध और चलभाव से उनके मृदु अङ्ग के सुखस्पर्श से सुप्त सर्प जागरित हो इधर-उधर सरकने लगे। कमर में लिपटा हुआ व्याघ्रचर्म स्खलित होकर नीचे खसक गया। जिस हिम-शिला पर कैलाशी शताब्दियों में ध्यानसुप्त, स्थिर, समाधिलीन तुरीयावस्था में उपस्थित थे, वह पिघलकर बहने लगी। उन्होंने एक बार अच्छी तरह निर्णय करने के लिए जटा को झाड़ा, वहां चन्द्रकला नहीं थी। उसे कोई चुरा ले गया था!

उन्होंने झांककर मर्त्यलोक की ओर देखा—

महाराज्यों की राजधानी दिल्ली अपने भाग्य पर इतरा रही थी, तब से अब तक इस महामन्दोदरी पुंश्चली ने न जाने कितने नर-नाहरों का रक्तपान

किया, न जाने कितनी बार पति-हन्ताओं से यह वरी गई, यह अक्षययौवना आज दुलहिन बनी नई 'सजधज' में सजी खड़ी थी। रंग-बिरंगी ध्वजा, पताका, बन्दनवारों से ओतप्रोत। विविध वाद्य, जन-कोलाहल-आपूरित कांच की भांति चमचमाती सड़क पर असंख्य बिजली की दीपावलियों से प्रतिबिम्बित चांदनी-चौक में नर-नारी, आबाल-वृद्ध भरे थे। लालकिले के सामने दृष्टि के इस छोर से उस छोर तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दीख पड़ रहे थे। सब कह रहे थे—सात सौ वर्षों के बाद! आज सात सौ वर्षों के बाद! किसी सौभाग्य की सुखद भावना से उनके मुखमण्डल आनन्दित थे। उनके उत्सुक हृदय आन्दोलित, और भुजदण्ड विजयोल्लास से फड़क रहे थे। लालकिले के सिंहद्वार पर उनकी दृष्टि केन्द्रित थी। वहां एक तथाकथित ऐतिहासिक समारोह हो रहा था, जवाहरलाल नेहरू ऊंची भुजा किए किले के सिंहद्वार के ऊंचे कंगूरे पर हाथ में तिरंगा झंडा लिए खड़े थे, यूनियन जैक गतयौवना नारी के यौवन की भांति उनके चरणों में झुका हुआ था।

कैलाशी को अब और सह्य नहीं हुआ। एक बार दूर तक उस जन-कोलाहल और नरमुण्ड-पूरित नगर-गरिमा के ऊपर, अनन्त नक्षत्रों से भरे आकाश के नीचे अमन्द अंधकार से व्याप्त विश्व पर उन्होंने अमर्ष-मिश्रित दृष्टि डाली। वहां और सब कुछ यथावस्थित था, परन्तु चन्द्रकला नहीं थी। अन्ततः उनकी सर्वव्यापिनी दृष्टि सुदूर देश-प्रांत में इधर-उधर घूमकर एक अंधेरे मरुस्थल में, एक चल चंचल कृष्णकाय क्षुद्र बिन्दु पर केन्द्रित हुई। उन्होंने भृकुटी कुंचित करके देखा और फूत्कार की, त्रिशूल उठा लिया और डमरू हाथ में लेकर बजाया—

डम-डम-डम-डम
डमर-डमर-डम
डमर-डमर
डमर-डमर
डमर-डमर
डम-डमर-डमर-डम
डमर-डमर।

नन्दी ने हुंकार भरी, शृङ्गी-भृङ्गीगण दौड़ पड़े, उमा निद्रा से चौंक पड़ी,

हिमकूट हिल उठा, कैलाश चल-विचलित हो गया, देव-दानव, नाग, दैत्य, जीव, अज भय-विस्फारित नेत्रों से एक-दूसरे को देखने लगे। स्वर्ग-लोक में डमरू-ध्वनि पहुंची। मर्त्य-लोक में डमरू-ध्वनि पहुंची। पाताल-लोक में डमरू-ध्वनि पहुंची। अरे! हुआ क्या? कैलाशी आज कहीं असमय में ही रौद्र भाव तो नहीं विस्तार कर रहे हैं?

शृङ्गी, भृङ्गी ने भूमि पर गिरकर प्रणतिपात किया, उमा रत्नपीठ त्याग अस्त-व्यस्त पांव-प्यादे ही उठ धाईं, नन्दी बारम्बार कुकुन्द हिलाने और हुंकार भरने लगे। परन्तु डमरू वजता ही गया—

डम-डम-डम-डम

डमर-डमर-डम

डमर-डमर

डमर-डमर

डम-डमर-डमर-डम

डमर-डमर—

वेग से, अति वेग से, अत्यन्त वेग से। उसमें से अग्नि-स्फुलिंग निकलने लगे, वायुदेव कांपने लगे। भूलोक में आंधी, उल्कापात, जल-प्रलय, भूकम्प होने लगे। जड़, जङ्गम त्राहि माम्, त्राहि माम् चिल्लाने लगे!!

उमा ने भय, भक्ति, स्नेह-पूरित मन्दस्मित वाणी से कहा—देव! यह क्या! आपके रक्षित लोक, परलोक, नक्षत्र-मण्डल सव ध्वंस हो जाएंगे! प्रभो! डमरू-नाद बन्द कीजिए! सब ध्वंस हो जाएंगे!

'सो हो जाएं।' शिव ने त्रिशूल ऊंचा करके भीषण वेग से डमरू-नाद करते हुए कहा।

'जय देव! जय-जय देव! जय देवाधिदेव! जय देव-देव!…' शृङ्गी-भृङ्गी, नन्दी, शिलिमुख, सूचीमुख, भुशुण्डी, शूर्पकर्ण, असिपत्र, वैताल, हिन्ताल, गोशृङ्ग, वज्रपद्म, लोहिताक्ष आदि शत-सहस्र रुद्र-गण आ जुटे। किसीकी कमर में ताजा चूती हुई हाथी की खाल बंधी हुई। कोई व्याघ्रचर्म स्कन्ध पर लपेटे था। कोई नंग-धड़ंग, कोई कवन्ध, कोई प्रलम्ब, कोई निरवलम्ब, कोई विकटदन्त, कोई कृतान्त। कोई वीणा, मृदङ्ग, मुरज लिए; कोई शूल-शक्ति वर्मशरपुंख लिए दिग्दिगन्त से आ जुटे। सबने झांककर देखा—

घण्टाघर के कलङ्कित कलेवर पर विद्युत् दीपावलियां रंग-बिरंगी आभा बिखेर रही थीं। चांदनीचौक जगमगा रहा था और दिल्ली के छैल-छबीले स्त्रैण नर 'हा-हा-हू--हू' करते, कचालू के पत्ते चाटते, पान कचरते, भीड़ में भरी यौवन-मदमाती, सैरसपाटे की शौकीन लेडियों और मिसों को, जानते, अनजानते दबोचते, घूरते, धर्मधक्के देते, ठठोली और चुहल करते इधर से उधर गर्वभरी चाल से आ-जा रहे थे। मानो इन्होंने अपने रक्त-जीवन और शौर्य के मूल्य पर यह तथाकथित स्वातन्त्र्य-लाभ किया है।

सबने देखा, सबने सोचा, यही क्या कैलाशी के क्षोभ का विषय है ?

परन्तु कैलाशी की दृष्टि सुदूर सूने मरुस्थल में अलक्ष, कृष्ण, चल-चञ्चल पिण्ड पर केन्द्रित थी। सभी का ध्यान दिल्ली के रंगीन दृश्य से हटकर वहीं पहुंच गया। बहुत ध्यान करने से अब सबने देखा—उस शून्य काली रात से आपूर्यमाण रेगिस्तान में एक लम्बग्रीव, अशुभ दर्शन, विगलितयौवन किन्तु भद्र-वसन नर-जन्तु ऊंट पर बैठा, हिचकोले खाता, अपनी कमज़ोर आंखों से, चश्मे की सहायता से, चेष्टा करके देखता मार्गहीन मार्ग पर दौड़ा जा रहा है और कैलाशी की वक्र दृष्टि उसी भाग्यहीन पर केन्द्रित है। उनकी भृकुटी में बलि-रेखा स्पष्ट होती जा रही है, और नासिका-रन्ध्र फूल रहे हैं। श्वास वेग से आ रहा है, त्रिशूल का हाथ ऊंचा उठता ही जा रहा है, डमरू का वज्रनाद तीव्रतम होता जा रहा है।

उमा ने शंकित, भीत होकर कहा—अरे ! कहीं त्रिशूली तृतीय नेत्र तो नहीं खोल रहे हैं ? प्रलय हो जाएगा, असमय ही में विश्व भस्म हो जाएगा, असमय ही में—

गण, गणपति सब विचलित हुए। वे निरुपाय उमा का मुंह ताकने लगे। उन्होंने कातर कण्ठ से कहा—मातः ! कैलाशी के अमर्ष का निवारण करो, उन्हें शिव रूप में अवस्थित करो !

उमा ने शुभ्र स्निग्ध हाथ कैलाशी के कंधे पर रखकर कहा—कौन है वह अधम मानुष, देव ?

'लम्बग्रीव।'

'क्या किया है उस पातकी ने ? एक नगण्य, जरा-मृत्युपाश-ग्रसित मानुष पर देवाधिदेव का ऐसा रोष क्यों ?'

'देखो, देखो उसकी स्पर्द्धा ?' उन्होंने उंगली से संकेत कर उधर कुछ दिखाया।

उमा ने भयभीत होकर देखा—चन्द्रकला उसकी टोपी में संलग्न थी। फिर उन्होंने सदाशिव की धूमिल जटाओं को देखा जो चन्द्रकला के अभाव से धूमिल और श्रीहीन हो रही थीं।

उमा भय और क्षोभ से जड़ हो, उस अंधेरे रेगिस्तान के मार्गहीन मार्ग में दौड़ते हुए ऊंट की, और उसके लम्बग्रीव आरोही की ओर देखने लगीं।

कैलाशी की भृकुटी कुंचित होती जा रही थी, ओष्ठ फड़क रहे थे, कैलाशी कहीं तृतीय नेत्र न खोल दें, इसीसे भयभीत हो उमा ने कहा—क्या उसने चन्द्रकला को चुरा लिया है ?

'देखो तो तस्कर को ?' कैलाशी ने फिर हिमधवल उंगली उठाई।

किन्तु मर्त्यलोक में किसीको भी इस देवकोप का पता न था। लाहौर की अनारकली पैरिस के सौंदर्य और मोहक विलास से स्पर्धा-सी करती हुई दीख रही थी। सड़कें फैशनेबल ग्राहक, ग्राहिकाओं से पटी पड़ी थीं और दुकानें विदेशी फैशन की सामग्रियों से ! जीवन की कठिनाइयों की यहां परवाह न थी। गेहूं, उर्द और चना खा-खाकर, पंचनद की उर्वरा भूमि में उत्पन्न दूध, घी और रस की मुंहछुट खुराक खा-खाकर कद्दावर और स्वस्थ माता-पिताओं ने जो युवक-युवतियों की, आज के युग की, चपल जोड़ियां उत्पन्न की थीं, वह पच्छिमी हवा के झोंकों में झूम-झूमकर अपने विलास और यौवन का उन्मुक्त प्रदर्शन करती घूम रही थीं। धरती और आसमान पर वे अपने यौवन और विलास को छोड़कर दूसरी किसी वस्तु को देख ही न पा रही थीं। चरित्र और जीवन के साथ संश्लिष्ट कुछ गम्भीर दायित्व और भारी त्यागमय भावनाएं भी हैं, इनसे वे बिल्कुल बेखबर थीं। और उनके पिता-पितृव्य मोटे और बेडौल पेट पर, जो बहुधा बेतुले गेहूं और चना खाने और यथावत् परिश्रम न करने से हो जाता है, कीमती विलायती सिल्क का अंग्रेज़ी कट सूट का खोल चढ़ाए, सिर पर बत्तीस गज़ का एक थान लापरवाही से लपेटे, चोरी, चोरबाज़ारी, हरामखोरी और आपापंथी से गट्ठर के गट्ठर अंग्रेज़ों के दिए कागज़ी रुपयों को जेबों में भरे फिरते थे, जिनका स्वच्छन्द उपभोग करने में इन युवक-युवतियों को कोई रोक-टोक नहीं थी।

इन्हीं के साथ, अफ्रीका का जंगल चेहरों और सिर पर उगाए, वीर का बाना धारण किए बहुत लोग कोमल अन्तस्तल का रत्ती-राई बहिष्कार कर कड़ाह-प्रसाद और झटके का बेखटके आस्वाद ले रहे थे।

हठात् कैलाशी ने तृतीय नेत्र खोल दिया। सहस्र उल्कापात का वज्रनाद विश्व पर व्याप्त हो गया। अग्नि-स्फुलिंग की एक ज्योतिष्मती धारा हिमकूट से सीधी अनारकली पर आ पड़ी।

और, देखते ही देखते अनारकली भस्म होने लगी। लाहौर में भगदड़ मच गई। शताब्दियों से सुप्त और चिरदासता में मग्न विलास-लिप्सा और उसके साधन धांय-धांय जलने लगे।

नन्दी, शृंगी, भृङ्गी, भुशुण्डी, शिलिमुख, सूचीमुख, विकरालाक्ष, लम्बकर्ण, असितवक्ष आदि रौद्रगण दौड़ पड़े। गली-गली, कूचों-कूचों में उन्होंने मोटे, तोंदल, निकम्मे, लोलुप, कायर जनों को मारकर गिराना प्रारम्भ कर दिया, रौद्र नेत्र से विस्फारित अग्निशिखा लाहौर को घेरकर चारों ओर से भस्म करती ही रही। उसी अग्नि-समुद्र में घिर-घिरकर भागते-दौड़ते, हाय-हाय करते भद्र-अभद्र सब पटापट मरने लगे। विलास की लिप्सा ने वासना को घसीटकर साथ ले लिया और छांट-छांटकर विलास-पुत्तलिकाओं का अपहरण किया। देव, दैत्य, दानव भी पिल पड़े। भोग और भोग के साधन वे बटोरने लगे। इस धकापेल में शत-सहस्र पवित्र कुमारिकाएं, निर्दोष पंचनद की पुत्रियां लांछित हुईं, नग्न की गईं, और दूषित हुईं। बहुतों ने जान दे दी, बहुतों ने आत्मार्पण किया। बहुत जूझ मरीं, बहुतों का क्रूर घात हुआ, बहुत बद्ध हुईं, बहुतों ने अखाद्य भक्षण किया। सम्पूर्ण पंचनद पर रुद्र का तृतीय नेत्र घूम गया। दाहक ज्वाला की परिधि बनाकर हरी-भरी पंचनद-भूमि, नगर, गांव, बस्ती, जनपद, जन, सब भस्म होने लगे। मृत्यु और मृत्यु से भी कठिन यातनाओं, यन्त्रणाओं के अवर्णनीय नारकीय अभिनय हुए!

महानिष्क्रमण आरम्भ हुआ। लक्ष-लक्ष नर-समूह, घर-द्वार, खेत-सम्पत्ति छोड़ बेघर बने, पत्नी-पुत्रों से हाथ धोए, राह के भिखारी बने, बहिष्कृत हुए। शताब्दियों से परिचित घर-द्वार, खेत-खलिहान वहीं रहे, भग्न प्राण और जर्जर

शरीर को ले, गठरी-मुठरी सिर पर लाद, कोई पांव प्यादे, कोई घोड़ा, गदहा, ऊंट, खच्चर, बैलगाड़ी पर, कोई अपने सशक्त साथी की पीठ पर चले अज्ञात यात्रा को, असहाय भिखारियों, खानाबदोशों की भांति। महिलाओं के पैरों में घाव हो गए, सुकुमारियां मूर्छित हो गईं, बालक सिसक-सिसककर मरने लगे; वृद्धजन आंसुओं से अपनी धौली डाढ़ी धोते चले—कांखते, लंगड़ाते, गिरते-पड़ते, भूखे-प्यासे। एक दो नहीं, लक्ष-लक्ष, सहस्र-सहस्र, शत-शत।

उल्कापात ने उन्हें छिन्न-भिन्न किया। आघात ने उन्हें आहत किया, रोग ने उन्हें अल्पायुमृत्यु दी, भूख ने उन्हें आबरू बेचने पर लाचार किया। न बूढ़े की लाज रही, न कुल-वधू की मर्यादा। न बड़े का वड़प्पन रहा, न छोटे का शील। प्राणों को देते-लेते, जीवन और मृत्यु का सामना करते, रात को, तारों से भरी खुली रात में बीच राह सोते, दिन जलती धूप में झुलसती आंखों से ज़ार-ज़ार आंसू बहाते, थके हुए, गिरे हुए, घायल हुए परिजनों को घसीटते और कंधों पर ढोते हुए चलते चले गए। मरतों पर आशीर्वाद के अश्रुविन्दु न्योछावर करते, और जीतों पर निराशा की गहरी सांस खींचते। प्राण-पुत्तलिकाओं का उन्होंने अपने हाथों वध किया—घर में बन्द करके आग में फूंक दिया, और चल पड़े अपनी समझ से निर्द्वन्द्व होकर, सब कुछ खोकर—केवल प्राणों का भार लेकर।

उमा ने आंखों में आंसू भर कहा—बहुत हुआ देव, बहुत हुआ। अधम, क्षुद्र, मर्त्य प्राणियों पर दया करो, नर-संहार रोको। निष्पाप कुमारियां लाज खो रही हैं; स्नेहवती माताओं की गोद सूनी हो रही है। नर-रक्त की नदी पंचनद की हरी-भरी भूमि को लाल बना रही है।

परन्तु त्रिशूली ने वाम हस्त ऊंचा करके डमरू वाद्य किया!

डम-डम-डम-डम

डमर-डमर-डम

डमर-डमर

डमर-डमर

डम-डमर-डमर-डम

डमर-डमर।

और फिर हुंकृति करके एकवारगी ही विष-वमन किया।

उमा मूछित होकर रत्न-सिंहासन से नीचे गिर गई। रौद्रगण विक्षिप्त हो दिल्ली पर दौड़ पड़े।

अरर-धम

अरर-धम

धम-धम

अग्नि-स्फुलिंग, लोहवर्षण, मृत्यु, लूट, अमर्ष, पाप और ताप का सम्पूर्ण विस्फोट हो गया। लाशें गली-कूचों में सड़ने लगीं। चांदनीचौक श्मशान हो गया। दुर्गन्ध, अराजकता, अंधेर और पाप के सब रूप प्रकट हुए। सड़कर फूली हुई लाशों पर मक्खियां भिनभिनाने लगीं। कुत्ते सियार, गृद्ध, लालकिले के चारों ओर घूमने लगे। यमराज भैंसे पर सवार होकर मृत्यु के आखेट का लेखा-जोखा रखने आ पहुंचे। महामाया ने कालचक्र वेग से घुमाया, देव-दानव सब आकुल, भीत और आतंकित हो गए।

देवराज सब देवों के परामर्श से सतीश्वरी महामाया के मणिमहल की ड्योढ़ियों पर पहुंचे। और मस्तक झुकाकर बोले—देवि, देवाधिदेव धूर्जटि एक अधम तस्कर के दोष से मर्त्यलोक के लक्ष-लक्ष मानवों का विध्वंस कर रहे हैं! अब आप ही सहायता कीजिए देवि, आप ही की यह सृष्टि है; आप ही यदि इसे विध्वंस करेंगी तो कैसे होगा, कृपा कर कालचक्र को रोकिए, देवि महामाया!

महामाया ने हंसकर कहा—एक व्यक्ति के दोष से नहीं देवराज! सभी का दोष है। उन्होंने अपना जीवन अपने ही में केन्द्रित कर लिया है, वे आत्म-पुजारी, रूढ़ि के दास और वासना के पुजारी हो गए हैं। कर्तव्य-पथ को उन्होंने त्याग दिया है। वे मानव-कुल-कलंक हैं, मरें वे सब, देवाधिदेव की आज्ञा से मैं नवीन सृष्टि-रचना करूंगी।

इन्द्र ने नतजानु होकर कहा—प्रसन्नमयी, ऐसा नहीं है। लोक गतानुगतिक है, जन-जीवन के रथ-चक्र को घुमाकर कर्तव्य के पथ पर लाने का भगीरथ प्रयत्न कुछ जन कर रहे हैं। आप काल-चक्र को रोकिए, देवि!

महामाया ने झांककर चांदनीचौक की ओर देखा—गन्दी और अवांछनीय भीड़ भरी थी। भद्र-अभद्र सब जन भीड़ में आ-जा रहे थे। सड़कों पर खोंचे वालों, कचालू वालों और अंडे वालों का जमघट था। खुले मैदान में मुर्गी

के अंडे पक रहे थे। लोग अंट-शंट खा रहे थे। बहुत लोग शराब पी-पीकर अश्लील गीत गा रहे थे। बहुत से स्त्रियों को देख-देख ठिठोली कर रहे थे। बहुत से झूठे सौदे कर रहे थे। बहुत से जेब काट रहे थे—कबाब पक रहे थे, मांस के जलने की चिरांध फैल रही थी, बहुत लोग खड़े-खड़े गन्दे खाद्य खा रहे थे, सड़कों पर गन्दगी और कूड़ा-कर्कट का अम्बार लगा था। गाड़ियों में भीड़, धक्कम-धक्का, गाली-गलौज, झूठ, बेईमानी, दगाबाजी, अव्यवस्था, अशौच।

महामाया ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा—मैं महामारी को भेजूंगी, दिल्ली के ये भेड़िए और सूअर पटापट मरेंगे। ये क्या सभ्यता, व्यवस्था, स्थैर्य, शिष्टाचार और संयम सीखेंगे ही नहीं? इतना खोकर भी, इतना भोगकर भी!

क्रोध से महामाया का मुंह विवर्ण हो गया।

देवराज ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं, नहीं देवि, अभी आप निर्णय न करें, देखिए, इधर क्या हो रहा है?—देवराज ने एक ओर उंगली उठाई। महामाया ने देखा—

एक हिम-धवल शय्या पर एक क्षीणकाय कृष्ण वर्ण वृद्ध चुपचाप लेटा था, और शय्या को घेरे कुछ भद्रजन आंखों में आंसू और अनुनय भरे उसकी ओर ताक रहे थे। एक लम्बे कद के श्वेतकेशी छरहरे तरुण ने कहा—

'बापू, हम सब कुछ करेंगे, आप अपने जीवन की रक्षा कीजिए।'

बापू ने कहा—भद्र, मेरा जीवन तो मेरे लिए है ही नहीं, जिनके लिए है, वे ही इसे नष्ट भी कर सकते हैं। परन्तु मैं मानुष-द्वेष सह नहीं सकता। सब भाई हैं, एक भाई दोष करे तो दूसरा क्षमा कर दे, तभी उसके दोष का निवारण हो सकता है।

'ऐसा हम कर रहे हैं बापू!' एक बूढ़े मुसलमान ने आगे आकर कहा।

बापू ने मुस्कराकर उसका हाथ प्रेम से पकड़ लिया। फिर कहा—कीजिए मौलाना, कीजिए, और जब आप सफल होंगे तो मैं उपवास त्याग दूंगा। मैं चाहता हूं विश्वशान्ति, अटूट प्रेम, दृढ़ विश्वास और हार्दिक सहयोग। इसीके लिए मैंने जीवन धारण किया और इसीके लिए मैं जीवन की बलि दूंगा।

महामाया ने मृदु हास्य से कहा—यह कौन देवभक्त है, देवराज?

'गांधी है, प्रसन्नमयी! ये मानवता की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे रहे हैं, और ये इनके साथी जवाहर, प्रसाद, आजाद, सरदार, राजाजी

और परिजन।'

'साधु, देवराज साधु; तो तुम गांधी को लेकर देवाधिदेव की सेवा में जाओ। आज अपराह्न में मैं उनकी आत्मा को दिव्य प्रकाश दूंगी।'

देवराज ने महामाया को प्रणाम किया और मर्त्यलोक को प्रस्थान किया।

उसी दिन, अपराह्न में नई दिल्ली में बिरला-भवन के मुक्त उद्यान में जब शत-सहस्र जन आबाल-वृद्ध श्रद्धा आंचल में भरे, विनयावनत तपोदग्ध द्वितीया की क्षीण चन्द्रकला की भांति उस जीवित सत्त्व का अभिनन्दन कर रहे थे—जो उनके बीच हास्य की ज्योत्स्ना बखेरता हुआ हिम-धवल पीठ की ओर देव-वन्दना के लिए जा रहा था—तीन बार ज्योति-किरण फटी और तीन ही बार महानाद हुआ। उस महानाद में एक स्वरघोष भाग्यशालियों ने सुना—हे राम!

महामाया ने माया विस्तार की और नश्व-अविनश्वर का हठात् विच्छेद हो गया, कोटि-कोटि मर्त्य प्राणी विमूढ़ हो आकुल हो उठे। मर्त्य लोक नयन-नीर से प्रक्षालित हुआ। महामाया के प्रसाद से गांधी हिमकूट पर कैलाश के हीरक द्वार पर देवराज इन्द्र के साथ जा पहुंचे। हीरक द्वार खुल गया, कुमार कार्तिक आनन्द से नृत्य करके नाचने लगे। कैलाश उज्ज्वल आभा से आलोकित दिव्य ज्योति से आपूरित हो गया।

कैलाशी ने शुभ दृष्टि डाली, कहा—कौन है यह हिम-धवल शुभ्रकेशी?'

'गांधी है देव।'

देवाधिदेव मुस्करा उठे, आप ही आप उनका तृतीय नेत्र निमीलित हो गया, उच्च हिमकूट पर बासन्ती वायु बहने लगी, विविधवर्ण पुष्प खिल गए, मकरन्द-लोभी भ्रमर गूंजने लगे, कोयल कूकने लगी, मलय-मारुत का सुखस्पर्श पा कैलाशी आनन्द-विभोर हो गए। बादलों को छिन्न-भिन्न करती हुई उमा रत्न-शृंगार किए आ उपस्थित हुईं।

कैलाशी ने धीरे से त्रिशूल नीचे रख दिया। डमरू अपने स्थान पर अवस्थित हुआ। शुद्ध शिव-रूप होकर धूर्जटि ने कहा—

'हे कालपुरुष, तू जयी हो। आ मेरे शीर्षस्थान पर आसीन रह, और वहीं से अनन्त विश्व पर जब तक भूलोक में काल का आयु-दण्ड है, तू ही चन्द्रकला के स्थान पर शीतल स्निग्ध-शुभ्र-शिव ज्योत्स्ना की मर्त्य प्राणियों पर वर्षा करता रह! मर्त्य प्राणियों पर वर्षा करता रह!'

# जीवन्मृत

यह कहानी अब से कोई पच्चीस वर्ष पूर्व लिखी गई थी। कहानी बहुत बजनी है। इसमें एक अत्यन्त खतरनाक भेद छिपा हुआ है जिसे उस समय तीन व्यक्ति जानते थे और अब केवल एक व्यक्ति ही उसका जानने वाला जीवित है। इस भेद का सम्बन्ध भारत के एक बहुत भारी असफल विप्लव से है। कहानी में कुछ उलझनें थीं, कुछ ऐसी बातें थीं जो लिखी नहीं जा सकती थीं, छोड़ी भी नहीं जा सकती थीं। इन उलझनों के कारण ही प्रतिदिन पचास पृष्ठ लिखने की सामर्थ्य रखने वाले लेखक को यह कहानी पूर्ण करने में नौ मास लगे थे। फिर भी कहानी चांद में छपते ही चांद की दो हजार की जमानत जब्त हो गई थी। कहानी को पढ़कर तत्कालीन लाहौर हाईकोर्ट के प्रसिद्ध कौंसिल (बाद में जस्टिस और फिर कस्टोडियन-जनरल) श्री अछरूराम ने आश्चर्यचकित होकर ४ पृष्ठों के पत्र में लेखक को लिखा था कि क्या वास्तव में कल्पना सत्य की ऐसी हूबहू तस्वीर खींच सकती है? कहानी-नायक के श्री अछरूराम बाल-सहचर रहे हैं। उस व्यक्ति के चरित्र के वे प्रत्यक्ष द्रष्टा है।

कहानी में कुछ टैक्नीकल विचित्रताएं भी हैं। पात्रों के नाम गायब हैं, कथानक नहीं है केवल उसका आदि-अन्त है। कहानी की गति अतिशय गम्भीर है। वर्ण्य प्रच्छन्न हैं, वे साधारण पाठक की समझ से परे हैं। मानवीय ऐषणाओं और मनोविकारों को मूर्त करने में कलाकार ने परिश्रम की पराकाष्ठा कर दी है। कहानी उच्चतम मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

पन्द्रह वर्ष का लम्बा काल एक भयानक दुःस्वप्न की तरह व्यतीत हो गया। एक-एक क्षण, एक-एक श्वास, जीवन की एक-एक घड़ी, हजारों बिच्छुओं की दंश-वेदना में तड़प-तड़पकर व्यतीत हुई है। वह कल्पना और मानवीय विचार-धारा से परे का दुःख न कहना, स्मरण न करना ही अच्छा है। मानो मैंने एक महान् पवित्र व्रत लिया था, जो एक प्रकृत योद्धा को सजने योग्य था, जिसके लिए चरम कोटि के त्याग, साहस, सहिष्णुता, वीरता और प्रतिभा एवं ओज की आवश्यकता थी। अपनी शक्ति और व्यक्तित्व पर बिना ही विचार किए मैं रण-

पोत पर सैनिक गर्व से उद्ग्रीव होकर चढ़ गया। सहस्रावधि नर-नारियों ने हर्ष और आशा में भरकर उल्लास प्रकट किया, साधुवाद दिए, पर मानो प्रशान्त महासागर में एक साधारण चक्कर खाकर ही वह दृढ़ पोत जल-मग्न हो गया और देखते ही देखते उसका अस्तित्व विलीन हो गया। रह गया अकेला मैं—साधन, शक्ति और अवलम्ब से रहित, एकमात्र तख्ते के एक टुकड़े के सहारे तैरता हुआ। अन्ध निशा में, एक सुदूर तारे के क्षीण प्रकाश में, उस दुर्धर्ष महाजल-राशि पर, जीवन के मोह के कच्चे धागे के आसरे भटकता रहा। १५ वर्ष तक अनन्त हिंस्र जीव-जन्तुओं का आक्रमण, हड्डियों में कम्प उत्पन्न करने वाला शीत और नस-नस से प्राण खींच लेने वाली पर्वत-समान जलराशि की उत्तङ्ग तरी के थपेड़े उस असहाय अवस्था में सहन करता रहा। १५ वर्ष तक! और कितना भयानक, कितना रोमांचकारी, कितना अद्‌भुत, यह जीवन का मोह रहा! ये प्राण कितने बहुमूल्य प्रमाणित हुए। क्या पृथ्वी पर और कोई मनुष्य भी इस तरह जिया होगा?

प्रकृति की एकान्त स्थली पर मैंने अपना शैशव और यौवन का प्रारम्भ व्यतीत किया। वहां एक ही रंग था—त्याग, शान्ति, तप और निर्वासना। जब तक शैशव पर विधान का शासन रहा, मेरे बाहरी पीत वसन और अन्तस्तल का भी एक रंग रहा, पर यौवन के विकास ने बाहर-भीतर में भेद डाल दिया। हां, संसर्ग तो कुछ न था—जो था साधारण—परन्तु नैसर्गिक वासनाओं ने प्रस्फुटित होते-होते उस त्याग, तप और निर्वासना—सबसे विद्रोह करना शुरू कर दिया। मैं ब्रह्मचारी था। उस तपस्थली पर मेरे जैसे बहुत थे, पर हमारे गुरु और उपजीवी ब्रह्मचारी न थे। हम नैसर्गिक रह ही न सके, हमारी सादगी में भी एक शान थी, हमारे ब्रह्मचर्य में भी एक फैशन था, हमारे त्याग-तप में भी प्रदर्शन था। जगत् के सर्व-साधारण कैसे जीवन के पथ पर बढ़ते हैं, मैं नहीं जानता; पर हम सभी में हास्य, उल्लास, गोपनीय वासनाएं तथा तमोमयी भावनाएं थीं। उस आश्रम में मैं ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हूं। मुझे सर्वश्रेष्ठ होना ही चाहिए—यह मैं शीघ्र ही समझ गया। कैसे? यह नहीं बताऊंगा। आचार्य का पुत्र था। राजपुत्र तो जन्म ही से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इसमें अनुचित क्या? मैं सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ पुरुष होकर उस दुर्धर्ष आश्रम से बाहर आया।

संसार कैसा सुन्दर था ! मैं देखते ही मोहित हो गया। वह मेरे ऊपर श्रद्धा, आशा और प्रेम बिखेर रहा था। मैंने जाना भी न था कि मैं जीवन में इतना आदर पाऊंगा। वह आशातीत आदर पाकर मैं गर्व से नाच उठा। मैंने अच्छी तरह अपनी मानसिक दुर्बलताएं अपने पीले उत्तरीय में लपेटकर छिपा लीं और मैं असाधारण पुरुष की तरह खुले संसार में पैर के धमाके से हलचल मचाता हुआ आगे बढ़ चला।

स्त्री को सदैव दूर से देखा और अनुमान से समझा था। आश्रम में स्त्री-मात्र दुष्प्राप्य थी। फिर मैं तो मातृहीन बालक ठहरा। परन्तु सदैव ही मैंने स्त्री-जाति के सम्बन्ध में विचारा। फिर भी वह क्या वस्तु है, कुछ समझा नहीं।

पर, विशाल जगत् में आते ही स्त्री भी मिली। अद्भुत वस्तु थी। इसे देख, फिर और किसीको देखने की इच्छा ही न होती थी। मैं जगत् को भूल गया। स्त्री-शरीर, स्त्री-हृदय, स्त्री-भावना, यह मेरा खाने और बिखेरने का अब विषय रहा, परन्तु जीवन का एक नूतन अनिर्वचनीय आनन्द तो अभी मिलना शेष ही था। वह मुझे शिशु कुमार के अवतरण होते ही मिला। आह ! जगत् के पर्दे के भीतर क्या-क्या छिपा है, और उसे भाग्यवान् किस तरह अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं, यह मैं क्या कभी विचार भी सकता था ?

वाह रे मेरा सुखी जीवन और मेरा नवीन संसार ! मैं सोता था हंसकर, जागता भी था हंसकर ! शिशु कुमार और उसकी माता, ये दोनों ही मेरे हास्य के साधन थे। शीतकाल के प्रभात की सुनहरी धूप की तरह वह मेरा हास्य मुझे कैसा सजता था ! आज १५ वर्ष से मैं उस अतीत हास्य की कल्पना करके भी एक सुख पाता हूं।

देश मेरा प्राण और देश-सेवा मेरा व्रत था। यह बात कुछ मेरे मन के भीतर नहीं उपजी, प्रत्युत् मुझे बचपन से सिखाई गई थी। उस आश्रम की उन अति गरिष्ठ पुस्तकों के अलावा—जिनसे सदैव भयभीत रहने पर भी मेरा पिण्ड नहीं छूट सका था—यही एक प्रधान विषय था, जिसे आश्रम के गुरु से शिष्य तक भिन्न-भिन्न शब्दों और शैलियों में सोचते-विचारते थे।

देश ही मातृभूमि है, वह मातृभूमि-माता जन्मदात्री माता से भी पूज-नीय है। वही मातृभूमि विदेशी अत्याचारियों द्वारा दलित है। उसका उद्धार करना हमारे जीवन का एक व्रत है। बस, यही हमारे देश-प्रेम की रूपरेखा

थी। मातृभूमि का उद्धार कैसे किया जाए, यह मैंने न कभी सोचा, न समझा, न किसीने मुझे बताया ही। मैं मातृभूमि का उद्धार करूंगा, यह मैं चिल्लाकर कहता। पर किस तरह, यह नहीं जानता था। और इसीलिए मैं अब तक समय-समय पर चिल्ल-पुकार करने के सिवा और कुछ कार्य इस विषय में कर भी नहीं सका। मैंने समझा, यही यथेष्ट है। इसे करने में धन भी मिला और यश भी। रोज़गार-धन्धे को ढूंढ़ने की दिक्कत भी न उठानी पड़ी, यही चिल्ल-पुकार करना मेरा व्यवसाय हो गया। मैं अब जिह्वा और लेखनी दोनों से यही चिल्लाया करता। निदान, देश पर मरने वालों की फेहरिस्त में मेरा नाम दूर ही से चमकने लगा। मेरी स्त्री हंसती थी। वह मुझे जीवित रखना चाहती थी, मारना नहीं। मैं कह दिया करता—यह तो कहने की बातें हैं। मरने का ऐसा यहां कौन सा प्रसंग है? बस, यही उसके हास्य का विषय था। शिशु कुमार की बात कैसे भूली जाए? हंसने में चार चांद तो वही लगाता था।

पर मैंने जो कुछ समझा वह मेरी जड़ता थी। देश का अस्तित्व एक कठोर और वास्तविक अस्तित्व था। उसकी परिस्थिति ऐसी थी कि करोड़ों नर-नारी मनुष्यत्व से गिरकर पशु की तरह जी रहे थे। संसार की महाजातियां जहां परस्पर स्पर्द्धा करती हुई जीवन-पथ पर बढ़ रही थीं, वहां मेरा देश और मेरे देश के करोड़ों नर-नारी केवल यह समस्या हल करने में असमर्थ थे कि कैसे अपने खण्डित, तिरस्कृत, अवशिष्ट जीवन को खतम किया जाए? देश-भक्त मित्र मेरे पास धीरे-धीरे जुटने लगे। उन्होंने देश की सुलगती हुई आग का मुझे दिग्दर्शन कराया। मैंने भूख और अपमान की आग में जलते और छटपटाते देश के स्त्री-बच्चों को देखा। वहां करोड़ों विधवाएं, करोड़ों मंगते, करोड़ों भूखे-नंगे, करोड़ों कुपढ़-मूर्ख और करोड़ों ही अकाल में काल-ग्रास बनते हुए अबोध शिशु थे। मेरा कलेजा थर्रा गया। मैं सोचने लगा, जो बात केवल मैं कहानी-कल्पना समझता था, वह सच्ची है, और यदि मुझमें सच्ची गैरत थी, तो मुझे सचमुच मरना ही चाहिए था। मैं भयभीत हो गया। मैं कह चुका था कि मैं मरने से पीछे हटने वाला नहीं हूं। अब क्या करता? मैं बिलकुल पशु तो नहीं, बेगैरत भी नहीं, परन्तु मैं मरने को तैयार नहीं था। फिर भी मैं ज़बान लौटा न सका, मेरी वाग्धारा और लेखनी वैसी ही चलती रही। वास्तविकता का ज्यों-ज्यों दिग्दर्शन मुझे हुआ, वह उतनी ही अधिक मर्म-स्पर्शिनी हो गई। बोलना और

लिखना मैंने सीखा था, फिर वह मेरा स्वाभाविक गुण था । शीघ्र ही मेरी सोलहों कलाएं पूर्ण हो गईं । मैं देश में सितारे की भांति चमकने लगा । मेरा सम्मान चरमकोटि पर पहुंचा; पर मेरा हास्य, मेरा सुख सदा के लिए गया । मैं सदा ही शङ्कित, थकित और चिन्तित रहता, मानो मृत्यु परछाईं की तरह सदा मेरे पीछे रहती थी । मैं उससे बहुत ही डरता था । अब मृत्यु ही मेरे हृदय और मस्तिष्क के विचारने का विषय रह गई, परन्तु क्या कहूं ? इस दुःख में भी एक वस्तु थी, जो प्राणों से चिपट रही थी—वही स्त्री और शिशु कुमार ।

राजा साहब को मैंने कभी नहीं समझा, पर उनसे कभी डरा भी नहीं । उनके नेत्र अद्भुत थे, और देखने का ढंग और भी अद्भुत—छोटा सा मुख, बड़ी-बड़ी मूंछें, उसपर भारी सा हम्मामा, और काले चश्मे से ढकी हुई वे अद्भुत रहस्यमयी आंखें । सभी कहते थे, राजा साहब से हम डरते हैं, पर मैं कभी न डरा । वे आते ही सदैव पहले मुझे प्यार करते, तब पिताजी से बात करते थे । वे पिताजी के अनन्य भक्त थे, पिताजी के दीक्षा लेने के पूर्व से ही। उनके संन्यस्त होने के बाद तो वे उनके शिष्य ही हो गए थे । बहुधा उनमें एकान्त में बातचीत होती, घण्टों और कभी-कभी दिनों तक । वे खाना-पीना-सोना भी भूल जाते । तब भी मैं उनके विषय को न समझ सका था और अब, इतना बड़ा होने पर भी, नहीं समझ सका । एक ही बात प्रकट थी कि वे बड़े भारी देशभक्त हैं । मैं भी देशभक्त था । बस, यही हमारा-उनका नाता था । वह धीरे-धीरे बढ़ा । पहले वह जैसे मुझे प्यार करते थे, वैसे अब वे शिशु कुमार को प्यार करने लगे यह बात मुझे और मेरी पत्नी को बहुत भाती थी । पर वे कभी-कभी शिशु कुमार को छाती से लगाकर मेरी ओर ऐसी मर्म-भेदनी दृष्टि से ताकते थे कि मैं घबरा जाता था । तभी तो मैं कहता था कि वह दृष्टि बड़ी अद्भुत थी । उस समय मैं उसे समझा नहीं, समझा तब जब मैं स्त्री, पुत्र, प्राण, जीवन सब कुछ उन्हें देकर महापथ पर महायात्रा के लिए अग्रसर हुआ । आज वे आंखें १५ वर्ष से प्रतिक्षण मुझे घूर रही हैं । उनसे एक क्षण भी बचना मेरे लिए अशक्य है ।

राजा साहब ने मुझसे जिसलिए परिचय बढ़ाया था उसका मुख्य कारण धीरे-धीरे उन्होंने खोला । मैं ज्यों-ज्यों सुनता था, भयभीत होता, पर यत्न से भय को छिपाकर उत्साह प्रदर्शित करता था । फिर भी मालूम होता, मानो वे

सब समझ रहे हैं। वे थोड़ी-थोड़ी बातें करते और चले जाते। एक दिन हठात् मुझे बुलाकर उन्होंने कहा—क्या तुम अपने पिता के सच्चे पुत्र और साहसी देश-सेवक हो ? मैं 'न' कहता किस तरह ? मैंने सिंह-गर्जन की तरह हुङ्कार भरी। राजा साहब ने मुख्य उद्देश्य बता दिया। मैं सन्न हो गया। वे मृत्यु को जेब में लिए फिरते थे, अपने लिए भी और मेरे लिए भी। उस महावीर के सम्मुख कायर बनना मेरे लिए शक्य न रहा। मैं 'हां' करता गया। स्वामीजी के सम्मुख भी 'हां' की। स्त्री ने हाहाकार किया, परन्तु एक अपूर्व गर्व-भावना मन में आ गई थी। मैं पीछे न हटा। मैंने अपना जीवन राजा साहब के हाथों सौंप दिया। फिर तो मैं इस तरह उड़ा, जैसे आंधी से उड़ता हुआ और डाल से टूटा हुआ सूखा पत्ता।

मैंने अपनी आत्मा से अधिक उसपर विश्वास किया था। उसके पिता मेरे गुरु और परम श्रद्धास्पद थे। वे अपने जीवन के प्रारम्भ से ही देश के एक अप्रतिम सेवक रहे, उनकी सन्तान कैसे देश और जाति की मित्र न होगी ? मैं इसके विपरीत सोच ही न सका। इस प्रसङ्ग से प्रथम कई वर्ष से मैं उससे परिचित था। पत्र-व्यवहार और मुलाकात सभी में वह एक उत्कट देशभक्त, वीर युवक ध्वनित होता रहा। जब मैंने उससे अपना गम्भीर अभिप्राय निवेदन किया, तो वह एकटक मेरे मुख को देखता रह गया। उसके होंठ और कण्ठ सूख गए। बड़ी चेष्टा करके उसने कहा—श्रीमन्, आपने राज्य और रियासत को धूल के समान त्याग दिया; राज्य, भोग और ऐश्वर्य से दूर हो गए; दिन-रात देश और जाति की ध्वनि आपके रोम-रोम से निकलती है। अब आप क्या सचमुच प्राणों की बाज़ी भी लगा देने को तैयार हैं ?

मैं तो तैयार ही था। बिना एक क्षण रुके मैंने कहा—हां, हां, अब प्राणों को छोड़कर मेरे पास और रह ही क्या गया है ? यह भी जिसकी धरोहर हैं, उसे जितनी जल्दी सौंप दिए जाएं उतना ही अच्छा। इस शरीर को इन प्राणों का भार अब सह्य नहीं है। यह गुलामी, यह काला जीवन, हमारा, हम समस्त भारतवासियों का, कैसा है, समझते हो ? जैसे, एक भेड़ के बच्चे का उस बाड़े के भीतर जिसके फाटक पर शिकारी कुत्तों का पहरा लग रहा है। इस पहरे के भीतर राजा रहा तो क्या, प्रजा रहा तो क्या, जीवित रहा तो क्या और मर

गया तो क्या ? बोलो तुम क्या कहते हो ?

उसकी आंखों से झर-झर आंसू टपक गए। उसने गद्‌गद कण्ठ से कहा—श्रीमन्, मैं भी कैसा अपदार्थ हूं ! मैं अपनी स्त्री-बच्चे को त्यागने में कष्ट पा रहा हूं, परन्तु आप···ओह ! आपके सम्मुख मैं लज्जित होने का कारण न पैदा होने दूंगा। मैं सोचूंगा, कल इसी समय मैं आपको वचन दूंगा। सिर्फ कल भर आप और रहने दीजिए।

'कुछ हर्ज नहीं, पर समझ लेना, मृत्यु की पद-पद पर आशङ्का है। भय और विपत्ति के बादलों में जाना होगा। ज़रा भी विचलित हुए, ज़रा भी स्त्री-बच्चों के मुख का स्मरण आया, ज़रा भी मन में भीरुता आई, तो देश अतल पाताल में गया ही समझना, साथ ही पचासों वीर मित्रों की जान जाएगी। सब कुछ मिट्टी में मिल जाएगा।'

'श्रीमन्, क्या आप नहीं जानते, मैं किसका पुत्र हूं ?'

'जानता हूं, पर तुम्हें स्वयं भी कुछ होना चाहिए।'

'तब श्रीमान् का मुझपर विश्वास नहीं ?'

'विश्वास ? विश्वास अपनी आत्मा से भी अधिक है। मैं अपने विश्वास से बेफिक्र हूं। मैं यह चाहता हूं कि तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास हो।'

वह अधोमुख होकर सोचने लगा। मैंने मन में वेदना अनुभव की। लाखों युवकों में मैंने इसे चुना है, क्या मैं धोखा खाऊंगा ?

मैंने उसे विदा किया, वह चला गया।

दूसरे दिन ठीक समय पर मिलते ही उसने कहा—श्रीमन्, मैं तैयार हूं। उसने अपना हाथ बढ़ा दिया। मैं घोर संदिग्ध अवस्था में था। क्षण भर मैं उसे देखता रहा। क्या यह सच है ? महान् विचारधाराओं के कार्य-रूप में परिणत होने का समय क्या आ गया ? ओह प्यारे भारतवर्ष !···ठहरो। मैंने खड़ा होकर उसका स्वागत किया। मैं कुछ बोल न सका। मेरे नेत्रों में आंसू थे। कुछ ठहरकर मैंने कहा—प्यारे युवक, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, प्राण रहते तुम्हारी रक्षा करूंगा। प्रत्येक खतरे को अपने सिर पर लूंगा। तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करूंगा, परन्तु फिर भी तुम्हें प्रतिज्ञा करनी है कि यदि कुअवसर उपस्थित हो तो अपने प्राणों को, शरीर को अपदार्थ समझोगे। अभी तुम्हारे सम्मुख जो भयानक गम्भीर भेद प्रकट होंगे, उन्हें तुम्हारे हृदय से बाहर तब तक

न आना चाहिए, जब तक कि तुम्हारे हृदय को चीरकर टुकड़े-टुकड़े न कर दिया जाए। तुम सदा यह समझकर अपने जीवन को बलिदान करने के लिए तैयार रहना कि इससे सैकड़ों सच्चे वीरों के जीवन की रक्षा होगी, जो अब नहीं तो फिर कभी न कभी देश का उद्धार करेंगे। युवक के नेत्रों में स्थिरता थी। उसने सहज-शान्त स्वर में कहा—श्रीमन्, हर तरह परीक्षा कर लें।

मैंने कहा—तुम्हारे पिता की भक्ति मेरे हृदय में धरोहर है। मैंने उनसे आदेश ले लिया है। तुम्हारी यही परीक्षा काफी है। तुम केवल मुख से एक बार कह दो कि तुम भेदों को प्राणों से बढ़कर समझोगे।

'समझूंगा।'

'विपत्ति आने पर तुम स्थिर रहोगे ?'

'उसी तरह, जैसे पत्थर की मूर्ति रहती है।'

'यदि तुम्हें मृत्यु का आलिङ्गन करना पड़े ?'

'तो मैं उसे अपने पुत्र की तरह गले लगाऊंगा।'

'यदि तुम्हें भेद लेने के लिए असह्य वेदनाएं दी जाएं ?'

'मैं धर्म से शपथपूर्वक कहता हूं कि मृत्यु-पर्यन्त उन्हें सहन करूंगा।'

'यदि प्रलोभन दिए जाएं ?'

'वे मुझे विचलित नहीं कर सकेंगे।'

युवक के होंठ कांपे। नेत्रों की पुतलियां चलायमान हुईं। मैंने अधीर होकर कहा—प्रलोभन ? क्या प्रलोभन तुम्हें चलायमान न कर सकेंगे ?

नहीं श्रीमन्, अभी मैं बड़े से बड़े प्रलोभन को त्याग आया हूं।'

मुझे सन्तोष न हुआ। मैं उठकर टहलने लगा। मैं सोचने लगा—वेदना, यातना और मृत्यु, ये एक ओर हैं, परन्तु प्रलोभन ? ओह, इसका अन्त नहीं। यह युवक वेदना सहेगा, मृत्यु का आलिङ्गन भी करेगा। मैं विश्वास करता हूं, पर प्रलोभन ? ओह, विश्वास नहीं होता। शायद उसे स्वयं भी विश्वास नहीं।

युवक ने मेरे पास आकर कहा—श्रीमान् क्या विश्वास नहीं करते ?

'मेरे प्यारे मित्र, मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा हूं। मुझे विश्वास करना चाहिए।' मैंने युवक को छाती से लगा लिया। मैंने कहा—लो, अब हम-तुम एक हुए, एक महान् कार्य की पूर्ति के लिए। यदि परमेश्वर को अभीष्ट हुआ तो हम मरकर भी अमर होंगे। हम दोनों करोड़ों मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली हैं।

हम पृथ्वी की महाविजयिनी शक्ति के सम्मुख चल रहे हैं—मरेंगे या विजयी होंगे।—आवेग में ही ये शब्द मुख से निकल गए। उसके बाद मेरा बाहुपाश कब शिथिल हुआ, कब वह युवक खिसककर मेरे पैरों में आ गिरा, मुझे स्मरण नहीं

जगत् में असाधारण होना भी कैसा दुर्भाग्य है! पृथ्वी की असंख्य आंखें उसीके छिद्रान्वेषण में लगी रहती हैं। वह यदि जगत् के लिए मरता है, तो जगत् की दृष्टि में यह उसका साधारण सा कर्त्तव्य है, किन्तु यदि वह एक क्षण भी अपने लिए जीता है तोमा नो पाप का पर्वत उसके सिर पर लद जाता है। क्या यह दुर्भाग्य नहीं ? अरे भाई, सभी कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, नर-नारी अपने ही लिए तो जीते हैं ? अपने क्षण भर के सुख और जीवन के लिए अनगिनत प्राणियों को नष्ट कर डालते हैं। कोई भी तो उनसे कुछ नहीं कहता। फिर हमपर ही यह अग्नि-वर्षा क्यों ? मैंने सब कुछ त्यागा। जीवन के कष्ट और आपत्तियों की क्या कहूं, अब तो सबको पार कर गया। अब उनकी स्मृति से क्यों मन को सन्ताप दूं ? परन्तु शरीर और हृदय, ये जब तक जीवन-तत्त्व से संयुक्त हैं, तब तक तो प्रकृत संन्यस्त में सदैव कमी रहेगी ही। यह मेरा अब तक का अनुभव है।

मैं संन्यस्त हुआ सही, पर पिता का हृदय कहां रक्खा जाए ? पुत्र तो आत्मा और रक्त-मांस में से भाग लेकर बना था, उसका मोह कहां तक त्यागूं ? कहां तक निर्मोही बनूं ? उसकी मां तो उसे जन्म देकर ही मर गई थी। उसने अल्प जीवन में जो कुछ दिया, अब भी वह अतीत के सब सुखों के ऊपर नृत्य कर रहा है। उस मधुर स्मृति की एक अमिट रेख यह पुत्र था। इसे मैंने हाथों-हाथ पाला और उसे, जैसा कि मैंने चाहा था, संसार के सामने, क्रान्ति के नव्य कुमार के रूप में पेश किया। लक्षावधि देशवासी उसपर नाज़ करते थे और मैं अपनी सफलता पर मुग्ध होता था, उसी तरह जैसे किसान अपने कड़े परिश्रम से सींची हुई खेती को पकी देखकर मुग्ध होता है।

फिर भी मैं राजा साहब के वचन को न टाल सका। उनके भयानक साहस से मैं अवगत था। उनकी प्रत्येक गतिविधि से मैं परिचित था। पुत्र के अनिष्ट का भय पद-पद पर स्पष्ट था। किन्तु मुझे सहमत होना पड़ा। इसके अनेक

कारण थे। देश के नाम पर बलिदान होने की मैं स्वयं उच्चस्वर से पुकार कर चुका था, पुत्र को भी वही शिक्षा दी थी। अब उसे उस मार्ग से रोककर क्या राजा साहब और अन्य साथियों की दृष्टि में अपदार्थ बनता? लड़के में भी साहस और उत्साह था। पर उसके मर्मस्थल की दुर्बलता मैं जानता था। विलासिता उसे गिराएगी, मुझे भय था। उसने वस्तुस्थिति को समझा ही नहीं। जब उसने स्वयं नवजात पुत्र और पत्नी का विसर्जन कर उस भयानक यात्रा और कठोर कर्तव्य-पथ पर राजा साहब का अनुकरण करने का अपना इरादा प्रकट किया, तब मैं स्तब्ध रह गया। मैंने कहा—पुत्र, राजा साहब का मैं चिर-सहयोगी हूं, परन्तु केवल मुख से। तुम तो इतने उत्साह से यह बात कह रहे हो; कदाचित् तुम अवश्यम्भावी विपद् से अवगत नहीं। कार्य की गुरुता और कठिनाई तुम यथावत् नहीं समझ रहे हो। यह तुमसे होने वाला कार्य नहीं, महा-दुस्साध्य है। यह लौहपुरुषों का महकमा है। इसके लिए वे पुरुष चाहिएं जो लोहे का शरीर, लोहे की आत्मा और लोहे का हृदय रखते हों। मेरे बेटे, मैं तुम्हें जानता हूं। तुम वह नहीं हो। घर में बैठो, बैठे-बैठे जो बने करो। देश और जाति के लिए यही यथेष्ट है।

उसने एक न सुनी। वह मूर्ख मुझ पिता के सम्मुख भी कायर बनना न चाहता था। उसने अस्वाभाविक करारे स्वर में हठ प्रदर्शन किया और मुझे सहमति देनी पड़ी।

वही हुआ, जिसका भय था। पृथ्वी के उस छोर पर वे विपत्ति के अग्नि-समुद्र में बड़े कौशल और सावधानी से घुस रहे थे। अरे, जब अग्नि-समुद्र में घुसना था, फिर कौशल क्या? वह फंस गया, राजा साहब बाल-बाल बचकर निकल भागे। मैं यहीं बैठा उनकी गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। महासमर की प्रचण्ड ज्वालाएं यूरोप को भस्म कर रही थीं। उसकी चिनगारी कब मेरी कुटी को भस्म कर देगी, यह कहना शक्य न था। यूरोप के दैनिक पत्रों को देखने के अतिरिक्त मैं और कुछ कर ही न सकता था। मन ही न लगता था। उसके उस पत्र पर सरकारी गुप्त विभाग के सर्वोच्च अधिकारी की एक टिप्पणी थी। उससे समझ गया, पुत्र की मृत्यु का मूल्य बहुत अधिक है। वह मूल्य मेरे पास था तो, पर मैंने बहुत चेष्टा की कि प्राण देकर उस मूल्य को न दूं। पर हाय! अवसर ही ऐसा आ गया, मेरे प्राणों का कुछ भी मूल्य इस सौदे में

न रहा। उसने सब कुछ कह दिया था। उसके वक्तव्य की सत्यता के प्रमाणमात्र मेरे पास थे। मैं कई दिन तक उसके बच्चे को छाती से लगाकर तड़पता फिरा। अपने संन्यास वेश की असत्यता मुझपर खुल गई। ओह, मुझे वह काला काम करना पड़ा। मैंने पुत्र के प्राणों की पिता की तरह रक्षा की।

पर उसके बदले हुआ क्या? देश भर में तलाशियों और गिरफ्तारियों की धूम मच गई। होनहार, अटपटे वीरों ने हंसते-हंसते फांसी पाई। कुछ कालेपानी जाकर वहीं घुल गए। कुछ युग व्यतीत कर लौट आए। देशोद्धार का सुयोग अतल पाताल में चला गया। मेरे दुष्कर्म का यह भेद एक राजा साहब को ही मालूम था, पर वे भारत में आ न सकते थे। एक पत्र उन्होंने भेजा था। ओह, जाने दो, जब उसे भस्म कर दिया है, तब उसकी चर्चा क्यों? जिस बात के भूलने में सुख है, उसे हठपूर्वक स्मरण क्यों किया जाए?

महाजातियों का यह संघर्ष कैसा सुन्दर है! यदि मैं भी इन्हीं जातियों में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त करता तो क्या आज चूहे की तरह इधर से उधर प्राण बचाता फिरता? महाशक्ति की सेनाओं की कमान इन्हीं हाथों में होती, पर जीवन में कभी वह क्षण आएगा भी? आए या न आए, मैं अन्त तक न थकूंगा। भोजन और सोना कई दिन से नसीब नहीं हुए। नाविक के वेश में, मछलियों की सड़ी गन्ध में छिपे-छिपे सिर भन्ना गया, पर विपत्ति तो अभी सिर पर है। वह दूर पर रण की तोपों का गर्जन सुनाई पड़ रहा है। वह सर्चलाइट का श्वेत सर्प-समुद्र पर लहरा रहा है। किन्तु प्रभात होते ही तो किनारे लगेंगे? किनारे पर शत्रु हैं या मित्र, कौन जाने? मित्र हुए तो इस बार जान बची, पर यदि शत्रु हुए तो आज ही प्राणान्त है। जीवन भी कैसी चीज़ है? इस समय राजमहल याद आ रहे हैं। महारानी मानो करुण नेत्रों से झांक रही हैं, परन्तु क्या इस महायुद्ध में मैं अपने वंशधरों की भांति अपने देश के लिए जूझने में पीछे रहूं? जूझने के ढंग तो यथावसर निराले होते ही हैं, परन्तु जिन विदेशियों को मैं मित्र बनाकर अपना और अपने देश का ऐसा गम्भीर दायित्व सौंप रहा हूं, वह क्या सच्चे रहेंगे? एक विदेशी से प्राण छुड़ाने को दूसरे का आश्रय लेना सुन्दर नीति तो नहीं, परन्तु दूसरी गति भी नहीं थी। फिर, अब लौटने का उपाय भी तो नहीं

एक बार देश में आग फैल जाए। अमन, आराम और शान्ति की इच्छा नष्ट

हो जाए, देश जूझ मरने की हौंस मन में उत्पन्न करे, फिर तो आज़ादी स्वयं ही आ जाएगी। यह महासमर तो महाराज्यों के भाग्य का निबटारा करेगा, महाजातियों के भाग्य का निबटारा तो कहीं अन्यत्र ही होगा। सुदूर पूर्व में शान्त समुद्र की लहरें रक्त से लाल होंगी, एशिया की प्रसुप्त आत्मा जागरित होकर हुंकार भरेगी, तब यूरोप का श्वेत दर्प ध्वंस होगा। उसी दिन के लिए तो मेरा आयोजन है। ओह ! अभी मुझे बहुत काम हैं, पहली यात्रा में ही यह विघ्न हुआ।

अभी मुझे बारम्बार चीन, जापान, रूस, अमेरिका और न जाने कहां-कहां जाना होगा। महाविध्वंस क्या यों ही हो जाएगा ? परन्तु वह युवक तो फंस गया। बुरा हुआ। बचना सम्भव ही न था। महासाहस उसमें न था। चिन्तनीय बात तो यह है कि सब कुछ उसे ज्ञात है। आवश्यक कागज़ भी बहुत से वहीं रह गए हैं। तब वह क्या प्राणों के लोभ से देश को चौपट करेगा ? विश्वासघाती होगा ? मरने में क्षण भर का ही तो दुःख है। वह अवश्य उसे सह लेगा, भेद न खोलेगा। फिर भी सचेत रहना आवश्यक है। मुझे अब नया कार्यक्रम बनाना उचित है। अपने मार्ग की गति भी बदलनी उचित है। ये नाविक विश्वसनीय हैं, परन्तु मैं कुछ और ही करूंगा।

ओह देश ! मेरे प्यारे स्वदेश !! यह तन, मन, धन, सब तुझपर न्यौछावर है। तेरी एक-एक रज-कण में मेरे जैसे लाख शरीर बनते-बिगड़ते हैं। फिर इस शरीर का क्या मोह ? मेरे प्यारे स्वदेश ! मैंने सब कुछ तुझे दिया है। अब प्राण भी दूंगा। इस धरोहर को पास रखने योग्य अब मेरे पास ठौर भी नहीं रह गई है। आह, क्या कभी मैं तुझे देख सकूंगा ? वह नील श्यामल रूप ! अरे, बचपन की क्या-क्या बातें याद आ रही हैं ? परन्तु नहीं, मुझे इस समय कायर नहीं बनना चाहिए। मैं प्रण करता हूं, देश की भूमि पर तभी पैर रक्खूंगा, जब उसे पूर्ण स्वाधीन कर लूंगा।

प्राण बचे तो, पर वे मोल बिक गए थे। उनपर मेरा काबू न था। अब स्वेच्छानुसार मैं न कुछ कर सकता था, न सोच सकता था। उन बहुमूल्य गोपनीय बातों के बदले मुझे गुप्त विभाग में उच्च पद मिला था। मेरे प्राण जैसे मेरे लिए कीमती थे, वैसे ही उस गुप्त विभाग के लिए भी थे। मेरा जीवन रहस्यमय था। मेरे हृदय में कुछ और भी है, तथा मेरी ओट में कुछ रहस्य-भेद

होगा, इस तत्त्व ने मेरे प्राणों को इस अधम शरीर में सुरक्षित रखा और इस कापुरुष ने यही गनीमत समझा। शिशु की फैली हुई बांह और हंसता हुआ मुख मैं कुछ काल तक देखता रहा, उस जेल-यन्त्रणा और मृत्यु की कोठरी में भी और इस अफसरी की सुखद किन्तु भीषण कुर्सी पर भी। परन्तु पाप के पथ पर तो पाप की हाट लगी ही रहती है। फिर लिली की बात क्यों छिपाऊं? न जाने क्यों वह मुझ अभागे पर मुग्ध हुई। उसका पति मेरा उच्च आफीसर था। हम लोगों ने विष द्वारा उस कण्टक को दूर कर दिया। अब लिली थी और मैं था। परन्तु मृतात्मा हमारे बीच में जीवित की अपेक्षा अधिक भयानक रूप में थी। एक वार फांसी के फन्दे को हम दोनों ने अपने संयुक्त गर्दनों के इर्द-गिर्द देखा। हमने सोचा, यहां से भाग चलें। तार दिया, जहाज़ का टिकट भी ले लिया, पर भाग न सके। जहाज पर खूनी असामी कहकर पकड़े गए। पर लिली का रोना देखने योग्य था। वह छूटती कैसे, हड्डियों तक घुस गई थी। हताश, दोनों मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो गए। परन्तु ये कठिन प्राण तो इस शरीर में जमकर बैठे थे। उन्हीं शक्तियों ने प्राण बचा लिए। मैं लिली के मृतक पति के पद पर उसी मृतक के नाम से बैठ गया। लिली अब वास्तव में मेरी पत्नी थी। अब मानो मैं मर गया हूं, मैं नहीं हूं, जिसे मैंने लिली के लिए मारा, मानो वह मैं हूं। शिशु का वह हास्य और पत्नी के वे नेत्र अब भी कभी-कभी स्वप्न की तरह स्मरण आते हैं, पर पूर्वजन्म की इन बातों में अब क्या रक्खा है? लिली से मैं अब भी प्यार की आशा करता था। छिः! कैसी विडम्बना है! पति के हत्यारे को प्यार करना क्या साधारण है? फिर यदि प्रेम की सुखद गोद में हत्या जैसा पाप घुस जाए, तब वह जिन्हें सुखद प्रतीत हो वे निश्चय ही राक्षस होंगे। हृदय की उन वेदनाओं को क्या कहा जाए, जिन्होंने शरीर को नष्ट कर दिया है? और वह अभागा भी कैसा दुखी जीव है जो उसीके साथ रहने को विवश किया गया है जो उससे घृणा करती है? हमारे रस की प्रत्येक बूंद में विष है, पर उसे रस कहकर पीना हम दोनों के ही लिए अनिवार्य है! हाय रे प्रारब्ध!

मैं अभागिनी अबला स्त्री क्या करती? मरना सुखकर था, परन्तु शिशु कुमार के मन्द हास्य ने उसे दुरूह कर दिया। क्या कोई भी मां अपने फूल से बच्चे को इस तरह हंसते छोड़कर मर सकती है? अब तो मैं पहले मां थी, पीछे पत्नी।

इसीलिए गोद के शिशु को धरती में पटककर परोक्ष पति के नाम पर मरना मेरे लिए सम्भव ही न रहा। मैं सुख-दुःख के बीच झूलती रही। मैं मृत्यु और जीवन की ड्योढ़ियों में पड़ी ठोकर खाती रही। मुझ दुखिया के कष्ट, मूक मनोवेदना का अनुमान तो कीजिए ? मेरी बात पूछने वाला कौन था ? मेरे मन को सहारा किसका था ? मैं पति के सहवास-काल की प्रत्येक घटना, प्रत्येक बात, अपनी आंखों से प्रतिक्षण देखती, सोते समय और जागते समय भी। मैं कभी हंसती और कभी रो देती। कभी सोते-सोते या बैठे ही बैठे चमक उठती। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो वे आ गए। उन्होंने अभी-अभी शिशु कुमार को आवाज़ दी है। कण्ठ-स्वर को मैं प्रत्यक्ष सुन पाती। मैं द्वार की ओर दौड़ती, परन्तु तत्काल ही समझ जाती, ओह ! कुछ नहीं, यह सब मनोविकार था। मैं नहीं कह सकती कि सोने के समय जागती थी या जागने के समय सोती थी। प्रायः मैं जड़वत् बैठी रहती। उस समय मैं किसीकी कोई बात ही न सुन पाती थी। मैं उस समय देखती थी—वे उन्हें पकड़कर फांसी पर चढ़ा रहे हैं, उनके शरीर में तलवारें घुसेड़ रहे हैं। शरीर रक्त से भर रहा है। मैं एकाएक चीत्कार कर उठती, और फिर धरती पर धड़ाम से गिरकर बेहोश हो जाती थी।

शिशु कुमार को देखकर ही मैं सचेत रह सकती थी। मुझे तब वास्तव में हंसना ही पड़ता था : वह उनके सिखाए ढंग पर मेरे गले में बाहें डालकर जब ज़रा-ज़रा तोतली वाणी से सितार की झनकार के स्वर में कहता—माताजी, 'रूठो मत' तब मैं मानो किसी गूढ़ जगत् से एकाएक भूतल पर आती। होंठों पर मुस्कान न आती, पर नेत्रों में आंसू आ जाते थे। उन्हें शिशु कुमार से छिपाने के लिए मैं उसे ज़ोर से छाती से लगा लेती थी।

उस दिन स्वामीजी एकाएक मेरे सम्मुख आ खड़े हुए। उनके होंठ कांप रहे थे और पैर लड़खड़ा रहे थे। उनके मुख पर हवाइयां उड़ रही थीं, वे कुछ कहना चाहते थे, पर बोली न निकलती थी। मैं घबराकर उठ खड़ी हुई। मैंने कभी उन्हें इतना विचलित न देखा था। मैंने कहा—बात क्या है पिताजी ? 'वह जीवित है, वह आ रहा है' वे अधिक न बोल सके। आंसुओं की धारा उनके नेत्रों से बहने लगी। उन्होंने मुंह फेरकर अच्छी तरह रुदन किया।

मेरे शरीर में रक्त की गति रुक गई। मेरी हड्डी-हड्डी कांपने लगी। मैंने खड़े रहने की बड़ी चेष्टा की, पर न रह सकी। मेरा सिर घूम रहा था, छाती फटी

पड़ती थी। मैं बैठ गई या गिर गई, स्मरण नहीं।

स्वामीजी ने घूमकर कहा—बेटी, आज सातवीं तारीख है। दस तारीख के प्रातःकाल जहाज़ बम्बई के बन्दरगाह पर लगेगा। हमें आज ही चलना होगा। तुम अपना आवश्यक सामान ले लो। अभी समय है। गाड़ी साढ़े नौ पर खुलती है। वे इतना कहकर चले गए।

मार्ग में मैं जीवित थी या मृत, नहीं कह सकती। बम्बई कब पहुंची, स्मरण नहीं। रेल दौड़ रही थी, मैं मानो आकाश में घुसी जा रही थी, मानो मैं अभी सूर्य-मण्डल को भेदन करूंगी। डेक पर सहस्रावधि नर-नारी खड़े थे। एक भीमकाय जहाज़ उन्मत्त समुद्र की जल-राशि के हृदय को विदीर्ण करता हुआ भयानक दानव की तरह तट की ओर निकट आ रहा था। मेरी संज्ञा प्रायः लुप्त थी। जहाज़ के डेक पर लगते ही नर-नारियों का समुद्र किनारे उतरने लगा। मैं सम्पूर्ण चेष्टा से उनके बीच कुछ खोज सकने भर की संज्ञा संचित कर रही थी। सब कुछ एक रंगीन बिन्दु के समान दीख पड़ता था। नहीं कह सकती, कब तक हम लोग खड़े रहे। हठात् स्वामीजी ने कहा—इस जहाज में तो वह नहीं है। क्या कारण हुआ! उनके प्रदीप्त नेत्र दूर तक घूमकर मेरे मुख पर आ लगे। बम्बई आने पर यही शब्द मैं ठीक-ठीक सुन सकी। मैं समझी, यह सब मृग-मरीचिका थी। वे नहीं आए, वे नहीं आएंगे। मैंने अनन्त तक फैली हुई जल-राशि पर दृष्टि दौड़ाई। हठात् मेरे मन में एक भाव उदय हुआ। मैंने कहा—पिताजी, तब मैं कहां जाऊंगी। मेरे ये शब्द मेरे ही कानों में तोप के भीषण गर्जन की तरह प्रतीत हुए।

स्वामीजी ने मेरे मुख की तरफ देखा। उन्होंने आश्वासन देकर कहा—अवश्य कुछ कारण हुआ है। पत्र या तार शीघ्र मिलेगा। तब भविष्य के कर्तव्य पर विचार करेंगे। अभी घर चलो। मैंने एक पग भी न हिलाया। बहुत तर्क हुआ। विजय मेरी हुई। सोते हुए शिशु कुमार को छोटी बहू की गोद में सौंप, उसे बिना ही अच्छी तरह देखे, उसे बिना ही चूमे, मैं अनन्त समुद्र के पार, उस अज्ञात प्रदेश में, उस पति को ढूंढ़ लाने चली। मेरा माता होना धिक्कार हुआ। हाय रे! अधम नारी-हृदय!!

इस कृष्णकाय और साधारण पुरुष ने क्या जादू कर दिया? ओह, मैंने कैसा

घोर दुष्कर्म किया ? अब इन रक्तरंजित हाथों को कौन प्यार करेगा ? यही व्यक्ति ? और वह कितना भयानक, कितना घृणास्पद है ! क्यों यह पापिष्ठ हमारे बीच में आया ? क्यों इसने हमारे प्रशान्त प्रेम में आग लगाई ? मैं इसे घृणा करती हूं। पति की मृतक आंखें कैसी चमक रही हैं ! वे सब कुछ जानती हैं। उन्होंने अपना सभी प्रेम और विश्वास मुझे दिया, इसीलिए कि मैं अपनी वासना के लिए उनका प्राण हरण करूं ? परन्तु अब तो मैं इसके साथ रहने के लिए बाध्य हूं, छुटकारा पा नहीं सकती। यह वह विदेशी कृष्णकाय हत्यारा नहीं, मेरा वही पति है । इसमें क्या राजनीतिक महत्त्व है, इसे तो वह गुप्त-विभाग जाने, जिसने इस भाग्यहीन को इतना बड़ा पद दिया है। पर मैं कैसे यह मान लूं ? क्या आंखें फोड़ लूं, हृदय को चीर डालूं ?

सुनती थी कि यह विवाहित है। इसके पुत्र, पत्नी है। आज उसे देख भी लिया। वह इसे ले जाने के लिए यहां आई है, पर वह सब कैसे सम्भव हो सकता है ? अब यदि यह अपना पूर्व नाम भी स्मरण करेगा तो उसकी सजा मौत है। और कैसी भयानक बात है ! मैं उससे मिली, कितनी सीधी-सादी, दुखिया स्त्री है ! वह अपने हठ पर है। किन्तु उसे मालूम नहीं कि प्रबल और समर्थ हाथ उसके विपरीत है। अपराध का इतना समर्थन कहां किसने देखा होगा ? ओफ़ !

कल मैंने उन्हें देखा। वही थे, किन्तु कितना परिवर्तन हो गया है ! फिर भी मेरी आंखें क्या उन्हें भूल सकती थीं ? उन्होंने भी देखा। मैं समझ गई, उनकी हड्डी तक कांप गई है, पर क्यों ? वे दौड़कर क्यों नहीं मेरे पास आए ? इतना डरे क्यों ? क्या पहचाना नहीं ? ओह, हे ईश्वर, तब मेरे लिए ठौर कहां है ? इतना करके भी मैं वंचित रही ? आशा के कच्चे तार के सहारे ये प्राण इस अधम शरीर को यहां तक ले आए। आकर जो पाना था पाया भी, पर क्या मैं पाकर भी न पा सकूंगी ? ओह, पति के नाम पर मर-मिटने वालियों से भी मेरा साहस बढ़कर है। मैं आगे बढ़ी। दिन छिप गया था। गहरा कोहरा इस विदेश की महानगरी में अद्भुत और भयानक मालूम होता था। प्रकाश-स्तम्भों की धुंधली रोशनी में मैं उनके पीछे बढ़ी चली गई और साहसपूर्वक उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने रुककर देखा, भद्र विदेशी भाषा में उन्होंने कहा—देवी, आप कौन

हैं ? क्यों आपने मुझे रोका है ? आपका क्या काम है, कहिए ?—अरे ! वही तो कण्ठ-स्वर था। सदा तो इसे मैंने सुना है, पर यह अपरिचित शब्द-जाल कैसा ? मैं रो उठी, मैं गिर गई, चरणों पर नहीं, धरती पर। उन्होंने मुझे उठाया, तसल्ली दी। मैंने देखा, वही, वही, वही हैं। मैंने गले में बांहें डाल दीं। जितना रो सकती थी, रोई। मैंने कहा—दासी पर यह निष्ठुरता क्यों ? यदि यह अपराधिनी है, तो शिशु कुमार को क्यों भूल गए ? देखो प्यारे, वह सूखकर कांटा हो गया है। वह सदैव तुम्हारा ही नाम रटा करता है। तुमने स्वयं उसे अपना नाम रटाया था। वे भी रो उठे। अन्त में उन्होंने कहा—प्रिये, धीरज धरो। मेरे कलेजे की आग देखो। मैं जीवन्मृत हूं, मैं कब का मर चुका हूं। सरकारी खातों में मेरी मृत्यु-तिथि दर्ज है। पर जो वास्तव में मर गया है, उस नाम से मैं जीवित हूं। उसका नाम मेरा नाम है, उसका पद मेरा पद है, उसकी स्त्री मेरी स्त्री है। ओह ! वह मुझे घृणा करती है, और मैं उसे। हम दोनों हत्या के अभियुक्त हैं। फांसी की रस्सी हम दोनों की गर्दनों के चारों ओर पड़ी है। ज्यों ही हमने यह भेद खोला—अपना पूर्व नाम जाना, कि उसका फन्दा कस दिया गया। उसी दिन यह अधम देह प्राणों से रहित हो जाएगी।

मैंने यह भेद समझा ही नहीं। मैं अवाक् रह गई। पर जो कुछ सुनना था, सभी सुना। मैंने कहा—मैं अधिकारियों से कहूंगी, कानून से लड़ूंगी। उन्होंने कहा—सभी तरह मेरे प्राण जाएंगे। मेरे प्राण लेकर तुम क्या करोगी ? क्या इसीलिए यहां आई हो ?

मैं क्या करती ? मैं मूर्च्छित हो गई। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—मेरे पास बहुत धन हो गया है। चाहे जितना ले जाओ। शिशु कुमार को पढ़ाओ और अपने सधवा होने की बात भूल जाओ। मैं यदि मर सकता तो तभी मरता, जब वीर की तरह मरने का संयोग आया था। अब इस तरह जीने के बाद, ज्यों-ज्यों पाप और कायरता शरीर में घुसती जाती है, त्यों-त्यों मैं मरने से भय खाता जाता हूं। प्रिये, तुमने बहुत सहन किया है, और भी सहन करो। मुझे तब तक जीने दो, जब तक जी सकता हूं। ग्लानि और अनुताप को मैं सहन कर गया हूं। इससे अब ज्यादा कष्ट और कौन होगा ?

मैंने कहा—जिस मूल्य में तुम जीवित रहो, वह मैं दूंगी। मैं भयभीत नहीं, शोकाकुल भी नहीं। मैं दस वर्ष पूर्व भीरु स्त्री थी, पर तुम्हारे वियोग और

जीवन की कठिनाइयों ने मुझे पुरुष-सा साहसी बना दिया है। अब मैं उन तमाम अतीत स्मृतियों को भूल जाऊंगी, जिनके सहारे जी रही थी। जब तुम 'जीवन्मृत' हो तो मैं भी जीवन्मृत हुई। वह सब कुछ पिछले जन्म की बातें हुईं। वह गङ्गा का उपकूल, वह जीवन के उल्लासपूर्ण दिवस, उस दिन वनवीथिका में तुम्हारा खो जाना, वह शिशु कुमार के जन्म से प्रथम का प्यार, उसके जन्म-दिन का वह दुर्लभ उपहार···आह! वह सब मेरे पूर्वजन्म की बातें हैं। मैं उस जन्म में पुत्र-वती, सौभाग्य-सिंदूर की अधिकारिणी, प्रेम और दुलार की पुतली थी। आज उन्हें भूलना भी कठिन है और याद रखना भी दुर्लभ! पर भूलूं तो क्या? और याद रखूं तो क्या? जिसे पा नहीं सकती, उसकी कल्पना करने से ही क्या लाभ?

मेरे इस असाधारण साहस का यही फल हुआ। मैंने उन्हें विदा किया, इस जन्म के लिए। मेरा उनका शरीर-सम्बन्ध विच्छेद हुआ। उन्होंने मुझे बहुत-कुछ देना चाहा, पर मैंने स्वीकार न किया। मैंने कहा—तुमने अपने सुख के दिनों में जो शिशु कुमार मुझे दिया है, वही मेरे लिए बहुत है। मैं उसीके सहारे अवशिष्ट आयु काट दूंगी। तुम—तुम जाओ और पाप, छल, पाखण्ड, विश्वासघात में जीवन बिताओ। मेरे जीवन्मृत स्वामी, तुम्हें धिक्कार है! मैं तुम्हारा धन छू नहीं सकती, मैं पसीना बेचकर अपना और शिशु कुमार का पेट भरूंगी।—मैं चली आई।

# खूनी

उन दिनों हुतात्मा श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी जेल में थे, तभी प्रताप में यह कहानी छपी थी, पढ़कर उन्होंने लेखक को एक कार्ड लिखा था। उसमें केवल एक ही वाक्य था—खूनी से प्रताप धन्य हो गया। इन बातों को आज तीस बरस हो रहे होंगे। लेखक तब आज के गुरुगरिमापूर्ण आचार्य न थे, उत्तप्त अंगारों पर नृत्य करने वाले कलाकार थे। गान्धीजी के अहिंसातत्त्व का तब जन्म ही हुआ था—और इस कहानी के लेखक ने गान्धीवाद पर अपनी अप्रतिम रचना 'सत्याग्रह और असहयोग' रची ही थी, जो उन दिनों गीता की भांति पढ़ी जा रही थी। क्रान्तिकारियों के आए दिन आतंकपूर्ण साहसिक कार्य सुन पड़ते थे, किसी कलम के धनी का और सरस्वती के वरद पुत्र का यह साहस न था कि उनके आतंकवाद की ओर अंगुली भी उठाए—तभी आचार्य ने शुद्ध अहिंसा की राजनीति का एक प्रभावशाली रेखाचित्र इस कहानी में त्रित किया था।

उसका नाम मत पूछिए। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आंखों से दूर करने को पागल हुआ फिर रहा हूं। पर वह नाम और वह मूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूं, वह निडर है; मैं रोता हूं, वह हंसता है; मैं मर जाऊंगा, वह अमर है।

मेरी उसकी कभी की जान-पहिचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी। सब दल के आदमी आए थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था। वह मेरे पास ही खड़ा एक कुत्ते के पिल्ले से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज गम्भीर स्वर में धीरे से कहा—इस युवक को अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।

नायक चले गए, और मैं युवक की ओर झुका, मैंने समझा—शायद नायक हम दोनों को कोई एक काम सुपुर्द करेंगे।

मैंने उससे हंसकर कहा—कैसा प्यारा जानवर है! युवक ने कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मेरे मुख पर डालकर कहा—काश! मैं इसका सहोदर भाई

होता ! मैं ठठाकर हंस पड़ा। वह मुस्कराकर रह गया। कुछ बातें हुईं। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन पर दिन बीतते गए। अछूते प्यार की धाराएं दोनों हृदयों में उमड़-कर एक धार हो गईं। सरल, अकपट व्यवहार पर दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध होते गए। वह मुझे अपने गांव ले गया। किसी तरह न माना, गांव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गांव के ज़मींदार का बेटा था, इकलौता बेटा। हृदय और सूरत का एक सा। उसकी मां ने दो दिन में ही मुझे बेटा कहना शुरू कर दिया। अपने होश के दिनों में मैंने वहां सात दिन माता का स्नेह पाया। फिर चला आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटक रहे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश में उसने कहा था—किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से एक स्त्री बन जाए तो मैं तो तुमसे ब्याह ही कर लूं।

नायक से कई बार पूछा—क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा था ! वह सदा यही कहते—समय पर जानोगे। गुप्त सभा की भयंकर गंभीरता सब लोग नहीं जान सकते ! नायक मूर्तिमान् भयंकर गंभीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकेट में अब भी सुरक्षित है। पर किसीको दिखाऊंगा नहीं। उसे देखकर दो सांस सुख से ले लेता हूं, आंसू बहाकर हल्का हो जाता हूं। पुराने रोगी को जैसे कोई दवा खुराक बन जाती है, मेरी वेदना को भी यह चिट्ठी खुराक बन गई है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था, नायक ने बुलाया। मैं सामने सरल स्वभाव से खड़ा हो गया। बारहों प्रधान हाज़िर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तस्वीर खींच रहा था। मैं एक ही मिनट में गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्मभेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रों में गड़ गई, जैसे तप्त लोहे के तीर आंख में घुस गए हों। मैं पलक मारना भूल गया, मानो नेत्रों में आग लग गई हो। पांच मिनट बीत गए। नायक ने गम्भीर वाणी से कहा, सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज़ पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठाकर उसे सिर

पर चढ़ा लिया।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण भर में ६ नली रिवाल्वर मेज पर रख दिया।

वह छह अक्षरों का शब्द उस रिवाल्वर की छहों गोलियों की तरह मस्तिष्क में घुस गया। पर मैं कम्पित न हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने रिवाल्वर उठाकर छाती पर रक्खा और उस स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम पर इतना भरोसा उसे था। देखते ही लिपट गया। घर गए, चार दिन रहे। वह क्या कहता है, क्या करता है, मैं देख-सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न हो गया था, आत्मा दृढ़ थी, हृदय धड़क रहा था; पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जलपान करके हम स्टेशन की ओर चले। तांगा नहीं लिया, जंगल में घूमते जाने का विचार था। काव्यों की बढ़-बढ़कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती में वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली, पसीने बह चले। मैंने कहा—चलो, कहीं छांह में बैठें।—घनी कुंज सामने थी। वहीं गए। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकालकर उसने कहा—सिर्फ दो ही पके थे, घर के बगीचे के हैं। यहीं बैठकर खाने के लिए लाया था; एक तुम्हारा, एक मेरा। मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था। उसका ध्यान उसीके स्वाद में था। मैंने धीरे से रिवाल्वर निकाला, घोड़ा चढ़ाया और कम्पित स्वर में उसका नाम लेकर कहा—अमरूद फेंक दो और भगवान् का नाम लो—मैं तुम्हें गोली मारता हूं।

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा—बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो। मेरे धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कण्ठ से कहा—अच्छा खा लो। खाकर वह खड़ा हो गया; सीधा तनकर। फिर उसने कहा—अब मारो गोली। मैंने कहा—हंसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली ही मारता हूं, तुम भगवान् का नाम लो। उसने हंसी में ही भगवान् का नाम लिया और फिर वह नकली गम्भीरता

से खड़ा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबाकर कहा—ईश्वर की सौगन्ध ! हंसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।

मेरी आंखों में वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मिलाकर उसने कहा—मारो।

क्षणभर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्यच्युत हो जाता। पल-पल में साहस डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूंज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोली छाती को पार कर गईं।

मैं भागा नहीं। भय से इधर-उधर मैंने देखा भी नहीं, रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद में उठाया। मुंह की धूल पोंछी। रक्त साफ किया। आंखों में इतनी ही देर में कुछ का कुछ हो गया था। देर तक उसे गोद में लिए बैठा रहा, जैसे मां सोते बच्चे को जागने के भय से निश्चल लिए बैठी रहती है।

फिर मैं उठा। ईंधन चुना, चिता बनाई और जलाई—अन्त तक वहीं बैठा रहा।

बारहों प्रधान हाज़िर थे। उसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायक ने नीरव हाथ बढ़ाकर रिवाल्वर मांगा। रिवाल्वर दे दिया। कार्यसिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े होकर वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा—तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते हैं। मैंने कहा तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूं कि उसका अपराध मुझे बताया जाए।

नायक ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया—वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था। हमें उसपर सरकारी मुखबिर होने का सन्देह था। मैं कुछ कहने योग्य न रहा। नायक ने वैसी ही गम्भीरता से कहा—नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ एक पुरस्कार मांग सकते हो।

अब मैं रो उठा। मैंने कहा—मुझे मेरे वचन फेर दो। मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त कर दो, मैं उसीके समुदाय का हूं ! तुम लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देशभक्त कहने से इन्कार कर दो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूं। मैं हत्यारों का साथी, सलाही और मित्र नहीं रह सकता ! तुम तेरहवीं कुर्सी को जला दो।

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा—तुम्हारे इन शब्दों की सजा मौत

है। पर नियमानुसार तुम्हें क्षमा पुरस्कार में दी जाती है।

मैं उठकर चला आया। देशभर घूमा, कहीं ठहरा नहीं। भूख, प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस, अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी है। मेरा वारन्ट निकला था, मन में आया कि फांसी पर जा चढ़ूं। फिर सोचा, मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊंगा। मरने में अब क्या स्वाद है? जीना चाहता हूं। किसी तरह सदा जीते रहने की लालसा मन में बसी है। जीते जी ही मैं उसे देख और याद रख सकता हूं।

# रजवाड़ों की कहानियां

- मुहब्बत
- राजा साहब की कुतिया
- राजा साहब की पतलून

# मुहब्बत

राजा-रईसों के जीवन कितने विलासमय, वासनापूर्ण और अरक्षित होते हैं, और बहुधा वे खतरनाक घटनाओं के शिकार हो जाते हैं—इसका एक तथ्यपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत कहानी में है। आचार्य का राजा-रजवाड़ों से गहरा सम्पर्क रहा है, अतः इस कहानी में उनकी अनुभूति की स्पष्ट छाप है।

राजा साहब की आंखें हंस रही थीं। उन्हीं आंखों से उन्होंने मेरी ओर देखा, मुस्कराए, और मसनद पर उठंग बैठकर मेरी ओर झुककर धीमे स्वर में कहा—देखी मुहब्बत! मतलब न समझ सकने पर मैंने आंखों में ही प्रश्न किया। राजा साहब ने चार बीड़ा पान मुंह में ठूंसते हुए कहा—आप आंख वाले हैं—देखिए साहब।

राजा साहब बहुत खुश थे। रियासती अदब और शिष्टाचार वातावरण में भर रहा था। कुंवर साहब भी एक कोने में सजे-धजे बैठे थे। जरबफ्की शेर-वानी, सिर पर मंडील उसपर हीरों की कलगी, गले में पन्ने का भारी कण्ठा। मगर आंखें नीचे झुकी हुई। राजा साहब की एक-एक बात पर कहकहे पड़ रहे थे, बीच-बीच में मुखरा बी साहब भी फिकरा कस देती थीं। जिसपर कहकहा तो लाजिमी था, मगर क्या मजाल कि कुंवर की मूंछों का बाल भी मुस्करा जाय। महफिल में बैठना उनके लिए दरबारी अदब के लिए जितना ज़रूरी था उससे अधिक महाराज के अदब से आंखें नीची रखना भी ज़रूरी था। सरंगियों की उंगलियां सिसकारी भर रही थीं और तबला तड़पकर हाय-हाय कर रहा था। मुझे यह सब १८वीं शताब्दी का सामन्तशाही दृश्य बिल्कुल ही भोंड़ा जंच रहा था। संगीत के नाम पर वह केवल चीख थी और नृत्य के नाम पर उछल-कूद। मगर लोग थे कि छिन-छिन पर वाह-वाह के नारे लगा रहे थे। कहकहों की धूम मची थी और वेश्याओं पर वाहवाही के साथ इनाम, न्यौछावरी की वर्षा हो रही थी। मुस्कराना तो मुझे भी पड़ रहा था। क्या करूं, राजा साहब का इतना लिहाज

तो ज़रूरी था। मगर 'वाह' तो मेरे फूटे मुंह से एक बार भी नहीं निकलती थी। अब जो राजा साहब ने मेरी आंखों को एक चुनौती दी तो मैं चश्मे से घूर-घूरकर अहमक की तरह इधर-उधर देखने लगा। राजा साहब मेरी बेवकूफी पर रहम खाकर मुस्कराकर रह गए।

लेकिन कुछ क्षण बाद ही राजा साहब ने हुक्म दिया—मुहब्बत खड़ी हो। और तब मैंने मुहब्बत को देखा, कुछ समझा भी। कम से कम राजा साहब का दिल तो समझ ही गया। लम्बा, छरहरा, नपातुला बदन, चमकते सोने का रंग, बड़ी-बड़ी मदभरी आंखें, चांदी का सा साफ माथा, भौंरे-सी गुंजनभरी लटें, दूज के चांद के समान पतली भौंहें और बिल्कुल १६ अंगुल की कमर। पैर की ठोकर दी तो घुंघरू बजे छम, फिर ठोकर दी, फिर दी, ठोकरों की झड़ी लगाई, घूंघरू बजे, छम-छम, छमाछम, छमाछम। छम छमाछम। और फिर देखी वह सोलह अंगुल वाली कमर, बल खाती, इठलाती नागिन-सी लहराती और उसपर तैरता वह अछूता यौवन। मदभरी आंखें, तिरछी भौंहें। यहीं पर बस नहीं। कोयल की कुहू। पंचम की तान।

मसनद पर झुककर मैंने राजा साहब के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—देखा महाराज, अब देखा।

राजा साहब ने भौंहें तरेरकर कहा—अब क्या देखा? खाक। अब तो धुनिए-जुलाहे सब देख चुके। सब की नज़र पड़ चुकी, जूठी हो चुकी। उन्होंने फिर अपना चांदी का पानदान खोल ४ बीड़े पान के हलक में ठूंस लिए और मेरी तरफ से मुंह फेर लिया।

क्या करूं? देहाती दहकानी ठहरा। राजा साहब को खुश करने का कोई ढंग ही नहीं नज़र आया। मन मारकर मुहब्बत का नृत्य देखने लगा।

दोनों गालों में पान ठूंसे, उसे पेश करते, हंसते हुए एक ने कहा—गजल गाओ। बनारस के बबुआ साहब ने एक मुट्ठी इलाचियां पेश करते हुए कहा—जी नहीं, कोई ठुमरी। मुंशीजी तड़पकर बोले—नहीं सरकार, कोई पक्की चीज होने दीजिए। राजा साहब ने मेरी ओर मुंह करके कहा—आप फर्माइश कीजिए। मैंने झेंपते हुए कहा—कोई ऐसी चीज़ सुनाइए जिसमें मुहब्बत का दरिया बह जाए।

राजा साहब खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसी का फव्वारा फूट गया। भला

राजा साहब हंसें और महफिल चुप रह जाए ? बा साहबा ने भी फिकरा जड़ा—तो हुजूर, इस मुहब्बत के दरिया से प्यास किसकी बुझेगी ?

मैंने कहा—प्यास पंछियों की बुझेगी, मगर कोई मर्द-बच्चा डुबकी लगा बैठे तो अजब नहीं।

राजा साहब दुहत्तड़ जांघों पर मारकर उछल पड़े—खूब कहा, खूब कहा ! मुहब्बत झेंपकर झुक गई। कुछ देर में कहकहा का तूफान थमा और मुहब्बत ने एक गजल गाई।

जान बची लाखों पाए। राजा साहब खुश हो गए। मैंने समझा, ठीक मुसाहिबी हुई।

दूसरे दिन रात को राजा साहब ने बुलावा भेजा। जाकर देखा दीवानखाने में राजा साहब और मुहब्बत दोनों ही हैं। पास में राजा साहब के मुंह लगे पेशकार राजा साहब का बड़ा सा चांदी का पानदान गोद में लिए बैठे हैं।

मुहब्बत ने आधी ताजीम दी और सलाम किया। मैंने कहा—मुबारकबादी देता हूं। आप एक ही कमाल हैं।

'जी हां, कल आप नहीं बना सके, सो अब बनाइए'—मुहब्बत ने टेढ़ी नजरों से देखकर कहा।

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है, आपका फन ही ऐसा है कि जो देखेगा सिर धुनने लगेगा।'

'आख्या तो इसीसे हुजूर कल इस कदर सिर धुन रहे थे।' मुहब्बत ने खास तीखा तीर चलाया था। मैंने झेंप मिटाने को कहा—जी मैं दहकाती न सही—सारी महफिल ही सिर धुन रही थी।

'शुक्रिया, तो इस बात के हुजूर एक मातवर गवाह हैं।'

राजा साहब ने नकली गम्भीरता से कहा—वे सब सिर धुनने वाले सही-सलामत तो हैं न ?

मुहब्बत ने कहा—एक वे मुन्शीजी तो कल ही मर रहे थे।

राजा साहब पचास को पार कर गए थे। दुबले-पतले, कोई ढाई माशे के लखनवी आदमी थे। रंग पक्का, खोपड़ी गंजी, आंखों में मोटे शीशे का चश्मा, खाने-पीने और कपड़े-लत्तों से असावधान, मगर पक्के पियक्कड़। धुन के पक्के

और सनकी।

दो रानियां जिन्दा हाजिर थीं। एक सही मानों में धर्मपत्नी। जो सिर्फ महलों में धरी रहती थीं। दूसरी तीखी समालोचक, विदुषी और डिक्टेटर।

मेरे राजा साहब से अनेक नाते थे। मैं उनका चिकित्सक तो था ही, मित्र भी था! वे मेरा विश्वास करते थे, दिल खोलकर बात करते थे। अनेक बार मैंने उनके प्राणों की रक्षा की थी, प्रतिष्ठा की भी। बहुत बार राजा साहब के आंसू मैंने देखे थे। मेरे सम्मुख राजा साहब वास्तव में एक निरीह व्यक्ति थे। राजा नहीं।

साल में २-३ दौरे मेरे रियासत में लग ही जाते थे। परन्तु इस बार व्यस्त रहने से कुछ देर में जाना हुआ। जाकर देखा, सर्दी से बचने के लिए राजा साहब रजाई में लिपटे हुए अंगीठी ताप रहे हैं—पास बैठी है मुहब्बत। वह मुहब्बत नहीं जो पिछले साल देखी थी–हुजूर कहकर पुकारने वाली, झुककर सलाम करने वाली। यह तो रानी की गुण-गरिमा से पूर्ण स्त्री थी। उसकी आंखों में गर्व और बातचीत में रानीपन की साफ झलक थी। मैं सुन चुका था कि महाराज के आदेश से कुंवर साहबान उसकी ताजीम करते हैं, राजवधू उसे अभ्युत्थान देती हैं। सुनकर ही मेरा मन विद्रोह से सुलग उठा। और जब मेरे वहां पहुंचने पर उसने मुझे ताजीम नहीं दी, उल्टे मुझीसे ताजीम चाही तो मैंने उस औरत की तरफ से एकबारगी ही मुंह फेर लिया। मैं उसकी ओर बिना ही देखे राजा साहब से बातें करने लगा।

राजा साहब ने देखा। देखकर मुस्कराए। मुस्कराकर कहा—पहचाना नहीं।

मैंने आश्चर्य का नाट्य करते हुए कहा—नहीं, महाराज!

'मुहब्बत है'—सरल आंखों से उसकी ओर ताकते हुए उन्होंने कहा।

मैंने कहा—ओफ, बिल्कुल ही सूखकर खुश्क हो गई!

राजा साहब ने आंखें मेरी ओर उठाकर कहा—कौन?

'मुहब्बत महाराज!' मैंने थोड़े दर्द से कहा। महाराज एकदम खिलखिला-कर हंस पड़े, बोले—इतनी मोटी तो हो रही है। आप कहते हैं सूख गई?

मैंने आंखें नीची करके रूखे स्वर में कहा—महाराज शायद खातून का जिक्र कर रहे हैं? परन्तु मैंने महाराज से मुहब्बत की बाबत अर्ज की?

'खूब हैं आप!' राजा साहब हंसकर बोले–मुहब्बत को मुहब्बत से जुदा करते

हैं आप। खैर, अब यह देखिए कि इनका मिज़ाज कैसा है ? इस बार तो मैंने इन्हीं के लिए आपको कष्ट दिया है।

अपनी अप्रसन्नता को मैंने छिपाया नहीं। थोड़ा रूखे स्वर में मैंने कहा—महाराज ने इतनी सी बात के लिए नाहक तकलीफ की। रियासत के डाक्टर और नर्स क्या इतना भी नहीं कर सकते ?

मेरा जवाब राजा साहब को पसन्द नहीं आया। उनका चेहरा उदास हो गया, परन्तु प्रथम इसके वे कुछ कहें मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने मुहब्बत से कहा—दूसरे कमरे में चलो, देखूं क्या बात है।

स्पष्ट था कि वह मेरी भावना को ताड़ गई। उसकी त्योरियों में बल पड़ गए। जब मैं उसकी परीक्षा कर चुका और चलने लगा तो उसने कहा—कड़वी दवा मत दीजिए। नहीं खा सकूंगी।

मैंने उलटकर देखा। मेरी आंखें जलने लगीं।

मैंने कहा—क्यों ?

'मैं कड़वी दवा नहीं खा सकूंगी।'

मैंने जवाब नहीं दिया। गहरी विरक्ति और कुत्सा से मेरा मन भर गया।

'आप स्थानीय डाक्टर को ज़रा बुला लीजिए, मैं उन्हें समझा दूंगा। इनकी चिकित्सा-व्यवस्था हो जाएगी।'

और इस प्रकार डाक्टर साहब का चरण अन्तःपुर में पड़ा। नवयुवक थे। गौर वर्ण था, गोल मुंह और गोल ही आंखें। हर समय हंसकर बातें करना उनका स्वभाव था। जब मेरे ही सामने उन्होंने उस औरत को 'हुज़ूर' कहकर पुकारा तो उस औरत ने साभिप्राय मेरी ओर ताका। उस ताकने का अभिप्राय यह था देखा, इस तरह बोलना चाहिए।

रियासती व्यवस्था बड़ी विचित्र होती है। अन्तःपुर के उस द्वार पर रात-दिन संगीन का पहरा रहता था। कोई पक्षी भी वहां पर नहीं मार सकता था। परन्तु डाक्टर के लिए रोक न थी। डाक्टर को देखते ही संतरी बन्दूक नीचे करके द्वार छोड़ हटकर खड़ा हो जाता था और डाक्टर एक मुस्कान उसपर फेंककर ऊपर चढ़ जाते। कक्ष में अकेली मुहब्बत और राजा साहब। तबीयत दोनों की खराब।

सर्दी के दिन थे। राजा साहब सुबह ही से धूप तापने को तिमंजिली छत पर आरामकुर्सी पर जा पड़ते। वहीं से वे पान कचरते रहते। तेल की मालिश होती रहती। कभी-कभी सो भी जाते। मुहब्बत बहुत कम ऊपर चढ़ती थी। टांगों में दर्द था। सीढ़ियां चढ़ नहीं सकती थी। राजा साहब प्रायः दिन-दिन भर छत पर पड़े रहते और मुहब्बत दिन-दिन भर अपने कमरे में अकेली।

डाक्टर नित्य आते। पहले देखते मुहब्बत को, फिर ऊपर जाकर राजा साहब को। नीचे उतरकर फिर मुहब्बत से बात करते। बात किस ढंग पर, किस मजमून की होती थी, इसका तीसरा साक्षी था शारदीय वातावरण, एकांत एकाकी मिलन, वेश्या और वेश्या की पुत्री। राजा बूढ़े, शराबी, सनकी और रोगी तथा गैरहाजिर। डाक्टर को प्रवेश की स्वतंत्रता, एकान्त सहवास की स्वतंत्रता, और चाहे जब तक भीतर रहने की स्वतंत्रता; एक चमड़े का हैंडबैग हाथ में ले जाने और ले आने की स्वतंत्रता। इन सबने घुलमिलकर उस पेशेपन्थी डाक्टर और उस पेशेवर वेश्या को एकसूत्र में बांध दिया। पहले प्रेमोदय हुआ, फिर प्रेमालाप।

अब दोनों एक थे, पाप और नमकहरामी से भरपूर। निरीह मालिक से विश्वासघात करने को तैयार। कुछ दिन संकेतवार्ता चली। फिर एक दिन खुल कर बातचीत हुई।

डाक्टर ने कहा—मुहब्बत, इस तरह कब तक चलेगा?

'यही मैं कहती हूं।'

'तब?'

'चलो, कहीं भाग चलें।'

एक दिन अवसर पाकर मुहब्बत ने कहा—एक बात कहती हूं।

'कहो।'

'किसीसे कहोगे तो नहीं।'

'नहीं।'

'जिन्दा न रहने पाओगे।'

'तो साथ ही मरेंगे। तुम बात कहो।'

'वह सेफ देख रहे हो?'

'देख रहा हूं।'

'उसमें नोटों के गट्ठर भरे पड़े हैं।'

'अच्छा, तुमने देखा ?'

'देखा।'

'लेकिन खजाना तो नीचे पहरे में है।'

'यह महाराज का प्राइवेट पर्स है।'

'अच्छा कितना रुपया है ?'

'कल गिना था, ५ लाख के नोट हैं।'

'सच !'

'एक मोतियों की माला है, कहते थे एक लाख की है।'

'अच्छा ?'

'एक हीरे की कलगी है, डेढ़ लाख की है।'

'अरे !'

'और मुट्ठी भर जवाहर-हीरे-मोती हैं।'

'भई राजा का घर है, राजा के घर में मोतियों का अकाल ?'

'सुनो।'

'क्या ?'

'मैं वह सेफ खोल सकती हूं।'

'अरे ! किस तरह ?'

'एक तरकीब है। मुझे मालूम है।' उसने इधर-उधर देखा। डाक्टर ने कहा—क्या चाबी हथिया ली है ?

'नहीं, हरूफ उलट-पुलट होते हैं। कल राजा साहब ने मुझे बताए।'

डाक्टर ने अपने को संयत करके कहा—

'मुहब्बत, तुम जानती हो, मैं तुम्हें कितना चाहता हूं।'

'खूब जानती हूं !' मुहब्बत ने मुस्कराकर कहा।

'फिर यह दौलत अपनी होनी चाहिए। अभी उम्र बहुत काटनी है और तुम तो बिल्कुल नौजवान हो। इस मुर्दे राजा के पास जैसे कब्र में दफना दी गई। इस दौलत को हथियाकर तो तुम रानी बन सकती हो, सच्ची रानी !'

'ऐसा करना खतरे से खाली नहीं है।'

'लेकिन इस दौलत को यहीं छोड़ जाओगी।'

'तो क्या जेल काटूंगी ?'

'जेल बेवकूफ काटते हैं।'

'मैं पक्की बेबकूफ हूं।'

'लेकिन मैं जरा भी बेवकूफ नहीं।'

'तो तुम यह दौलत लूट लेना चाहते हो ?'

'पहले एक बात बताओ।'

'क्या ?'

'इस सेफ की बात किसीको मालूम है ?'

'सेफ को तो सभी ने देखा है।'

'नहीं। रकम।'

'न। किसीको नहीं मालूम।'

'क्या कुंवर साहब को भी नहीं ?'

'नहीं। उन्हींसे छिपाकर तो यह रकम और जवाहरात रखे गए हैं।'

'किसलिए ?'

'हविश। जवाहरात तो सब रानी साहिबा के हैं।'

'उन्हें मालूम है ?'

'नहीं।'

'ठीक कहती हो ?'

'परसों स्वयं राजा साहब ने कहा था। इस रकम की कभी किसीके सामने चर्चा भी न करना।'

'और तुम्हें उन्होंने ताला खोलना, बन्द करना भी बता दिया ?'

'दो-एक बार देखा, मैं समझ गई।'

'क्या राजा जानता है कि तुम इसे खोल सकती हो ?'

'नहीं। मैंने कल ज्यों ही मज़ाक से हाथ लगाया था, सेफ खुल गया।'

'तो यह हमारा-तुम्हारा भाग्य है, मुहब्बत, मेरे-तुम्हारे बीच ईमान है। मेरी गंगा, तुम्हारा कुरान।'

'कस्म खाओ।'

'खाई भई।'

'कल से चारपाई पर पड़ जाओ ; मैं रोज़ आऊंगा, खाली बैग लेकर। और जितना उसमें समा सकेगा भर ले जाऊंगा। राजा साहब कब ऊपर जाते हैं ?

'चाय-पानी पीकर नौ बजे।'

'मैं दस बजे आऊंगा।'

'लेकिन राजा यदि कभी सेफ खोले ?'

'हमें सिर्फ एक हफ्ता लगेगा।'

'इसी हफ्ते में यदि बात खुल गई ?'

डाक्टर की आंखों में चमक आई। उसने मुहब्बत का हाथ कसकर पकड़ा और कहा—एक हफ्ते में भी नहीं और उसके बाद भी नहीं। एक काम कर सकोगी ?

'क्या ?'

'चाय के साथ····' डाक्टर की ज़बान लड़खड़ाई। मुहब्बत ने घबराकर कहा—न भई, यह काम मुझसे न हो सकेगा।

'बेवकूफी मत करो, मैं डाक्टर हूं, अनाड़ी नहीं। शक-शुबा किसीको न होगा। काम ऐसी सफाई से होगा।'

'अरे बाबा, फांसी पड़ेगी, फांसी'

'क्या बातें करती हो, मुहब्बत ! सिर्फ दो कतरे चाय में डाल दो। चाय तो तुम्हीं बनाती हो ?'

'हां, परन्तु उससे क्या होगा ? क्या यह जहर है।'

'जहर तो है लेकिन राजा इससे मरेंगे नहीं। सिर्फ बदहवास हो जाएंगे। उनका दिमाग फेल हो जाएगा।'

'इसके बाद ?'

'इसके बाद हमारे लिए अवसर ही अवसर है।'

चतुर डाक्टर ने उस औरत को हिम्मत कायम करने का अवसर दिया और तेज़ी से चल दिया। मुहब्बत एकदम मसनद पर से उठ गई।

राजा साहब यों तो हमेशा ही किसी न किसी शाही बीमारी से मुब्तिला रहते थे। कभी सर्दी, कभी जुकाम ; कभी कुछ, कभी कुछ। मगर यह तो उनकी तन्दुरुस्ती के ही अन्तर्गत था। आज एकाएक उनकी तबियत में परिवर्तन-सा लगा। वे ऊपर धूप में जाने लगे तो सीढ़ियों पर लड़खड़ाकर गिरकर उठे।

ऊपर जाकर आरामकुर्सी पर बदहवास से पड़ गए।

डाक्टर आया। महाराज को बारीकी से देखा और कहा—रात ज्यादा ड्रिन्क किया गया प्रतीत होता है। आराम फर्माने से कल तक सब ठीक हो जाएगा। उन्होंने राजा साहब के लिए नुसखा लिखा और भी हिदायतें लिखीं। राजा साहब ने जैसे नींद से जागकर कहा—मुहब्बत को भी देखते जाइए, कैसी है।

'देखता जाऊंगा, सरकार।'

वे नीचे उतरे। आंखों ही में बातें हुईं। मुहब्बत ने कहा—

'हम मारे जाएंगे, डाक्टर साहब!'

'फिक्र मत करो, हिम्मत रखो।'

'लेकिन मैं यह काम नहीं कर सकती। आज यह दवा मैं नहीं दूंगी।'

'तो मैं कहूंगा कि मुहब्बत ने राजा साहब को जहर दिया है। जानती हो मैं डाक्टर हूं, चाहूं तो अभी आधे घंटे में हथकड़ियां डलवा दूंगा!' डाक्टर की आंखों में प्रतिहिंसा व्यक्त हो उठी।

मुहब्बत ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम भी नहीं बचोगे डाक्टर; मैं कहूंगी तुमने ही जहर लाकर दिया था।

डाक्टर ने हंसकर कहा—ऐसा कहते ही यह साबित हो जाएगा कि तुमने जहर दिया। अब तुम्हें यह साबित करना रह जाएगा कि डाक्टर ने दिया। वह तुम कैसे साबित करोगी?

मुहब्बत ने आंखों में आंसू भरकर कहा—डाक्टर, रहम करो! मैं बदनसीब औरत हूं।

'तो मैं जो कहता हूं करो। वह सेफ खोलो, जितनी रकम इस बैग में आती है, भर दो। मैं तब तक बाहर देखता हूं कोई आता तो नहीं। मगर पहले सारी ज्वैलरी बैग में रख दो। डाक्टर ने बाहर की ओर मुंह फेरा, और मुहब्बत ने कांपते हाथों से सेफ को छुआ। लाखों रुपयों की ज्वैलरी और नोट डाक्टर के बैग में भरकर जब मुहब्बत ने डाक्टर के हाथ में बैग दिया तो सूखे मुंह से उसकी ओर देखकर कहा—और आप डाक्टर, मेरे साथ दगा न करोगे, सब हजम न कर जाओगे, इसीका क्या भरोसा है?

एक कुटिल हास्य लाकर डाक्टर ने कहा—इत्मीनान रखो मुहब्बत, हमारी-तुम्हारी मुहब्बत इसके बीच में है। एक प्रकार से बैग उसने झपट लिया।

मुहब्बत ने कहा—और गंगा और कुरान ?

'हां, हां वह भी। लो आज की खुराक'—डाक्टर ने एक छोटी सी पुड़िया उसकी ठण्डी बर्फ-सी उंगलियों में पकड़ा दी। डाक्टर चला गया और मुहब्बत मूर्छित-सी होकर जमीन पर गिर गई।

राजा साहब की हालत बहुत बदतर हो गई। उनमें सर्वथा ज्ञान का लोप हो गया। बदहवासी में वे अंटशंट बकने लगे। होंठ उनके काले और आंखें लाल हो गईं। अपने दोनों हाथों की उंगलियों से वह कुछ ताने-बाने-से बुनने लगे। खाना-पीना समाप्त हो गया। गर्म पानी में घोलकर मीठी शराब देने से उन्हें कुछ चैतन्य आता था। मुहब्बत और डाक्टर ने राजा साहब की सेवा में दिन-रात एक कर दिया। रियासत भर में मुहब्बत एक आदर्श सती स्त्री की भांति प्रशंसित हो गई—कलिकाल में मुसलमान वेश्या होकर ऐसी सेवा-परायण स्त्रीं भला कहां मिल सकती है ? और डाक्टर ने तो सत्युग का उदाहरण उपस्थित कर दिया।

रात-रात भर जब सब नौकर-चाकर, परिजन थक जाते, ये दोनों ही राजा की सेवा में जागते रहते—उन्हें निर्विघ्न-संदेहरहित मृत्यु के द्वार तक अत्यन्त सफलता से पहुंचाते जाते थे।

सेफ खाली हो चुका था। और अब मुमूर्षु रोगी के पास आंखों और इंगितों में इन दोनों व्यक्तियों की जो बातचीत होती उसका मूल विषय होता वह धन जो चुरा लिया गया था और अब डाक्टर के पेट में पहुंच चुका था। मुहब्बत घबराकर सूखे होंठों से कहती—देखना, दगा न करना, तुम्हारे विश्वास पर यह सब किया है। डाक्टर आंखों में ही जवाब देते—इत्मीनान रखो, सब ठीक हो जाएगा।

परन्तु राजा साहब की अवस्था जब सांघातिक रूप धारण कर गई तो डाक्टर ने कुंवर साहब से कहा—अब तो मेरे बूते की बात रही नहीं है, किसी बड़े डाक्टर की सहायता की आवश्यकता है। कल न जाने क्या हो जाय तो मेरा मुंह काला होगा। मैं तो जो सेवा करनी थी, कर चुका।

भला डाक्टर की सेवा में संदेह किसे था ?

राजा साहब को सदर शहर में अस्पताल ले जाया गया। वहां अनेक धुरंधर डाक्टर उनकी देखभाल करने लगे। परन्तु रोग का कारण किसीकी समझ में नहीं आ रहा था। रोग बढ़ता जा रहा था। और अब राजा साहब को किसी

भी क्षण बेहोशी की हालत में मृत्यु हो सकती थी। काशी की पण्डित-मण्डली शिव मन्दिर में तवार्णव के सम्पुट से मृत्युंजय मन्त्र का पाठ कर रही थी। देश-देश के ज्योतिषी क्षण-क्षण पर क्रूर ग्रहों की गतिविधि देख रहे थे। गतिविधि ठीक-ठीक नहीं देखी जा सकी थी तो केवल डाक्टर और मुहब्बत की, जो इस निर्मम हत्या, विश्वासघात और उनके प्रधान अभियुक्त थे।

डाक्टर हताश हुए तो एक दिन पश्चात् कुंवर साहब ने मेरा ध्यान किया। ज़रा सी ही बात पर राजा साहब मुझे बुला भेजते थे। अब इतना बड़ा काण्ड हो गया और मुझे नहीं बुलाया गया। कुंवर साहब के प्रस्ताव का डाक्टर और मुहब्बत दोनों ने ही विरोध किया। डाक्टर ने कहा—इतने बड़े चिकित्सक हार बैठे, वे आकर अब क्या करेंगे? कुंवर साहब ने कहा—मानो कुछ न करेंगे। होनहार होकर रहेगा। पर अपने मित्र को देख तो लेंगे। मुझे सूचना भेज दी गई।

आकर देखा, अभागा राजा बिछौने पर असहायावस्था में पड़ा है। आंखें आधी बन्द। आक्सीजन गैस से श्वास लेता हुआ दोनों हाथों की उंगलियां जैसे किसी सूत के धागे को लपेट रही थीं। आंखों का रंग लाल अंगारा, टेम्प्रेचर बिल्कुल नहीं, गुर्दों का काम बन्द, दिल की धड़कन किसी भी क्षण धोखा देने वाली।

सब कुछ देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। और जब मैंने सुना कि पूरे ग्यारह दिन से ऐसा है तब तो मेरा मन संदेह और आशंकाओं से भर गया।

हर दूसरे घण्टे पर डाक्टर रोगी को सम्हाल रहे थे। मेरी अवाई सुनते ही वे दौड़े आए और शुरू से आखीर तक रोग का इतिहास सुनाने लगे। एक-दो सम्बन्धी राजा उपस्थित थे। बहुएं, पुत्र, परिजन सभी थे। डाक्टर रोग-विवरण सुना रहा था। बीच-बीच में अनावश्यक हास्य उनके होंठों पर आ जाता था। मेरा संदेह निश्चय में बदल रहा था। बीच में रोककर मैंने पूछा—ठहरिए, टेम्प्रेटर-चार्ट कहां है, देखूं?

डाक्टर का मुंह सूख गया। उसने कहा—टेम्प्रेचर-चार्ट तो हमने बनाया ही नहीं।

'क्यों?' मैंने खूब कड़ाई से प्रश्न किया।

डाक्टर ने हकलाते हुए कहा—टेम्प्रेचर राइज़ ही नहीं हुआ।

'तो बिना ही टेम्प्रेचर के ये डिलीरियम के सांघातिक आसार उत्पन्न हो

गए ?'

'जी हां, जी हां,'—डाक्टर ने थूक सटककर हंसने की कोशिश की।

मैंने कहा—और आपने इधर ध्यान नहीं दिया ?

'दिया साहब, मैंने······'

मैं संयत न रह सका। गरजकर मैंने कहा—डाक्टर, यह सरासर खून का केस है, मुझे मुनासिब है कि मैं पुलिस को इत्तला दूं। मैं तेजी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। मुहब्बत चीख मारकर बेहोश हो गई। डाक्टर मुर्दे की भांति ज़र्द पड़ गया। जूड़ीग्रस्त पुरुष की भांति वह कांपने लगा।

इसी समय राजा ने आंखें खोलीं। उनकी वह दृष्टि स्वाभाविक थी। मैं लपककर उनके पास गया। दोनों हाथों में उनका हाथ लेकर कहा—महाराज, साहस मत खोइए, आपकी जो इच्छा हो, कहिए। उन्होंने इधर-उधर आंखें घुमाईं। क्षीण स्वर में कहा—बड़े······

तुरन्त ही बड़े कुंवर ने उनकी गोद में सिर डाल दिया। राजा की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। मैंने नाड़ी देखी, दिल की धड़कन देखी। भीड़ को तुरन्त हटाया। राजा साहब ने मुंह खोल दिया। मैंने कहा—गंगाजल दीजिए। दो तुलसीदल डालकर एक घूंट गंगाजल उनके मुंह में डाल दिया गया। जल कण्ठ में गया और प्राण नश्वर शरीर से पृथक् हुआ।

उस रियासत में मेरा काम और मेरे सम्बन्ध सब समाप्त हो चुके थे। फिर भी जिस दिन नए राजा को पगड़ी बंधी मुझे हाजिर होना पड़ा। नए राजा नवयुवक, भावुक और दुबले-पतले लजीले से थे। सब कृत्य समाप्त होने पर जब मैं एकान्त में मिला तो बातें हुईं। मैंने कहा—

'उस मामले में आपने कुछ किया ?'

'क्या आपको कुछ मालूम था ?'

'मैं निश्चित रूप से सिद्ध कर सकता हूं कि यह अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया गया खून था।'

'परन्तु किसी भी डाक्टर ने ऐसा नहीं कहा ?'

'कैसे कहा जा सकता था, खूनी डाक्टर है। सब कार्य बहुत वैज्ञानिक रीति से हुआ। संदेह की कोई भी गुंजाइश न थी। मुझे तो केवल एक सूत्र मिल गया, नहीं तो मैं भी न जान सकता।'

'पर अब तो उन्होंने सब कुछ बता दिया है।' उनका मतलब मुहब्बत से था।

'सब कुछ ?'

'जी, डाके का हाल आप सुन चुके होंगे ?'

'नहीं तो, डाका कैसा ?'

इसपर नये राजा ने सारा विवरण बताया। मुहब्बत ने राई-रत्ती सब बता दिया था।

मैंने कहा—आपने मामला पुलिस में नहीं दिया ?

'कैसे दे सकता था, वे वेश्या अवश्य हैं पर मेरे पिता ने उन्हें मेरी माता के स्थान पर रखा था। उनके विरुद्ध कुछ भी करना मेरे लिए अशक्य था। यह मेरे खानदान की प्रतिष्ठा और मर्यादा का प्रश्न था।'

'किन्तु १० लाख का डाका और राजपुरुष की जान'—मैंने धीरे से कहा।

युवक राजा ने आंखों की कोर से आंसू पोंछा। बहुत देर हम चुप बैठे रहे। फिर मैंने कहा—रुपया मिलने की कुछ उम्मीद है ?

'नहीं।'

'सब क्या डाक्टर लूट ले गया ? मुहब्बत को कुछ नहीं दिया ?'

'नहीं।'

'डाक्टर कहां है ?'

'छुट्टी ली है, शायद तबादला भी करा रहा है।'

और मुहब्बत ?'

'वे यहीं हैं।'

'क्या मैं मिल सकता हूं ?'

नए राजा ने देखकर कहा—क्षमा कीजिए। वे बाहर नहीं आती हैं। महल में हैं। युवक राजा की शालीनता अद्भुत थी। मैंने कहा—राजा मर गया, आप चिरंजीव रहें।

और मैं उठकर चला आया।

# राजा साहब की कुतिया

यह भी ऐसी ही कहानी है। राजा-रईसों की सनक, भड़क और हिमाकत का अच्छा दिग्दर्शन इस कहानी में है।

जी हां, हिन्दुस्तान की आजादी और मेरी बर्बादी एक ही साथ हुई। संयोग की बात है—बस, एक जरा सी चूक ने तकदीर का बेड़ा गर्क कर दिया। अब आप जब सुनने पर आमादा हैं तो पूरा किस्सा ही सुन लीजिए।

आप तो जानते ही हैं कि एल-एल० बी० पास करके पूरे तीन साल अदालत की धूल फांकी। किसी भी बात की कोर-कसर नहीं रक्खी। चालाक से चालाक मुन्शी रक्खे, बीवी के सारे जेवर बेच-बेचकर मोटी-मोटी कानून की किताबें खरीदीं। बढ़िया से बढ़िया सूट सिलवाए। हमेशा बड़े वकीलों का ठाठ रक्खा, पर कम्बख्त वकालत को न चलना था—न चली। जी हां, कमाल ही हो गया। ठीक वक्त पर कचहरी जाता। हर अदालत में चक्कर काटता। एक-एक मुवक्किल को ताकता, भांपता। एक-एक कानूनी पाइन्ट पर दस-दस नजीरें पेश करता, मगर बेकार। मुवक्किल थे कि दूर ही से कतरा जाते। एक से बढ़कर एक नामाकूल-घनचक्कर घिसे-घिसाए वकील तो मजे-मजे जेब गर्म करके मूंछों पर ताव देते घर लौटते; और बन्दा छूछे हाथ आता। यह सब तकदीर के खेल हैं साहब, दुनिया में लियाकत की कद्र ही नहीं है। अन्धी दुनिया है, भेड़ियाधसान है। बस तकदीर जिसकी सीधी उसीके पौबारह हैं। अन्त के तन्त में वकालत को धता बता राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी हो गया।

जी हां, कह तो रहा हूं—प्राइवेट सेक्रेटरी। यकीन कीजिए। मैं आपको एम्प्लायमैन्ट-लेटर भी दिखा सकता हूं। और अर्ज करता हूं कि पूरे सात महीने और सत्ताईस दिन वह चैन की बंसी बजाई कि जिसका नाम! यानी पूरी तनख्वाह, बढ़िया खाना, कोठी-बंगला। पान, सिग्रेट-सिनेमा और दोस्त-महमानों का खर्चा फोकट में। बस, जरा-सी चूक ने सब चौपट कर दिया।

मिस ज़ुबेदा; जी हां, यही नाम था उसका। राजा साहब ने मुझे ज़ुबेदा ही की नौकरी पर बहाल किया था। बस समझ लीजिए—ज़ुबेदा का ट्यूटर, गार्जियन, प्राइवेट सेक्रेटरी सब कुछ मैं ही था। राजा साहब उसे बेहद प्यार करते थे। जब मुझे नौकरी पर बहाल किया तो उन्होंने कहा था—बर्खुरदार, ज़ुबेदा को तुम्हारी निगरानी में सौंपकर मैं बेफिक्र हुआ। लेकिन खबरदार, तुम एक लहमे के लिए भी बेफिक्र न होना। नज़र कड़ी रखना और दिल नर्म। ज़ुबेदा कमसिन है, बेसमझ है—मिज़ाज उसका नाज़ुक है। वह बहुत ऊंचे खानदान की औलाद है; ऐसा न हो आवारा हो जाए, या उसकी आदतें बिगड़ जाएं। ज़ुबेदा मुझसे जल्द हिलमिल गई। और मैं भी उसे प्यार करने लगा। बस, मैं अपनी नौकरी पर खुश था। और नौकरी मेरी रास पर चढ़ गई थी। राजा साहब ज़िद्दी और झक्की परले सिरे के थे। पुराने ज़माने के खान-दानी रईस थे। हमेशा कर्ज़े से लदे रहते, फिर भी सभी तरह की लन्तरानियां लगी ही रहती थीं। कर्ज़ा और लन्तरानियां साथ-साथ न चलें तो रईस ही क्या? उम्र साठ को पार कर गई थी। भारी-भरकम तीन मन का शरीर, बड़ा रुआबदार चेहरा, शेर की दहाड़ जैसी आवाज़, लाल-लाल आंखें! किसकी मजाल थी कि उनकी आंखों से आंखें मिलाए। बात-बात में शान। पीते भी खूब थे, मगर अकेले। किसीको साथ बैठाना शान के खिलाफ समझते थे। तीन-चार पैग चढ़ाने के बाद जब सवारी गठ जाती तब उनकी दहाड़ से कोठी दहलने लगती थी। उस समय ज़ुबेदा को छोड़कर और किसीकी मजाल न थी जो उनके पास फटके।

गर्मी की मुसीबत से बचने के लिए राजा साहब मसूरी की अपनी कोठी में मुकीम थे। बहुत भारी कोठी थी। सुबह का वक्त था। रात बूंदाबांदी हुई थी। ठण्डी हवा चल रही थी। मौसम सुहावना था। और राजा साहब खुश थे। वे हाथ में एक पतली छड़ी लिए कमरे में टहल रहे थे। एक खिदमतगार पान-दान और दूसरा उगालदान लिए अगल-बगल चल रहा था। दो लठैत पीछे। क्षण-क्षण पान खाना और उगालदान में पीक डालना उनकी आदत थी। ज़ुबेदा उनके साथ थी और उसकी अर्दल में अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद मैं भी हाज़िर था। ज़ुबेदा चुहल करती, कभी आगे और कभी पीछे चक्कर खाती चली जा रही थी। राजा साहब देखकर खुश हो रहे थे। सच पूछिए तो ज़ुबेदा को वे जान से बढ़-

कर चाहते थे।

असल में जुबेदा एक बहुत ही उम्दा नस्ल की नाजुक विलायती कुतिया थी और राजा साहब ने गत वर्ष उसे मसूरी ही में पन्द्रह सौ रुपयों में खरीदा था।

अभी फाटक मुश्किल से कोई चालीस-पचास कदम था कि एक बुलडाग फाटक में घुस आया। उसे देखते ही जुबेदा बेतहाशा उसकी ओर भाग चली। राजा साहब एकदम बौखला उठे। वे पागल की तरह, 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते उसके पीछे भागे। उनके पीछे जुबेदा का प्राइवेट सेक्रेटरी मैं, और मेरे साथ लठैत, खिदमतगार अगल-बगल। जिनकी राजा साहब पर नज़र पड़ी और जिसने उनकी ललकार सुनी, भाग चला। कोठी में हड़बोंग मच गया।

फाटक पर जाकर राजा साहब हांफते-हांफते बदहवास होकर गिर गए। और हम लोगों को मीलों का चक्कर लगाना पड़ा। खुदा की मार इस जुबेदा की बच्ची पर! भागते-भागते कलेजा मुंह को आने लगा। पतलून चौपट हो गई। नया जूता बर्बाद हो गया। आखिर जुबेदा और जिम दोनों पकड़े गए। और उन्हें खूब मुस्तैदी से बांध दिया गया।

खुशखबरी सुनाने जब मैं राजा साहब के कमरे में पहुंचा तो वे बफरे हुए शेर की तरह दहाड़ रहे थे। सब खिदमतगार, लठैत, नौकर हाथ बांधे चुप खड़े थे। राजा साहब कह रहे थे—सबको गोली से उड़ा दूंगा। नामाकूल! मर्दूद!! मेरे पहुंचने पर वे लाल-लाल आंखों से मुझे घूरने लगे। मैंने डरते डरते हाथ जोड़कर कहा—सरकार, दोनों को पकड़ लिया है।

'बांधा उनको?'

'जी हुजूर!'

'अलग-अलग?'

'सरकार!'

'यही मुनासिब सजा है, लेकिन उस आवारा कुत्ते की जुर्रत तो देखो। मुझे हैरत है। क्या तुम जुबेदा की खानदानी इज्जत जानते हो?'

मैंने कहा—जी हां, हुजूर ने उसे पन्द्रह सौ रुपयों में खरीद लिया था।

'बेहूदा बकते हो, खरीद किया क्या माने? पन्द्रह सौ रुपया क्या जुबेदा की कीमत हो सकती है?'

'जी नहीं, सरकार !'

'तो फिर ?' राजा साहब ने आखें तरेरकर मेरी ओर देखा।

इस 'तो फिर' का क्या जवाब दूं, यह समझ ही न सका। हाथ बांधे खड़ा रहा। इसी समय एक खिदमतगार घबराया हुआ दौड़ता आया। आकर उसने राजा साहब से कहा—सरकार, माधोगंज की कोठी का प्यादा हाथ में लट्ठ लिए फाटक पर खड़ा है। वह कहता है—खैरियत इसीमें है कि 'जिम' को खोल दीजिए, वरना हंगामा मच जाएगा।

राजा साहब ने तैश में आकर कहा—ऐसा नहीं हो सकता। माधोगंज वालों से जो करते बने करें।

लेकिन माधोगंज की कोठी का प्यादा खुद ही भीतर घुस आया। उसने खूब झुककर राजा साहब को सलाम किया और हाथ बांधकर अर्ज की—हुजूर ! खुद बड़े सरकार ने मुझे भेजा है, उन्हें बहुत रंज है। लेकिन सरकार, अब हुक्म हो जाए कि कुत्ता खोलकर मेरे हवाले कर दिया जाए। बड़े सरकार बड़े गुस्सैल हैं, धुन पर चढ़ गए तो नाहक कोई खून हो जाएगा।

राजा साहब गरज पड़े—क्या कहा, खून हो जाएगा ? बढ़कर बोलता है ! नामाकूल, मर्दूद ! अच्छा ले। यह कहकर उन्होंने खूब चिल्लाकर अपने लठैतों को पुकारा—माधो, दीपा, रामू, गुल्लू, किसना !

परन्तु लठैतों के स्थान पर आ खड़े हुए माधोगंज के राजा साहब रामधारी-सिंह। साठ साल की उम्र, लम्बा कद, हाथ में बढ़िया छड़ी, बदन पर पूरी रियासती पोशाक। उन्होंने एकदम राजा साहब के सामने पहुंचकर कहा—यह आपकी सरासर ज्यादती है राजा साहब, कि आप अपने नौकरों की बेजा हरकत पर उन्हें शह देते हैं। आपका लिहाज़ करता हूं—वरना एक-एक की खाल खिंचवा लूं। बहुत हुआ, अब जिम को मेरे हवाले कीजिए।

राजा साहब ने बुलडाग की भांति गुर्राकर कहा—क्या खूब ! यह दम-खम और शान ? आप मेरे आदमियों की खाल खींच लेंगे ! गोया आप ही उनके मालिक हैं। चोरी और सीना-जोरी !

'लेकिन चोरी की किसने ?'

'जिम ने। ट्रेसपास, एकदम क्रिमिनल ट्रेसपास !'

'आप ज्यादती कर रहे हैं राजा साहब ! इसका नतीजा अच्छा न होगा।

याद रखिए, खूनखराबी की नौबत आई तो इसके ज़िम्मेदार आप ही होंगे।'

'तो आप हमें धमकी दे रहे हैं ? सरीहन वह आवारा कुत्ता कोठी में घुस आया और मेरी जुबेदा को भगा ले गया। इस जुल्म को तो देखिए।'

'कमाल करते हैं आप राजा साहब ! जिसको आप आवारा कहते हैं, क्या आप नहीं जानते कि बहुत मुद्दत की खोज के बाद जिस को मैंने जनाब गवर्नर साहब बहादुर से सौगात में पाया था ?'

'क्यों नहीं, जनाब गवर्नर साहब बहादुर से तो आपकी पुश्तैनी रसाई है। जाइए, कुत्ता नहीं खोला जाएगा।'

'अच्छी नादिरशाही है। यह आप हमारी खानदानी तौहीन कर रहे हैं।'

'खूब-खूब, गोया आप भी खानदानी रईस हैं। दो दिन की ज़मींदारी को चोरी-चकारी से बढ़ाकर और बनियागिरी से चार पैसे जोड़ लिए सो आप हो गए खानदानी रईस ! कमाल हो गया। और हम जो बहादुरशाह के ज़माने से रईस न चले आ रहे हैं, सो ? आपका कुत्ता हमारी खानदानी कुतिया से आशनाई करेगा। ऐं, यह हिमाकत !'

'रस्सी जल गई, ऐंठन बाकी है ! बाल-बाल तो कर्ज में बिंधे पड़े हैं, आप खानदानी रईस बनते हैं। राजा साहब, होश की लीजिए, चोरी और डाकेज़नी के जुर्म में सारे खानदान को न बंधवा लूं तो रामधारी नाम नहीं। आप हैं किस फेर में ?'

'आख्खा, तो यह भी देख लिया जाएगा। कर देखिए आप। नया रुपया है, उछलेगा तो ज़रूर ही। लेकिन मैं कहे देता हूं, लन्दन से बैरिस्टर बुलाऊंगा लन्दन से। भोपाल गंज रियासत की भले ही एक-एक ईंट बिक जाए। परवाह नहीं।'

'तो यहां भी कौन परवाह करता है। मैं खड़े-खड़े माधोगंज की ज़मींदारी को बेच दूंगा। और वाशिंगटन से कौंसिल बुलाऊंगा।'

'देखा जाएगा गवर्नर साहब, बहादुर की दोस्ती पर न फूलिएगा। पक्की शहादतें दूंगा। पता चल जाएगा कोर्ट में।'

'देख लूंगा, किसके धड़ पर दो सिर हैं ! कौन शहादत देने आता है !'

'तो तुमपर तीन हरफ हैं, जो करनी में कसर रक्खो।'

'राजा साहब, लोथें बिछ जाएंगी, लोथें।'

'खून की नहरें बहा दूंगा, नहरें; समझ क्या रखा है आपने ?'

दोनों पुराने रईस अपने-अपने दिल के फफोले फोड़ रहे थे। और हम लोग सिर नीचा किए खानदानी रईसों की खानदानी लड़ाई देख रहे थे। जी हां, रईसों की बात ही निराली है। इसी समय कुंवर साहब लपकते हुए चले आए।

हल्के नीले रंग का बुश कोट, आंखों पर गहरा काला चश्मा, हाथ में टेनिस का रैकट, गोरा रंग, घूंघर वाले बाल, होंठों पर मुस्कान, इसी साल एम० ए० फाइनल किया था। राजा साहब ने माधोगंज को देखा तो उन्होंने हंसकर उन्हें प्रणाम किया, और कहा—कमाल किया आपने चाचाजी, धूप में तकलीफ की, चलिए मैं 'जिम' को आपके यहां पहुंचाए आता हूं।

राजा साहब ने एकदम गुस्सा करके कहा—अयं, यह कैसी हिमाकत ? अपने खानदान को नहीं देखते, कुत्ता उनके घर पहुंचाने जाओगे ?

माधोगंज के राजा साहब ने जाते-जाते कहा—

'हौसला हो तो आ जाना अदालत में।'

'लन्दन से बैरिस्टर बुलाऊंगा—आपने समझ क्या रखा है ?'

'तो मुकाबिले के लिए वाशिंगटन के वकील तैयार रहेंगे।'

इसी समय एक खिदमतगार रोता-हांफता सिर के बाल नोचता आ खड़ा हुआ। उसने कहा—गजब हो गया सरकार, ज़ुबेदा उस जंगली जिम के साथ भग गई।

'अयं, भाग गई ?'

राजा साहब बौखलाकर अपनी तोंद पीटने और हाय-हाय करने लगे। लम्बी-लम्बी सांसें खींचते हुए उन्होंने कहा—

'मेरी खानदानी इज्ज़त लुट गई। कम्बख्त ज़ुबेदा की बच्ची ने न अपने ख़ानदान का ख्याल किया न मेरे आली खानदान का। दोनों की लुटिया डुबोई।'

बहुत देर तक राजा साहब कलपते रहे। इसके बाद मेरी ओर देखकर कहा—

'निकल जाओ ! अभी चले जाओ—नामाकूल, मर्दूद !'

और इस तरह खट से मेरा पतंग कट गया। इज्जत और आराम की नौकरी छूट गई। अब सिर्फ याद रह गए वे सात महीने और सत्ताईस दिन।

अब कहां रहे वे खानदानी रईस। अंग्रेज बहादुर हिन्दुस्तान से क्या गए, शौकीन राजाओं और शानदार रईसों की नस्ल ही खत्म कर गए। भारत के भाग्य तो जरूर जागे—पर विलायती कुत्तों की और हम जैसे विलायती पढ़-पिट्ठुओं की तकदीर तो फूटी और फिर फूटी।

# राजा साहब की पतलून

यह भी एक मार्के की कहानी है, जिसमें राजाओं की सनक और फजूलखर्ची की हास्यापद घटना वर्णित है।

वह पतलून उन्होंने खास तौर पर इसलिए तैयार कराई कि जब वे राउंड-टेबल कान्फ्रेन्स में शरीक होने लन्दन जाएं तो कान्फ्रेन्स के खास इजलास में उसी पतलून को पहनकर देश-देश के राजनीति-विशारदों के बीच बैठें, और पतलून से उनकी आंखों में चकाचौंध उत्पन्न कर दें। जबसे उन्हें सम्राट् जार्ज का सादर निमन्त्रण उक्त कान्फ्रेन्स में शरीक होने के लिए मिला—तबसे ही वे इस उधेड़-बुन में रहे कि इस खास अवसर पर वे कोई ऐसी अनोखी चीज साथ ले जाएं जो बेजोड़ हो और जिसकी विलायत में धूम मच जाए। खूब सोच-समझकर उन्होंने यह पतलून तैयार कराने का इरादा दृढ़ किया। उन्होंने यह तय कर लिया कि वे ऐसी बेजोड़ पतलून पहनें जैसी संसार में आज तक किसीने न पहनी हो। इस निश्चय में उनकी युक्ति यह थी कि जब गांधीजी सिर्फ एक लंगोटी ही पहनकर उक्त कान्फ्रेन्स में जा रहे हैं तो क्यों न इस लंगोटी का जवाब इस पतलून से दिया जाए। इससे भारतीय संस्कृति का भी सवाल हल होता था। भारत के शिरोमणि दो ही जाति के पुरुष हैं: एक संत और दूसरे राजा। महात्मा सन्त हैं; वे लंगोटी पहनकर जाएंगे तो हम राजा हैं; हम पतलून पहनेंगे। जैसे उस राजसभा में गांधीजी की लंगोटी अद्वितीय होगी वैसे ही हमारी पतलून। अब सवाल यह रह गया कि लंगोटी और पतलून में, इन दोनों में सबसे अधिक चर्चा का विषय कौन हो? श्रेष्ठता किसे मिले? बस, राजा साहब ने तय किया कि हम जो पतलून पहनेंगे, वही अद्वितीय रहेगी। वह गांधीजी की लंगोटी को मात करेगी। और लन्दन की उस राउंड-टेबल कान्फ्रेन्स में उस पतलून की ही सर्वोपरि चर्चा रहेगी।

जैसे कि राजा लोगों के खून में खास असर होता है, राजा साहब पक्के

सनकी थे। उम्र ५० को पार कर गई थी। मगर खूब तगड़े दिखाऊ और ठाठ के आदमी थे। पीढ़ियों की संचित धन-रत्न-सम्पदा चहबच्चों में भरी पड़ी थी! बड़े-बड़े बेजोड़ हीरे-मोती-माणिक खजाने में भरे पड़े थे। पोलो, ब्रिज और जुआ खेलने में तथा शराब पीने में एक नम्बर थे। धूमधाम की अंग्रेजी बोल लेते थे। संस्कृत के बहुत से श्लोक कण्ठ थे, उनसे पण्डितों पर धाक जमाया करते थे। ज़िद्दी परले सिरे के थे। और भी अनेक गुण थे, एक निराले गुण के खातिर ही तो वे रियासत ही में नहीं, हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध हो गए थे। पर सभ्यता के इस बेहूदे वातावरण में हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे। इतना ज़रूर कहेंगे कि रानियां, लौंडियां, पासबानें व्यर्थ दर्जनों कोडियां थीं पर सन्तान के नाम चुहिया भी न थी। खैर, अब पतलून की बात सुनिए—

बनारस के खास कारीगरों को आर्डर देकर उन्होंने सोने के ठोस तारों और चीन के महीन रेशम का कपड़ा पतलून के लिए तैयार कराया। दिन के प्रकाश में वह कपड़ा सूर्य की भांति चमकता था। उसकी, बम्बई की ह्वाइटवे लेडला की अंग्रेजी फर्म से पतलून सिलवाई। पतलून सीने के लिए खास तौर से एक स्पेशियलिस्ट कारीगर फ्रांस से बुलवाया गया। उसपर दिल्ली के १२ चतुर कारीगरों को रियासत में बुलवाकर ही मोती-जवाहरात टकवाए गए। इन कारीगरों ने रात-दिन ५० संगीनधारी पहरेदारों के पहरे में २ महीने तक परिश्रम करके ये रत्न कारचोबी और सलमे के सहारे पर पतलून में टांके। कुल जमा पतलून पर डेढ़ करोड़ रुपए की लागत बैठी। पतलून जब तैयार हो गई तो वह राजा साहब के खासगाह में एक शीशे के केस में रखी गई। उसे राजा साहब देखते और मूंछों पर ताव देते थे। वे बहुत खुश थे। और अब उन्हें विश्वास हो गया था कि गान्धीजी की लंगोटी हरगिज-हरगिज इसका मुकाबला नहीं कर सकती। यह पतलून पतलूनों के इतिहास में अद्वितीय है।

आखिर यात्रा का समय निकट आया। यात्रा के लिए राजा साहब के लिए एक समूचे जहाज़ की व्यवस्था की गई। पतलून की चोरी न हो जाए इस अंदेशे से स्काटलैंडयार्ड से ८ मुस्तैद अफसर बुलाकर तैनात कर दिए गए। अमेरिका की एक प्रसिद्ध महिला डिटेक्टिव को पतलून का चार्ज दिया गया।

बादशाह जार्ज को खास तौर पर लिखकर राजा साहब ने एक एटीकेट मिनि-

स्टर तलब किया। बादशाह ने अपने कोई एक अर्ल को इस काम पर तैनात करके भेज दिया। शाही अदब और वेस्टर्न एटीकेट सिखाना तथा राजा साहब एटीकेट के ज़रा भी इधर-उधर कोई काम न कर सकें, इसकी निगरानी उसका काम था।

ज्यों ही जहाज़ बम्बई से रवाना हुआ और लन्दन का कार्यक्रम बनने लगा, पतलून की चर्चा चली। परन्तु पतलून को अच्छी तरह देखभाल कर एटीकेट मिनिस्टर ने कहा—यह पतलून आप लन्दन में नहीं पहन सकते।

'क्यों नहीं पहन सकता ?'

'एटीकेट के खिलाफ है।'

'लेकिन गांधीजी कैसे लंगोटी पहन सकते हैं ?'

'वे पहन सकते हैं।'

'वह एटीकेट के खिलाफ क्यों नहीं है ?'

'उनके साथ ब्रिटिश सरकार की कोई ट्रीटी नहीं है—वे ब्रिटिश सबजेक्ट नहीं हैं। वे महात्मा हैं। वे बादशाह के प्रतिष्ठित मेहमान हैं।'

'मैं भी प्रतिष्ठित मेहमान हूं।'

'पर आप बादशाह के अधीन राजा हैं।'

'तो इससे क्या ? इंग्लैण्ड से हमने कोई ऐसी ट्रीटी नहीं की है कि हम अपनी मनचाही पतलून न पहन सकें।'

'न सही, पर यह एटीकेट के खिलाफ है, वहां आपको जिस-जिस अवसर पर जैसी-जैसी पोशाक पहननी चाहिए, उनकी तैयारी का आर्डर मैंने लंदन की एक प्रसिद्ध फर्म को दे दिया है। वहां पहुंचते ही वे पोशाकें मिल जाएंगी।'

'लेकिन मैं तो यह पतलून पहनकर खास इजलास में जाना चाहता हूं।'

'ऐसा नहीं हो सकता।'

'क्यों नहीं हो सकता ?'

'कहा तो, एटीकेट के खिलाफ है।'

'फिर भी यदि मैं पहनूं ?'

'[illegible] लन्दन के लोग आपको पागल समझेंगे, आपका मज़ाक उड़ाएंगे।'

'यह तो सरासर बदतमीज़ी है।'

'बदतमीज़ी नहीं है, एटीकेट है। इंग्लैण्ड सभ्य देश है। वहां सब एक-सी

पोशाक पहनते हैं।'

'तो लोग कैसे जानेंगे कि मैं वहां गया ?'

'आप खूब ज़ोरदार स्पीच दीजिए।'

'लेकिन पतलून ?'

'यह पतलून नहीं पहन सकते।'

राजा साहब उसी दिन नाराज़ हो गए। उनका लन्दन जाने का सारा उत्साह ही ठंडा पड़ गया। सारा मजा ही किरकिरा हो गया। उन्होंने ठंडी सांस लेकर कहा—

'फिर तो मेरा लन्दन जाना ही बेकार है।'

'बेकार क्यों है ?'

'मैं यह पतलून तो वहां पहन नहीं सकता।'

'लेकिन आप एक काम कर सकते हैं।' चतुर एटीकेट मिनिस्टर ने कहा।

'वह क्या ?'

'लन्दन से वापसी में आप अपनी रियासत में एक ग्रांड जलसा कीजिए। उसमें यह पतलून पहन सकते हैं।'

'उसमें एटीकेट के खिलाफ नहीं होगा ?'

'जी नहीं, हिन्दुस्तान में एटीकेट का कोई सवाल ही नहीं है।'

'और फिर वह मेरी रियासत में है, मैं जो चाहूं कर सकता हूं।'

'बेशक।'

राजा साहब खुश हो गए। उन्होंने कहा—यहीं सही, लन्दन में न सही, वापसी में ज़बर्दस्त दरबार करूंगा, जिसमें यह पतलून पहनूंगा।

सो लन्दन से लौटते ही राजा साहब ने एक भारी दरबार का आयोजन किया। यह आयोजन राजा साहब की राउंड-टेबल कान्फ्रेंस से अवाई के सिलसिले में था। अनेक राजा, महाराजा, अंग्रेज़ अफसर निमंत्रित किए गए। बनारस के भांड, दिल्ली के नक्काल और वेश्या बुलाई गईं। नाच-तमाशों की धूमधाम मच गई। शिकारों के बड़े-बड़े प्रोग्राम बने। दावतों की खास तैयारी हुई। देश-देश के कलावंतों को बुलाया गया।

जब दरबार का सिर्फ एक दिन रह गया तो राजा साहब ने एक बार पतलून

का रिहर्सल किया, यानी पतलून को एक बार पहनकर देखा। परन्तु पतलून फिट नहीं हुआ। उसमें एक सल पड़ता था। राजा साहब की त्योरियों में बल पड़ गए। उन्होंने रियासत के सब दर्जियों को और उनके उस्तादों को तलब किया'''और कहा—इस पतलून का यह नुक्स दूर करो। यह क्या बात है कि जब हम पतलून पहनते हैं तो इसमें एक सल पड़ता है ?—दर्जियों और खलीफाओं ने देखभाल कर सलाह की और सबने एकमत होकर कहा—अन्नदाता, यह हमारे बूते का काम नहीं है। यह नुक्स तो वही कारीगर दूर सकता है जिसने इसे सिया है। हम तो सरकार इसे छूने का भी साहस नहीं कर सकते।

सारा बना-बनाया काम चौपट हो गया। राजा साहब बौखला उठे। अब कल हम भरे दरबार में यह पतलून पहनेंगे और इसमें सल पड़ेगी तो लोग क्या कहेंगे ? नहीं नहीं, यह नहीं हो सकता। इस नुक्स को दूर करना होगा। उन्होंने प्राइम मिनिस्टर को तलब किया और उन्हें हुक्म दिया, दरबार कल नहीं हो सकता, उसे अनिश्चित काल के लिए मुल्तवी कर दीजिए, और बम्बई को तार दे दीजिए कि वह कारीगर जिसने पतलून सी है हवाई जहाज से तुरन्त यहां आए।

दरबार मुल्तवी हो गया। परन्तु नाच, रंग, खाना-पीना, मुजरा, शिकार चलता रहा। कारीगर हाजिर हो गया। परन्तु राजा साहब ने जो शेर के शिकार का प्रोग्राम बनाया तो १२ दिन तक उससे मिलने की फुर्सत ही नहीं मिली।

बारह दिन बाद उन्हें एकाएक याद आया। उन्होंने सेक्रेटरी से पूछा—वह कारीगर आया ?

'जी सरकार हाजिर है।'

'तो सवारी राजधानी को चले। शिकार के सब प्रोग्राम मौकूफ।'

सवारी महलों में लौटी। कारीगर रूबरू हाजिर हुआ। राजा साहब ने पतलून पहनकर दिखलाई। उस सल की ओर उन्होंने संकेत किया। कारीगर ने क्षण भर देखा, मुस्कराया, और जेब से कैंची निकालकर एक-एक बटन काट लिया और उसे जौ-भर खिसकाकर टांक दिया। पतलून फिट बैठ गई। नुक्स दूर हो गया !

राजा साहब खुशी से बाग-बाग हो गए। कारीगर ने बिल पेश किया। कुल

खर्चा मिलाकर २२ हज़ार का बिल था। राजा साहब ने उसपर एक सरसरी नज़र डालकर हुक्म दिया—बिल का डबल पेमेंट कर दिया जाए और कारीगर को दरबार के बाद सिरोपाव देकर विदा किया जाए।

अन्ततः धूमधाम से दरबार हुआ। राजा साहब ने पतलून पहनी, उनकी आरज़ू पूरी हुई। उस दरबार में प्रत्येक के मुंह पर केवल पतलून थी। राजा साहब की मूंछों का प्रत्येक बाल मुस्करा रहा था।

# भाव कहानियां

- नहीं
- धरती और आसमान
- युगलांगुलीय

# नहीं

इधर आचार्य ने कुछ नई पद्धति पर कहानी लिखना आरम्भ किया है, जो सम्भवतः हिन्दी में सर्वथा नया प्रयोग है। इसमें न कथानक है, न चरित्र-चित्रण, न घटनाएं; केवल भाव है। भावों का आवेश नहीं है, विचारों के आधार पर एक स्थापना की गई है। 'नहीं' ऐसी ही कहानी है। यह कहानी 'शरत्' के एक-दो वाक्यों पर आधारित है।

परन्तु, दक्षिणा ने कहा—नहीं!

'नहीं क्यों? यह भी कोई बात है भला?' भोलानाथ ने क्रोध से फूत्कार करके नथुने फुलाकर कहा।

'नहीं, ऐसा हो नहीं सकता,' दक्षिणा ने सहज, शान्त और स्थिर स्वर में कहा और फिर वह उठकर धीरे से चल दी। उसकी 'नहीं' में न तो विद्वेष की जलन थी और न क्षमा का दम्भ था। उसके नीचे झुके हुए पलकों के भीतर एक नीरव संयम झांक रहा था। आप ही कहिए भला, एक दिन जिसे उसने अपना अमल, धवल, कोमल, नवीन केले के पत्ते के समान शोभायुक्त अछूता कौमार्य पूर्ण समर्पित किया था, अपने प्राणों के उल्लास को लेकर जिसे पागल की तरह प्यार किया था, जिसकी आंखों में आंखें डालकर जीवन की सार्थकता को समझा था, अब उसीके प्रति निर्मम कल्पना कैसे कर सकती थी? उसने तो उसी दिन, उसी क्षण सब की निगाह से ओझल उसके सब दोष चुपके से धो-पोंछ करके साफ कर दिए थे। ऐसा क्रुद्ध शोकाकुल हाहाकार का भाव तो उसके शान्त हृदय में उठा ही नहीं।

भीतर आकर उसने देखा, वृद्धा माता चुपचाप निश्चल बैठी हैं। उसने मां के पास आ स्निग्ध स्वर में कहा—यह क्या मां, अभी तक चूल्हा नहीं जला! आज रसोई नहीं बनेगी क्या? बाबूजी के दफ्तर जाने का तो समय भी हो चुका। हरिया गया कहां?

उसने आकुल नेत्रों से इधर-उधर हरिया की खोज की। और फिर उसकी दृष्टि मां के ऊपर आ टिकी। वह उसी तरह पत्थर की मूर्ति की भांति स्थिर चुप बैठी थीं। क्षण भर उसने मां को देखा, फिर स्थिर गति से रसोई की ओर चल दी। परन्तु इसी समय भोला बाबू लम्बे-लम्बे डग भरते भीतर आकर क्रोध और आवेश में कांपते हुए बोले—कहे देता हूं दाखी, सब बातों में तेरी ही नहीं चलेगी। उसे सज़ा देना मेरा काम है, मैं उसे ऐसा मज़ा चखा दूंगा कि जिसका नाम! अरे वाह, मेरी फूल-सी बेटी के साथ यह धोखाबाज़ी! इसीलिए मैंने उसे खर्च देकर विलायत भेजा था? ऐसा पाजी, रास्कल! मैं उसे जेल की हवा न खिलाऊं तो भोलानाथ नहीं। और खर्चे की डिग्री तो हुई रखी है।

भोला बाबू की गले की नसें ऊपर को उभर आईं और चेहरा विकृत हो गया। परन्तु दक्षिणा ने एक शब्द भी मुंह से नहीं कहा। पिता की बात सुनने को एक पग भी रुकी नहीं, वैसे ही शांत भाव से रसोई में चली गई।

वृद्धा ने कहा—हुआ, अभी तुम जाकर स्नान-पूजा से निपट लो, तब तक मैं थोड़ा जलपान बनाए देती हूं। अब इस समय रसोई तो बन नहीं सकती। मैं भी देखूंगी, मेरी बेटी के भाग्य पर पत्थर मारकर कौन कैसे सुख से बैठता है!

पत्नी की बात से भोला बाबू को बहुत सहारा मिला। बेटी ने जो उनके रोष का साथ नहीं दिया, उसकी खीझ पत्नी के इस समर्थन से बुझ गई। उन्होंने थूक निगलकर कहा—देखूंगा, देखूंगा!

और वे आगे की बात कह न सके। पत्नी रसोई घर में चली गई थी! हरिया साग-तरकारी लेकर आ गया था। भोला बाबू और कुछ न कहकर स्नान-गृह में घुस गए।

उसी दिन तीसरे पहर दक्षिणा को अन्ना दीदी ने पकड़ा। 'अन्ना दीदी' दक्षिणा के मुंह से निकला अन्नपूर्णा का कोमलतम संस्करण है। अन्नपूर्णा विधवा है, दो बच्चों की मां है। उसके पति बहुत ज़मीन-जायदाद छोड़ गए हैं। वह पढ़ी-लिखी, दुनिया देखी ४० साल की आयु की महिला है। उसने पति के साथ विश्व-भ्रमण किया है, स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा सुनी और की है। वह स्त्री-स्वातन्त्र्य की बहुत बड़ी समर्थक है। स्त्रियों की सभा-सोसाइटियों में उसका आना-जाना है। दक्षिणा ने जो उसके नाम का यह कोमलतम संस्करण

किया है, सो खूब प्रसिद्ध हो उठा है। अब तो सभी लोग उसे अन्ना दीदी के नाम से ही पुकारते हैं। अन्ना दीदी जैसी पठित और प्रगल्भा रमणी है, वैसी ही मिष्टभाषिणी और स्थिरमति भी है। लोग उससे विवाद-बहस करने का साहस ही नहीं कर सकते, उसकी बात चुपचाप मान लेते हैं। परन्तु जिस अन्ना को बहुत लोग इतना मानते हैं, आदर करते हैं, वह दक्षिणा का मन से आदर करती है। स्नेह की बात जुदा है और आदर की जुदा। अन्नपूर्णा जैसी महिला कच्ची आयु की मितभाषिणी दक्षिणा का जो इतना आदर करती है, उसका कारण है कि दक्षिणा के गौरव को उसने पहचान लिया है। वह जानती है, वह कुसुम-कोमल बालिका कैसी ज्ञानवती है, स्त्रीत्व के तेज से परिपूर्ण है। उसमें कितना गौरव है।

अन्ना दीदी को दक्षिणा की मां ने बुला भेजा था। अपने मन की व्यथा और आग दोनों ही उसने रो-रोकर अन्ना को बता दी। उसने सुबकियां ले-लेकर कहा—अन्नपूर्णा! भला तुम्हीं कहो, मेरी बेटी के साथ यह अन्याय, क्या मैं चुपचाप सहलूं? तुम तो बहुत पढ़ली हो, सभा-सोसाइटियों में जाती हो, स्त्रियों के अधिकारों और स्वार्थों की बड़ी हिमायती हो, क्या मेरी दक्षिणा उस जानवर का ऐसा अन्याय चुपचाप सहन कर लेगी? अरे, मेरी फूल-सी बेटी पर वह सौत लाया है, सौत!

अन्नपूर्णा को वृद्धा का अभियोग समर्थन-योग्य प्रतीत हुआ। वृद्धा की मांग सर्वथा उचित थी। दक्षिणा की ओर से क्षतिपूर्ति और निर्वाह का मुकदमा अवश्य होना चाहिए। अन्नपूर्णा उससे सहमत हुई। परन्तु जब उसने दक्षिणा की 'नहीं' को 'हां' में परिणत करने का मन ही मन संकल्प कर लिया, उसने वृद्धा से एक शब्द भी नहीं कहा, चुपचाप उठकर दक्षिणा के पास गई।

दक्षिणा पिता की बैठक साफ करने में लगी थी। वह इधर-उधर बिखरी हुई पुस्तकों, कागज़ों और सामग्री को सहेजकर ठिकाने से लगा रही थी। उसकी साड़ी मैली थी, बाल रूखे थे और होंठ सूख रहे थे। पिता को जलपान कराकर जब वह मां को किसी भी तरह खाने के लिए राजी न कर सकी तो उसने स्वयं भी निराहार रहने का तय कर लिया।

अन्ना ने आते ही कहा—सुन, दक्षिणा, यह तो मैं जानती हूं कि पुरुष के भोग की जो वस्तु हैं उनकी जाति की तुम नहीं हो···

'यही तो दीदी, इसीसे तो मैं सोचती हूं, इसमें उनका ऐसा कुछ अपराध भी तो नहीं है, पर बाबूजी यह बात समझते ही नहीं हैं !'

'फिर भी मैं तुझसे यह पूछने आई हूं कि आखिर लोगों की निन्दा-प्रशंसा की अवज्ञा करने का तेरा साहस कहां तक स्तुत्य है !'

'नहीं दीदी, साहस नहीं, तुम तो जानती ही हो कि मैं एक कमज़ोर और असहाय नारी हूं, मैंने कभी भी अपने को शक्तिवान् समझकर घमण्ड नहीं किया।'

'यही तो। पर यह तो तुम जानती ही हो कि नारी के लिए पुरुष को पाना कितना कठिन है, इसीसे तो पुरुष को पाकर स्त्रियां सौभाग्यवती कहाती हैं।'

'क्यों नहीं, मैं यह भी जानती हूं कि नारी के लिए पुरुष को पा जाना जितना कठिन है, पुरुष के लिए स्त्री को पा जाना उतना ही आसान है।'

'यहां तक तो कुछ हानि नहीं थी दाखी, पर पुरुष को पा जाना स्त्री के लिए जितना कठिन है उतना ही उसका गंवा देना भी है।'

'है तो, और पुरुष के लिए स्त्री का पा जाना जितना आसान है, उतना ही खो देना भी है,' दक्षिणा ने एक फीकी मुस्कान होंठों में भरकर कहा।

अन्नपूर्णा हंसी नहीं। उसने कुछ कठोर होकर कहा—यह तो बहुत भारी वैषम्य है। कैसे हम इसे सहन करेंगी ?

'दीदी, सहन न करेंगी तो क्या लड़ेंगी ? जो प्यार और आदर की वस्तु है, उससे लड़ाई कैसी ?'

'प्यार और आदर अपने स्थान पर हैं।'

'हां, प्यार और आदर का स्थान तो उनका सम्पूर्ण ही व्यक्तित्व है, दीदी !'

'पागलपन की बातें हैं, सम्पूर्ण व्यक्तित्व नहीं, केवल कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व।'

'ओह दीदी, तुम भी सौदा करने लगीं ? कहीं प्यार भी हिसाब-किताब से माप-तोलकर होता है ?'

'नहीं होता, पर मैं कहती हूं कि स्त्री-पुरुष के बीच में प्यार ही तो एक चीज़ नहीं है, और भी कुछ है।'

'दीदी, तुम जो कुछ कहना चाहती हो, मैं सब जानती हूं। तुम अधिकार की लड़ाई लड़ने की सलाह दे सकती हो। तुम नर-नारी के समान-अधिकार-तत्त्व की पण्डिता हो, परन्तु...'

'परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। मैं कहती हूं, दाम्पत्य-युद्ध में स्त्री की विजय

माननी होगी। पुरुष बहुत मनमानी कर चुके। मेरा यह दृढ़ मत है कि पति-पत्नी के अधिकार समान हैं। तुम स्त्री होकर स्त्रियों की तरफ से इस दावे का प्रतिकार कर रही हो।'

'मैं प्रतिकार नहीं कर रही दीदी, न मैं यह कहती हूं कि वह सत्य नहीं है। परन्तु तुम नाराज न होना, इस सत्य को सत्य-विलासी दल के नर-नारी के मुंह ने भांति-भांति के आन्दोलन करके ऐसा गन्दा कर दिया है कि उसे छूने में भी घिन होती है।'

'घिन कैसे होती है, तनिक सुनूं तो?'

'तुम्हारा तो सब देखा-सुना है दीदी, सुनोगी क्या! विलायत के ही लोगों को देखो, वे कैसी आजादी से प्रेमाभिनय करके कितने उल्लास से विवाह करते हैं! उनके बीच तो माता-पिताओं के माध्यम की परम्परा नहीं है। स्वेच्छा है, प्रेम है, ठोक-बजाकर किया हुआ सौदा है, फिर क्या कारण है कि तनिक-तनिक सी बातों पर, छोटे-छोटे कारणों को लेकर वहां विवाह-विच्छेद हो जाते हैं। वहां की अदालतों के लिए, समाज के लिए, स्त्री के लिए, पुरुष के लिए वह एक मामूली बात हो गई है। कहो तुम दीदी, क्या उन्हें ऐसा करने में तनिक भी चोट नहीं लगती? कहीं इतना सा भी दर्द नहीं होता? मैं कहती हूं, यही यदि उनका सत्य-प्रेम है, यदि यही पति-पत्नी के समान अधिकार का सच्चा रूप है, तो यह छूने क्या, आंखें उठाकर देखने के भी योग्य नहीं। मुझे तो यही आश्चर्य है कि वे लोग अपनी सभ्यता का गर्व किस बूते पर किया करते हैं।'

अन्ना दीदी की आंखों में आंसू भर गए। यह उसकी हार के आंसू थे। उसे जवाब नहीं सूझ रहा था। दक्षिणा सूखे मुंह और सूखे होंठों से अन्ना दीदी की ओर देखती रही, उस दृष्टि को सहन न कर उसने दक्षिणा को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया। वह बहुत देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती रही। बड़ी देर बाद उसने कहा—कैसे सहेगी दीदी, मेरे पास शब्द नहीं, कैसे तुम्हें सान्त्वना दूं।

दक्षिणा बहुत देर चुपचाप अन्नपूर्णा की गोद में लेटी रही, फिर उसने सिर उठाकर कहा—दीदी, जल्दी-जल्दी आया करो। दो मिनट ठहरो, मैं चाय बनाती हूं। मां को कुछ खिला-पिला दो, कल से उन्होंने एक बूंद पानी तक नहीं पिया है।

'अरे, इसीसे तेरा मुंह'''ठहर मैं रसोई में जाकर चाय और जलपान बना लाती हूं।'

'तुम यहां ठहरो दीदी, मैं जाती हूं।'

परन्तु दोनों साथ ही साथ रसोई में जाकर चाय का सरंजाम जुटाने में व्यस्त हो गईं।

पन्द्रह बरस बाद। पुरानी सारी दुनिया बदल चुकी थी। जीवन-उषा की रक्ताभ पीत प्रभा ढलती दुपहरी में बदल चुकी थी। पुरुष की लोलुप दृष्टि जिस लिए नारी को परेशान करती है, लज्जा को पीड़ित करती है, आज उससे तो दक्षिणा को मुक्ति मिल चुकी थी। इतने दिन बाद एकाएक पति ले जाने के लिए आए थे। उन्होंने एक अनुतापपूर्ण पत्र लिखकर दक्षिणा को अपने असहाय जीवन से सूचित किया था और यह भी लिखा था कि उनके जीवन में अब केवल दक्षिणा की दक्षिणा शेष है।

दक्षिणा के हृदय में एकान्त-मिलन की ज़रा भी व्यग्रता न थी। फिर भी ढलते हुए यौवन और तब से लेकर अब तक के दैहिक क्रम-विकास पर आज अपरिचित रूप ही से उसका ध्यान आकर्षित हो रहा था। उन दिनों की वह चाह अब न थी। आंखें चार होते ही आंखों के कोनों से निकलती आग की चिंगारियां बुझ-बुझाकर राख हो गई थीं, वह राख भी आंसुओं से धुलकर कहां की कहां पहुंची थी। १५ वर्ष की मूक वेदना, आत्म-संयम और चिरदमन की जो रेखाएं उसके मुख पर अंकित हो गई थीं, वे तो दूर से पढ़ी जा सकती थीं। सो अब अन्ना दीदी ने लपकते हुए आकर उससे कहा—यह क्या ? सन्ध्या होने को आई, तूने न कपड़े बदले, न बाल बनाए। उठ, मैं चोटी गूंथ दूं। अम्मा होती तो क्या इसी भांति'''

अन्ना दीदी की आंखें भर आईं। परन्तु दक्षिणा ने सूखी आंखों से उसकी ओर देखकर कहा—नित्य ही तो ऐसी ही रहती हूं दीदी, इस बेला मुझे बाल संवारने की आदत नहीं।

'न सही, पर आज तो !'

'आज क्यों ?'

'तू ऐसी बच्ची है, फिजूल बक-बक न कर ! उठ, चोटी गूंथ दूं।'

'चोटी गूंथना है तो गूंथ दो दीदी, परन्तु इससे लाभ ?'

'लाभ ? इतने दिन बाद वे आए हैं, सो ऐसे वेश में मिलेगी तू !'

'पर मुंह तो बदल नहीं सकूंगी।'

'न सही, पर कपड़ा-लत्ता…'

'व्यर्थ है दीदी, जिस रूप का प्रयोजन और आकर्षण दोनों ही खतम हो चुके, अब उसे कृत्रिम रूप से सजाकर उन्हें यदि धोखा दूं तो क्या यह अच्छी बात होगी ?'

'धोखा क्या ?'

'कि नहीं, अभी खत्म नहीं हुआ, यही दिखाकर।'

'ओह, किन्तु…'

'किन्तु क्या दीदी, कहो तो—स्त्री की देह ऐसी तुच्छ चीज़ है कि उसके रूप-सौष्ठव को छोड़कर उसका और कोई उपयोग ही नहीं ?'

अन्ना दीदी रो दी। अन्ना नहीं, उसका चिरवैधव्य रो उठा। उन्होंने कहा—दाखी, इन भाग्यहीन पुरुषों की अभिलाषाओं की बात न पूछ। तुझे दुनिया की तरफ नहीं देखना हो तो मत देख; परन्तु आदमी की ओर तो देख, उसके दुर्भाग्यपूर्ण, अपूर्ण और असंयत व्यक्तित्व को तो देख।

'सो तो मैंने अपने जीवन में देखा ही है, दीदी।'

'तो देख, भाग्य-दोष से हो या स्त्री-जाति में जन्म लेने के कारण, हमें अपना जीवन उत्सर्ग के मार्ग पर तो ले जाना ही है। यह शृंगार जो हमें करना पड़ता है सो क्या अपने लिए ? इसे क्या हम अपनी आंखों देखती हैं ?'

'नहीं, तुम्हारी बात मानती हूं, हम अपने इस शृंगार को अपनी आंखों से नहीं देखतीं, पुरुष की आंखों से देखती हैं; परन्तु दीदी, तुम्हारा जो यह उत्सर्ग है सो सत्य नहीं। मैंने इसे कभी नहीं माना है, अब भी नहीं मानूंगी।'

'क्यों भला ? क्या तू समझती है, हम लोगों में उत्सर्ग होने का बल है ही नहीं ?'

'क्यों नहीं, बहुत है।'

'तो फिर ?'

'फिर ? उत्सर्ग का बल होने ही से क्या होता है दीदी, प्रवृत्ति होनी चाहिए, अन्तःप्रेरणा होनी चाहिए। निराशा और आंसुओं से भीगकर भी कहीं उत्सर्ग

होता है ?'

'तू समझती है कि स्त्रियों में उत्सर्ग की प्रवृत्ति ही नहीं है ?'

'प्रवृत्ति है, पर यह प्रवृत्ति उनके भीतर जो नारी की जागरित सत्ता है न, उसकी पूर्णता से नहीं, शून्यता से उत्पन्न होती है। उससे न तो नारी-जाति का कभी भला हुआ, न वे पुरुष का भी कुछ भला कर सकीं !'

'दाखी, मैं तो समझती रही हूं कि त्याग, उत्सर्ग और प्यार सब एक ही वस्तु है और उत्सर्ग स्त्री का स्वभाव है।'

'नहीं दीदी, स्वभाव नहीं, अभाव है। भाग्य ने तुम्हें चिर वैधव्य दिया दीदी, तुम्हें त्याग और विसर्जन का जीवन अपनाना ही पड़ा। अब तुम्हीं कहो, इसमें तुम्हें कितना तप करना पड़ा ? कितनी निष्ठा खर्च करनी पड़ी ? अब तुम मुझसे क्या यह कहना चाहोगी कि जीवन का श्रेय वैधव्य है, जहां तप है, त्याग है, उत्सर्ग है।'

'ओह ! नहीं, नहीं, मैं यह कभी न कहूंगी। मैं तो कहूंगी, वैधव्य की अपेक्षा तो स्त्री के लिए एक हिंस्र पशु की पत्नी बनने में कहीं नारीत्व की सार्थकता है।'

'तो दीदी, तुम्हारी यह बात जितनी ही सत्य है, उतनी ही भयानक भी है। यह तुम्हारे उस समान अधिकारों की परम्परा से बिलकुल ही पृथक् सत्य है। और मैं उसे ठीक सत्य स्वीकार करती हूं।'

अन्ना दीदी ने बहुत आंसू बहाए। स्नेह से दक्षिणा को अंक में भर लिया। कहा—दाखी, तेरा सत्य मैंने इतने निकट रहकर भी कभी नहीं समझा। पर आज समझा। तेरे पति ने जो तेरा तिरस्कार किया, तुझे धोखा दिया उसकी जो तूने कभी किसीसे शिकायत नहीं की और संसार-भर के युग के मानव-स्वीकृत इस सम्बन्ध के प्रति जो तूने इतनी जबर्दस्त अवज्ञा की उसका भेद भी जाना, परन्तु दाखी, अविचार से केवल एक ही पक्ष क्षतिग्रस्त नहीं होता, दोनों ही पक्षों को आघात लगता है। उस दिन जब तुझे दुलहिन के रूप में तेरे पति ने पाया था, तब उसने अपने सौभाग्य की ओर देखा ही नहीं था। आज उसे यह सूझ आई है, सो तू श्रृंगार करके, जो खत्म हो चुका, 'अभी है, वह अभी है' यह प्रमाणित करके उसे धोखा देना नहीं चाहती; सत्य रूप में जो है, उसके सामने जाना चाहती है, सो ठीक है।

'यही बात है, दीदी। जो क्षणभंगुर है, उसकी ओर पुरुषों को देखने का चस्का लग गया है। वह इस सिल की अपेक्षा उस फूल को ज़्यादा पसन्द करते हैं। सत्य क्या है, इसकी जांच का मापदण्ड तो उनके पास है ही नहीं। परन्तु हम स्त्रियां तो जानती हैं कि जीवन चाहे जितना भी क्षणभंगुर हो उसका सब कारबार स्थायित्व को लिए हुए है। और इसीसे हमारे लिए उस फूल की अपेक्षा यह सिल-लोढ़ा ही अधिक सत्य है। इसके जल्दी सूखकर झड़ जाने का भय नहीं है।'

'सो आज उस सिल-लोढ़ा ही की पूजा का पवित्र दिन है?'

"कौन जाने, तुम तो जानती ही हो दीदी, पुरुषों को इसकी आदत नहीं।"

'तेरी जैसी स्त्रियां पुरुषों को ऐसी आदत डाल देती हैं जो युग-युग तक उनका भला करती हैं। तूने पति को अब तक दिया ही है, उससे कभी कुछ लिया नहीं। पिता के इतना कहने पर भी डिग्री के रुपए नहीं लिए।'

'तुमसे तो कुछ छिपा रहा नहीं, दीदी। मां और बाबूजी के न रहने पर तुम्हीं एक रहीं जिसका मुझे सहारा रहा।'

'पर मुझसे भी तो तूने कभी एक धेला नहीं लिया। तूने कुली-मज़दूरों के कपड़े सी-सीकर गुज़र की, पर जिस पुरुष ने पति होकर त्याग दिया, उसका अन्न मुंह में देकर, उसीके दिए वस्त्र पहनकर आबरू बचाना स्वीकार नहीं किया।'

दक्षिणा इस बार रो दी। उसने कहा— दीदी, इतनी ओछी बनने से पहले तो मैं कुएं में कूदकर मर जाना अच्छा समझती।

# धरती और आसमान

कलाकार, जो एक असफल गृहस्थ है किन्तु सफल कलाकार। वह कला की सफलता में व्यस्त रहकर पत्नी को अभाव की दुनिया में घसीटता चला जाता है। वह सदा आदर्श के आसमान पर विचरण करता रहा, और कभी अपनी जीवन-संगिनी की ओर देखा भी नहीं—जो धरती पर रह रही है और अभाव में जिसका जीवन घिस गया है। और अब एकाएक वह उसे देखता है, पति की दृष्टि से नहीं, कलाकार की दृष्टि से। कहानी में यही तथ्य वर्णित है।

पूरनमासी का पूरा चांद आसमान पर अपना उज्ज्वल आलोक फैला रहा था और धरती जैसे दूध में नहा रही थी। दिन भर लू के थपेड़ों ने आग बरसाई थी और इस समय ठण्डी हवा बह रही थी। स्निग्ध चांदनी थी, शान्त वातावरण। दूर एकाध पक्षी मन्द ध्वनि कर रहा था।

पति ने आज दिन भर कड़ा परिश्रम किया था; कई अधूरे स्केचों में रंग भरा था; एक मूर्ति को खत्म किया था; कुछ नई रेखाएं चित्रित की थीं। इस समय वह छत के खुले सहन में आरामदेह पलंग पर पड़ा सुदूर नक्षत्रों को, जिनकी आभा उज्ज्वल चन्द्रलोक से फीकी पड़ रही थी, ध्यानमग्न देख रहा था। वह शिल्पी था, कलाकार था, भावुक था, मनीषी था। जीवन के पचास साल उसने कला की साधना में गलाए थे। आज वह लोक-द्रष्टा था, दिव्य-द्रष्टा था, विश्व-द्रष्टा था। उसकी गहन कल्पनाएं ब्रह्माण्ड के उस पार तक जाती-आती थीं; उसकी तूलिका शत-सहस्र जनों को जीवन का सन्देश देती थी। उसके अपने ही व्यक्तित्व में अखिल ब्रह्माण्ड समाया हुआ था, विश्व का सुख-दुःख आज उसका अपना सुख-दुःख था। वह अपने लिए वहिर्मुख था, विश्व के लिए अन्तर्मुख। वह अपने को नहीं देख पाता था, विश्व पर उसकी दृष्टि केन्द्रित थी।

और इस समय शान्त-स्निग्ध चन्द्रमा के उज्ज्वल-धवल आलोक में अबाधित रूप से वह उन करोड़ों मील दूर अवस्थित टिमटिमाते नक्षत्रों के निकट जा पहुंचा था वह सोच रहा था: इन नक्षत्रों में क्या सचमुच इसी प्रकार

प्राणियों का वास है जिस प्रकार हमारी पृथ्वी पर ? वहां का भी वातावरण क्या लोगों के हंसने-रोने और व्यस्त नागरिक कोलाहल से परिपूर्ण है ? वहां भी क्या बच्चों की पौध उगती है ? वहां भी क्या, ऐसा ही है जैसा कि यहां; कुछ बच्चे गुलाब के फूल के समान सुन्दर, सुहावने, उत्फुल्ल, कुछ सूखे, मुर्झाए, झुके हुए, कुत्सित और निष्प्राण ? कहीं सुख, कहीं दुःख, कहीं हास्य, कहीं रुदन; कहीं प्रकाश; कहीं अन्धकार; कहीं बहुत और कहीं कुछ भी नहीं ? ऐसा ही क्या वहां भी है ? परन्तु उस सुख-दुःख से परिपूर्ण जीवन-काल में केवल यह प्रकाशमान टिमटिमाता ही रूप क्यों दीखता है ? चन्द्रमा के मृगलांछन पर उसकी दृष्टि जब गई, वह सोचने लगा; क्या ये चन्द्रलोक के पर्वत हैं या सूखे समुद्र ? वहां क्या अभी जीवन है ? लोग कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ। उनके अनुमान ही तो हैं। अभी कोई चन्द्रलोक में गया तो है नहीं। यह चन्द्रलोक शुक्र, बृहस्पति सप्तर्षिमण्डल ध्रुव क्या कभी इस धरती के मनुष्यों का चरणस्पर्श करेगा ? या ये सब असहाय जन भूख, प्यास और अभाव से जर्जरित होकर ही मर जाएंगे।

उसकी विचारधारा बदली। वह सोचने लगा, क्या अभावग्रस्त होकर मरने ही के लिए मनुष्य ने जीवन धारण किया ? जीवन तो अभाव का नाम नहीं है। फिर जीवन अभाव से परिपूर्ण क्यों है ? जीवन को समाज-नियन्ताओं ने सीमित किया है, संयम से। इसी संयम ने उसे अभावों से भर दिया है। भूख लगने पर वह उस पड़ोसी का अन्न छीनकर नहीं खा सकता जिसके पेट भर खाने पर भी बहुत बच रहा है, क्योंकि वह संयम की मर्यादा में बंधा है। प्यास से तड़पने पर, शीत से ठिठुरने पर और जीवन के सम्पूर्ण अभावों से वह अपने चारों ओर फैली हुई विश्व-सम्पदाओं को नहीं भोग सकता, क्योंकि वह संयम के सूत्र में बंधा है।

वह स्टेशन पर जाता है। लम्बी यात्रा है। तीसरे दर्जे के डब्बों में भेड़-बकरी की भांति ठसाठस आदमी भरे हैं। फर्स्ट और सेकेन्ड क्लास के डिब्बे खाली हैं, वहां गद्देदार सुखद सीट हैं। सरसर चलते पंखे हैं। सुख है, आराम है, सुविधा है, इसीकी उसे चाह है। पर वह भीड़ और गन्दगी से भरे तीसरे दर्जे के डब्बे में ज़बरदस्ती घुस रहा है, इसके लिए लड़ रहा है, मनुष्यता से गिर रहा है। क्यों नहीं वह उन सुखद खाली फर्स्ट और सेकेन्ड क्लास के डब्बों में जा बैठता, जहां सब कुछ है। क्यों वह अभाव में मृत्यु ढूंढ़ता है, भाव में जीवन नहीं ?

केवल इसलिए कि वह संयम-पाश में बंधा है। उसके पास तीसरे दर्जे का ही टिकट है। अब वह सुभीता होने पर भी उन सुखद फर्स्ट क्लास और सेकेन्ड क्लास के डब्बों में नहीं बैठ सकता, इसका विचार ही नहीं कर सकता।

पति की विचारधाराएं धरती से आसमान तक विचर रही थीं। वह अपने में खो रहा था। वह सोच रहा था—इसी तरह तो मनुष्य, जिसे जीवन मिला है, मृत्यु को ढूंढ़ लेता है। कितना उसका दुर्भाग्य है! कितनी उसकी मूर्खता है! फिर उसका ध्यान उन सुदूर नक्षत्रों की ओर गया। उस चांदी के थाल के समान क्षण-क्षण पर विकसित होते हुए चन्द्रमा की ओर गया। शीतल, मन्द पवन ने बेला के फूलों की महक लेकर उसके मन में गुदगुदी उत्पन्न कर दी।

पत्नी भी पास के पलंग पर लेटी हुई थी, बहुत देर से। आज उसे भी बहुत परिश्रम करना पड़ा था। नौकर बीमार हो गया था। सारा घर और बर्तन साफ करने पड़े थे। बच्चों को नहलाना और उनके कपड़े भी धोना पड़ा था। नौकर के लिए अलग पथ्य बनाना पड़ा था। तीसरे पहर कुछ उसकी मिलने-वालियां आ पहुंची थीं, उनके जलपान-आतिथ्य की व्यवस्था करनी पड़ी थी। आज पूर्णिमा थी, उसका उपवास था। वह इन सब कामों से थक गई थी, उप-वास से कमज़ोर हो गई थी। अभी उसने यत्किंचित् लघु आहार लिया था। वह इस स्निग्ध चांदनी रात में इतनी थकान के बाद इस सुखद पलंग पर आराम पाकर बहुत सी बातें सोच रही थी। बच्चे सब शीतल वायु के थपेड़ों से सुखद नींद का आनन्द ले रहे थे। दिन भर की घर-गृहस्थी की खटखट, चखपख, चकझक के बाद इस समय के निर्द्वन्द वातावरण में उसे कुछ शान्ति मिल रही थी। फिर भी उसका मस्तिष्क शान्त न था। धोबी उसकी नई साड़ी फाड़ लाया था। उसकी धुलाई के हिसाब में पैसे काटने थे। दूध वाले का सुबह ही हिसाब करना था। बच्चों की फीस देनी थी। नौकर तो कल भी काम न करेगा। सारे बर्तन यों ही पड़े थे। ओफ, सुबह उसे कितने काम हैं! रुपए तो अगले हफ्ते मिलेंगे। कल वह इन सबको रुपए देगी किस तरह? एकाएक उसे याद आया। अरे, राशन भी तो कल ही आना है। कैसे आएगा? जैसे उसका सारा आराम हवा हो गया। उसने बेचैनी से करवट ली। फूल के थाल के समान चांद पर उसकी नजर गई। बड़ी देर तक वह उसे देखती रही। फिर उसने आंखें बन्द कर लीं। वह सोच रही थी, आज मेहमानों के सामने उसे कितना

नीचा देखना पड़ा। पड़ोसी से कांच के गिलास मांगकर शर्बत पिलाना पड़ा। एक बार वह घर के सारे अभावों पर विचार कर गई। इतनी बड़ी गृहस्थी और इनका यह हाल ! न जाने किस उधेड़-बुन में रहते हैं। तनिक भी तो ध्यान नहीं देते, सब मुझे ही भुगतना पड़ता है। वह सोच रही थी, उस उलझन, बोझ और ज़िम्मेदारी के सम्बन्ध में, उस अभाव के सम्बन्ध में जो उसे चारों ओर से दबोचे हुए थे, उसपर लद रहे थे।

एकाएक पति ने कहा—अहा, क्या इन नक्षत्रों में भी मनुष्य-लोक है ? वहां भी क्या प्राणियों का निवास है ? क्या कभी इस पृथ्वी के मनुष्य वहां आ-जा सकेंगे ? न जाने कब से कितने वैज्ञानिक इन नक्षत्र-मण्डलों से सम्बन्ध स्थापित करने की जुगत में हैं। मंगल और चन्द्रलोक में जाने के लायक तो सुना है राकेट बन गए हैं। किराया सस्ता हो तो ज़रा राकेट में बैठकर हम लोग चन्द्रलोक की सैर कर आएं। सुनती हो, चलोगी तुम ?

पत्नी अपने विचारों में डूबी हुई थी। वह समझी थी पति सो गए हैं। उसने उनके आराम में खलल देना ठीक नहीं समझा। वह चुपचाप अपनी चारपाई पर आ लेटी थी, और अपने विचारों में डूब-उतरा रही थी। उसने पति की पूरी बात नहीं सुनी। जो सुनी वह ठीक-ठीक नहीं समझी। पति जग रहे हैं, यह जानते ही उसने जैसे एकाएक सावधान होकर कहा—क्यों जी, घर में एक भी कांच का गिलास नहीं है। बड़ी खराब बात है। आए-गयों के सामने कितना शर्मिन्दा होना पड़ता है !

पति की सारी ही विचारधारा छिन्न-भिन्न हो गई। नक्षत्र-मण्डलों से उसके सम्पर्क समाप्त हो गए। विज्ञान की विश्वव्यापिनी प्रक्रिया अन्तर्हित हो गई। उसने पत्नी के थके हुए, सूखे, नीरस, उदास मुख की ओर देखा, उसकी टूटी चारपाई और चारपाई की फटी चादर को देखा। अपनी सारी गरीबी से भरी हुई गृहस्थी का एक समूचा चित्र उसकी आंखों में बन गया। पत्नी के इस एक छोटे से वाक्य ने जैसे उसकी सारी ज्ञान-गरिमा को चुनौती दी हो। वह लज्जित-सा, मर्माहत-सा, अपराधी-सा, भयभीत-सा चुपचाप पत्नी की चिन्ताकुल दृष्टि को देखने लगा, जिसमें अभाव ही अभाव था, थकान ही थकान थी, व्यथा ही व्यथा थी, चिन्ता ही चिन्ता थी।

उसके मुंह से बोल नहीं निकला। उसे हठात् याद आया, विवाह के समय जब

शुभ दृष्टि की रस्म अदा हुई थी, तो इसी दृष्टि में शुक्र नक्षत्र जैसा तेज और उज्ज्वल आलोक देखकर किस प्रकार उसके शरीर की रक्त-विन्दु नाच उठी थी, उसका अस्पष्ट जीवन-पथ आलोकित हो उठा था। वही दृष्टि आज इतनी सूनी हो गई। आज उसपर नज़र पड़ते ही मन दर्द से कराह उठा। उसने और ध्यान से पत्नी को देखा। उसकी साड़ी मैली और फटी हुई थी। दिन भर काम-काज करने के बाद भी उसने उसे बदला नहीं था, इसलिए नहीं कि उसने आलस्य किया या वह फूहड़ थी। दूसरी धोती उसके पास थी ही नहीं। उसके बाल भी रूखे थे। उनमें न तेल डाला गया था न कंघी की गई थी। उस मैली-फटी साड़ी में, रूखे और उलझे हुए बालों के नीचे उसका सूखा मुंह, मुर्झाए हुए होंठ, चिन्ताकुल आंखें—उस टूटी चारपाई पर बिछी फटी चादर पर लेटा हुआ उसका जीर्ण शरीर उसने देखा।

हठात् उसके मन में एक बात आई : आह, अपने जीवन में अपनी तूलिका से मैंने इतने चित्र बनाए ! जीवन को इतना रंग दिया। लेकिन यह जो जीवित चित्र मैंने बनाया है, इसपर तो मैंने ध्यान ही नहीं दिया। इसके सम्मुख मेरे अब तक के बनाए हुए सारे चित्र हेय हैं, सब निर्जीव हैं, सब नकली हैं, असत्य हैं। उनमें सौन्दर्य है, प्रकाश है, रंगीनी है, पर जीवन कहां है ? वे जीवित कहां हैं ? जीवित चित्र केवल यही मैं बना पाया हूं।

निस्सन्देह यह चित्र मेरा ही बनाया हुआ है। मेरी यह पत्नी वह नहीं है जो अब से बीस साल पहले ब्याह कर आई थी। यह तो मेरे द्वारा बनाई हुई मूर्ति है। इसे बनाने में मुझ कलाकार के बीस वर्ष लग गए, निस्सन्देह बीस वर्ष ! इन बीस वर्षों में उसके गुलाबी चमकदार गालों को पीला पिचका हुआ बनाया गया, उनपर झुर्रियों की रेखाएं अंकित की गईं। इन नेत्रों का मादक तेज, कटाक्षों का विद्युत्प्रवाह धो-पोंछकर इनमें अमिट सूनापन पैदा किया गया। प्रेम का आमन्त्रण-सा देने वाले इन सरस होंठों को सुखाकर उन्हें फीका किया गया। उन्नत युगल यौवनों को ढहा दिया गया। अब वे उसके अतीत यौवन के एक प्रामाणिक इतिहास बन गए थे। उसकी वह मृदुल-सुचिक्कण अलकावलियों को जंगली झाड़ियों का रूप दे दिया गया था।

आप कह सकते हैं कि यह तो रूप को कदरूप कर दिया गया। सो इससे क्या मेरी कला सदोष होगी ? कलाकार सौन्दर्य के उन्माद का ही चित्रण करने

का ठेकेदार नहीं है, वह कदरूप भी सर्जन करेगा। उसका काम मदिरा की बोतल भरना नहीं, सत्य के दर्शन करना है, सत्य को मूर्त करना है—वह सत्य जो शताब्दियों-सहस्राब्दियों से होता आ रहा है, होता रहेगा। यही तो उसकी कला है। मैंने यही किया।

पत्नी की ओर पति ने प्यार-भरी चितवन से देखा। वह चाहता था कि अपनी इस कृति को, जिसे उसने प्रकृति पर विजय पाकर बनाया है, प्यार करे। परन्तु वह उस समय थकान से चूर-चूर होकर सो गई थी। वह गहरी नींद में सो रही थी।

वह चौंक पड़ा। ओह ! यह गहरा विश्राम तो इस जीवित चित्र की एक भिन्न ही रेखा है, इसका तो मैंने विचार ही नहीं किया था। मैं सोच रहा था कि इस अपरूप को जीवन मैंने दिया। परन्तु अब समझ रहा हूं कि यह जो उसके व्यस्त जीवन में बीच-बीच में ऐसे ही गहरे विश्राम के विराम निरन्तर बीस वर्ष तक होते रहे, उसीने उसमें जीवन कायम रखा है। वह लज्जित हुआ। ठीक, ठीक यह त्रुटि रह गई। उसके माथे में रेखाएं पड़ गईं। वह सोचने लगा : इस विराम का तो चित्रण शायद न हो सकेगा। फिर जीवन से उसका सामंजस्य कैसे स्थापित हो पाएगा।

वह कुछ भी निर्णय न कर पाया। वह पति भी था और कलाकार भी। इस समय पति भी कुछ सोच रहा था और अपनी पराजय पर लज्जित भी हो रहा था, परन्तु कलाकार गम्भीर था। वह और भी गहरी बात सोच रहा था। वह सोच रहा था कला के अपने दृष्टिकोण के सम्बन्ध में। वह सोच रहा था कि यही गहरा विश्राम यदि चिरविश्राम में परिवर्तित हो जाए तो फिर मेरी यह मूर्ति मेरी कला की प्रतिष्ठा-भूमि पर अप्रतिम रहेगी तो ?

पत्नी ने उसके विश्रान्त अभिशप्त मुख पर दृष्टि जमाई। उज्ज्वल कौमुदी का विस्तार करता हुआ चन्द्रमा, सुदूर गगन में टिमटिमाते तारे सभी देखते रह गए।

कलाकार ने मूर्ति की प्रतिलिपि तैयार की। इस भय से कि कहीं काल उसकी रेखाओं में हस्तक्षेप न कर दे, उसने पत्थर ही पर हस्तक्षेप किया। प्रतिलिपि उसी पति की पत्नी थी—वही सूखे होंठ, सूनी दृष्टि, बुझी हुई चितवन, ढले हुए गाल और परास्त यौवन। इस मूर्ति में कलाकार ने अपनी

कल्पना का एक कमाल किया था। उसने मूर्ति में उस चिर विश्राम को अप्राप्य अंकित किया था और उसकी गहरी आंतरिक भूख मूर्ति की पलकों में सजा दी थी। इस प्रतिकृति का नाम रखा उसने—'धरती और आसमान।'

# युगलांगुलीय

रवीन्द्र ठाकुर की एक-दो पंक्तियों पर यह कहानी लिखी गई है, जिसमें दो आधुनिकतम उच्चशिक्षिता भारतीय नारियों के विभिन्न दृष्टिकोणों की रेखाएं हैं।

बहुत दिन बाद दोनों सखियां मिली थीं ; कोई पांच साल बाद। श्रद्धा और रेखा। दोनों बचपन में साथ खेली थीं, साथ ही पढ़ी थीं। साथ ही दोनों ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० परीक्षा पास की थी। श्रद्धा ने दर्शन और मनोविज्ञान में, और रेखा ने राजनीति में। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। एक जान दो कालिब थीं दोनों। दोनों साथ खाती थीं, एक दिन भी मिलन न होता तो बेचैन हो जाती थीं। लोग देखते थे और हंसते थे। घर के लोग हंसी में उन्हें जुड़वां बहनें कहते थे, और कालेज में उनकी संगिनियों ने उनका नाम रखा था युगलांगुलीय। श्रद्धा का विवाह हो गया, परन्तु रेखा ने विवाह नहीं कराया। वह भारत सरकार से वजीफा पाकर उच्चशिक्षा प्राप्त करने यूरोप चली गई। यूरोप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में राजनीति और अर्थ-शास्त्र का अध्ययन करके उसने प्रतिष्ठा के साथ डाक्टरेट प्राप्त किया था। उसके थीसिस की परीक्षकों ने बड़ी प्रशंसा की थी। इसके बाद उसने सारे यूरोप और बाद में सोवियत रूस में भ्रमण किया और वहां की राजनीति और अर्थशास्त्र का मनन-अध्ययन किया था। अब वह सब भांति कृतकृत्य हो, अपने विषय की प्रकाण्ड पण्डिता हो, सारे विश्व की आधुनिकतम सभ्यता, समाचार, राजनीति और अर्थशास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर भारत लौटी थी, जहां भारत सरकार ने उसकी योग्यता का आदर कर उसे तत्काल ही केन्द्र में एक उच्च पद प्रदान किया था। और अब वह अपनी दृष्टि से अपने ध्येय में कृतकृत्य हो छह मास की छुट्टी ले सीधी अपनी सखी से मिलने उसके घर आई थी। माता-पिता से मिलना उसने पीछे के लिए छोड़ दिया था।

श्रद्धा का विवाह विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त होते ही हो गया था। उसके पति विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान के प्राध्यापक थे। वह भी अपने विषय के पारंगत पण्डित थे। उनके नवीन अन्वेषणों की उन दिनों देश भर में चर्चा थी। वे मृदुलस्वभाव, मितभाषी, गम्भीरप्रकृति, धर्मभीरु और एक अंश तक लजीले तरुण थे। सब मिलाकर उन्हें मिलनसार नहीं कहा जा सकता था। अवश्य ही वे बहुत कम लोगों से मिलते-जुलते थे। आठों पहर अध्ययन में लगे रहते थे। पास-पड़ोस के सब लोग उन्हें मज़ाक से 'मौनी बाबा' कहा करते थे। क्योंकि वे किसीसे बातचीत तक नहीं करते थे। परन्तु पड़ोस के सभी छोटे-बड़े लोगों के सुख-दुःख में वे तुरन्त पहुंच जाते थे। वे एक आदर्श शान्त, शिष्ट पुरुष थे। एकान्तप्रिय होने पर भी वे शुष्क काष्ठ न थे। उनका मुक्त हास्य उनके हृदय की स्वच्छता और विशालता को प्रकट करता था।

इस बीच श्रद्धा को एक कन्या-रत्न की उपलब्धि हुई थी। कन्या अभी तीन वर्ष की थी। उसका नाम था रश्मि। वह हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर और लुभावनी बालिका थी। ज्योतिष्मती रविरश्मि की भांति उज्ज्वल कान्तियुक्त उसका दन्तुल हास्य शरच्चन्द्र-कौमुदी की भांति मोहक था, और उसकी अटपटी तुतलाती वाणी वीणा की झंकार से भी अधिक मधुर और हृदयहारिणी थी। माता उसकी मनोविज्ञान की आचार्या थी। अतः उसने उस बालिका को उसके जीवन के आरम्भिक तीन वर्षों में एक बार भी रोने, आंसू बहाने का हठ करने, मचलने का अवसर नहीं दिया था। इसी अल्प वय में वह अनुशासित, नियमित और समझदार बन गई थी। जब देखिए तभी उसका शुभ हास्य, घर-आंगन में बिखरा रहता, उसकी तोतली वीणाविनिन्दित वाणी और अट-पटी चाल की ठुमकियों से घर अनुप्राणित रहता था।

रेखा इस बीच ज़रा भर गई थी। बचपन से ही वह हृष्टपुष्ट थी। रंग उसका मोती के समान उज्ज्वल था। उसपर अब चम्पे की आभा के समान पीत प्रभा छा रही थी। उसके शरीर के उभार के साथ गृहिणी का गाम्भीर्य उसके अंग में उग रहा था। अभी वह केवल अट्ठाईस ही वर्ष की थी, पर उसमें नारीत्व, पत्नीत्व, मातृत्व और गृहिणीत्व के तत्त्व मिश्रित होकर उसकी सुषमा की अपूर्व वृद्धि कर रहे थे। प्रत्येक उस व्यक्ति को जो उसके सम्पर्क में आए, छोटा या बड़ा, उसकी मन्द मुस्कान और विनयशील के आगे नत-

मस्तक होना ही पड़ता था।

दोनों ही ये अभिन्न सखियां अब दो विभिन्न मनोवृत्तियों और परिस्थितियों से लदी-फदी ज़ीवन की देहरी पर खड़ी थीं, जागरूक और ज्ञान-गरिमा से परिपूर्ण। एक अभी तक कुमारी थी–आत्मार्पण से अछूती, विश्व की नई सभ्यता, शिक्षा, आदर्श और जीवन-ध्येय का विधिवत् अध्ययन करके अपनी सम्पूर्ण चेतना, निष्ठा और विवेक की स्वतन्त्र स्वामिनी; अपने अधिकारों के ज्ञान से सम्पन्न और उसकी रक्षा में समर्थ; आशा, आकांक्षा और साहस का पुंज आत्मा में संजोए हुए।

और दूसरी थी–पत्नीत्व, मातृत्व और गृहिणीत्व की गरिमा से सम्पन्न आत्मार्पित, कर्त्तव्यपरायण नारी; अधिकारों का समूल बिसर्जन किए हुए; त्याग, तप और प्रेम की ज्योतिर्मयी दीपशिखा। दोनों परस्पर अभिमुख थीं। रेखा ने इस थोड़े से ही समय में उसका श्रम, तत्परता, सेवा और गृहिणी-रूप देख लिया था। वह प्रभावित हुई थी। उसने यूरोप और सोवियत भूमि की जागरित नारियां देखी थीं जो केवल घरों में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक पहलू में पुरुषों से कन्धा मिलाकर चल रही थीं। परन्तु यहां उसने जो कुछ देखा वह तो सर्वथा नवीन था। उसने देखा था—नारी का एक अपना क्षेत्र, जहां पुरुष का कोई प्रवेश ही नहीं है। किन्तु पुरुष के जीवन की सफलता केवल उस पर निर्भर है। वहां अकेली ही श्रद्धा उसकी सखी निर्द्वन्द्व चली जा रही है, बाधा और शंकाओं रहित; घर के पशु और नौकरों से लेकर छोटी से छोटी चीज़ पर भी ममत्व बखेरती हुई।

सब कामों और भोजन से निवृत्त होकर दोनों सखियां बैठीं। बातें प्रारम्भ हुईं।

श्रद्धा ने पूछा—सखी! तूने सारी दुनिया की खाक छान डाली। सारी दुनिया तूने देखी और समझी। यह बता मुझे, कहीं सौंदर्य के भी दर्शन हुए?

'हुए, दक्षिणी अफ्रीका के एक निर्जन मैदान में, जब मैं वहां का प्रसिद्ध जलप्रपात देखकर लौट रही थी।'

श्रद्धा हंस पड़ी। बड़ी स्वस्थ थी वह हंसी। उसने कहा—खाक पत्थर। सौन्दर्य के तुझे दर्शन हुए भी तो अफ्रीका में। भला काला था या गोरा वह सौन्दर्य। होंठ उसके कितने मोटे थे?

'काले-गोरे का तो मैंने ख्याल नहीं किया श्रद्धा। बस मैं ठगी सी खड़ी देखती रह गई ! उस समय मेरा मस्तिष्क विचारों से भर गया !'

'सच ! कौन थी वह ?'

'एक क्षीणकलेवरा नदी की स्वर्णधारा ; पर्वतों से उतरकर मैदान में आई थी। बरसात में उसका बड़ा विस्तार रहता होगा। फैलाव उसका बहुत था, पर जलधारा तो पतली स्वर्णरेखा ही सी थी। उसके चारों तरफ सूखे रेत के टीले, खड्ड और मिट्टी के ढूह और उनके बीच वह बहती हुई स्वर्णप्रभा क्षीण-कलेवरा सलिलधारा ! जानती हो उस समय मेरे मन में क्या विचार उदय हुए ?'

'तुम्हीं कहो सखी !'

'कि यह है नारी। और ये सूखे रेत के टीले, मिट्टी के ढूह और खड्ड सब पुरुष हैं, जो रूखे-सूखे अपनी विशालता के घमण्ड में जहां के तहां खड़े हैं और उनके बीच यह स्रोतस्विनी नारी दोनों कूलों को स्तन्य पान कराती कलकल नाद करती अपनी सरल-तरल गति से बही चली जा रही है।'

'क्षीणकलेवरा उस तरला प्रवाहित पयस्विनी को तुमने नारी का विकल्प ठीक ही दिया रेखा, परन्तु उन बालू के ढूहों को और मिट्टी के सूखे टीलों को तुम पुरुष कैसे कल्पित कर सकती हो ?'

'क्यों न करूं भला। क्या पुरुष-समाज उस निश्चल शुष्क बालू के ढूहों की भांति निष्फल और अकर्मण्य नहीं है ? क्या उन्हें दीखता नहीं है कि उनके वामांचल में नारी विनम्र सेविका की भांति अपने ही में संकोच-लाज से सिमटी स्वच्छ सुधा-स्रोत में बही जा रही है, एक क्षण विश्राम की बात तो दूर, मुड़कर पीछे देखने का भी उसे अवकाश नहीं है। उसका समूचा जीवन ही एक ध्रुव लक्ष्य की ओर अनवरत रूप में अग्रसर हो रहा है, और इन अकर्मण्य बालू के ढूहों और मिट्टी के सूखे लोंदों को पैरों से कुचलते हुए, जिधर जल-स्रोत है, उधर ही लोग जाकर देखते हैं कि वहां सुषमा, छाया और हरियाली का प्रसाद फैला हुआ है।'

श्रद्धा ने हंसकर कहा—तूने ब्याह नहीं किया, इसीसे मैंने समझा था कि तू जड़ है, पर तूने सौन्दर्य ही नहीं, सत्य को भी परख लिया।

'ब्याह न करने से ही मैं जड़ हो जाऊंगी ? कहीं नारी जड़ होती है ? ब्याह नहीं किया, पर नारी तो हूं।'

'तूने क्या हमारी पुष्करिणी देखी ।'

'चाय पीकर उधर ही चली गई थी । सच मान श्रद्धा, देखकर ठगी-सी रह गई । यूरोप में भला यह सुषमा कहां !'

'मेरे नील कमल देखे तूने; कैसे लगे ?'

'तू बुरा मान चाहे भला मान, एक चुपके से चुरा लाई हूं । यह मेरे जूड़े में लगा है । ऐसे बड़े-बड़े सुन्दर नील कमल मैंने कभी देखे न थे । पारिजात भी ऐसा ही फूल होता होगा, जिसके लिए रुक्मणि ने कृष्ण को इन्द्र से विग्रह करके नन्दन वन से ले आने का आग्रह किया था ।'

'ऐसे फूल और ऐसी सुषमा क्या तूने उस क्षीणकलेवरा स्रोतस्विनी में भी नहीं देखी ? क्या उस नदी में ऐसे फूल नहीं पैदा होते ?'

'बहते पानी में भला फूल हो सकते हैं ? फूल तो बन्द पानी में ही होते हैं । तो बहिन, मेरे सौन्दर्य का दृष्टिकोण भी देख, तू उस प्रवाहिणी नदी को नारी की उपमा देती है, तो मैं अपनी इस पुष्पिता पुष्करिणी को नारी की उपमा से सुव्याख्यात करती हूं । परन्तु मेरी इस नारी में और तेरी उस नारी में अन्तर तो है । तेरी वह नारी पाश्चात्य नारी है–निरन्तर प्रवाहित अनवरत अग्रसर होती हुई । परन्तु यह नारी भारतीय है । अपने घर के आंगन में बद्ध और पुष्पिता । कह, दोनों में अधिक सुन्दर कौन है ?'

'सुन्दरता की बात छोड़ । तू क्या यह कहना चाहती है कि भारतीय नारी को जो हमने घर के आंगन में बांध रखा है, वही उसके सौन्दर्य की पराकाष्ठा है ?'

'हां, यही मैं कहती हूं । परन्तु भारतीय नारी को किसीने बांधकर नहीं रखा है, वह तो स्वयं ही स्वेच्छा से कर्म-बन्धन में बंध गई है । परन्तु उसका यह बन्धन साधारण नहीं है । उसने संसार की प्रलयकारिणी शक्ति को अपने साथ बांधकर रखा है । दूसरे शब्दों में, नारी शयनगृह का दीप है जो स्वयं जलकर स्निग्ध प्रकाश प्रदान करता है ।'

'तुम्हारा यह अभिप्राय तो नहीं है कि नारी के कार्य का प्रसार संकीर्ण है, विशाल संसार-क्षेत्र में उसके लिए स्थान ही नहीं है । मात्र पति, पुत्र, परिजनों को सन्तुष्ट करने ही में उसके कर्तव्य की पूर्ति हो जाती है ?'

'मेरा अभिप्राय यह है कि नारी का जीवन से नकद का लेनदेन है । अपने

सभी कार्यों के फलों की उपलब्धि वह हाथों-हाथ चाहती है।'

'और पुरुष।'

'पुरुषों की बात जुदा है। उनका कार्यक्षेत्र दूर देश और भूत-भविष्य में फैला हुआ है। उनपर आसपास की निन्दा-स्तुति का प्रभाव ही नहीं पड़ता। आशा और कल्पना के आसरे वह अविचलित रहता है।'

'आशा और कल्पना का आसरा तो स्त्रियों को भी तकना पड़ता है।'

'बहुत कम। उनका प्रधान काम है आनन्द-दान करना। यदि नारी संगीत और कविता की भांति अपना अस्तित्व सम्पूर्ण सौन्दर्यमय बना डाले तो उसके जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया। बस, अब काहे को आशा और कल्पना के चक्कर में फंसे? वह तो हाथों-हाथ लाभ में ही खुश है।'

'इसमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की लघुता का आभास तुझे नहीं मिलता, श्रद्धा, तनिक भी नहीं। हमारी सीमा बृहत्त्व में नहीं है, महत्त्व में है।'

'बृहत्त्व में क्यों नहीं, और महत्त्व में कैसे?'

'देखती तो है तू यह सारा लम्बा-चौड़ा स्थूल शरीर। इसकी सीमा बृहत्त्व में है। पर शरीर के भीतर जो मर्मस्थल हैं, वे छोटे भी हैं और गुप्त भी। पर शरीर के बृहत्त्व से उन मर्मों के महत्त्व का मूल्य अधिक है। हम सब नारी मानव-समाज की मर्मस्थली हैं। तू इतनी मोटी बात भी नहीं समझती?'

रेखा हंस पड़ी। उसने कहा—तेरे मर्म की बात सचमुच बहुत मोटी है, पर इसमें क्या तू नारी को घर में बांधकर भी मनुष्य-समाज के सिर पर बैठाना चाहती है?

'नारी को मनुष्य-समाज के सिर पर या पैरों पर बैठाने से मेरा क्या प्रयोजन है। मैं तो यह कहती हूं कि मनुष्य प्रतिदिन कर्म-चक्र से कितनी धूल-गर्द उड़ाते हैं, कितनी मलिनता बखेरते हैं, उसे तो कार्यकुशल हाथों से नारी ही प्रतिक्षण साफ करती है। फिर उसके कार्यक्षेत्र को तू संकीर्ण क्यों कहती है? मानस संसार की सारी ही व्याधियां भूख-प्यास, शान्ति और रोग-शोक ये सभी तो उसीके कार्यक्षेत्र के भीतर उत्पात मचाते हैं, जिनका शमन धैर्यमयी लोकवत्सला नारी ही तो प्रतिदिन करती है।'

'इसका अभिप्राय तो यही है कि भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान पुरुष से ऊंचा है?'

'यह तो है ही।'

'इसीसे वह पति को देवता कहती है, पतिपद पूजती है और अपने को चरणदासी कहती है।'

श्रद्धा हंस दी। उसने कहा—रेखा, तू तो व्यंग्य-वाण बरसाने लगी। बचपन में हम लोग गुड्डे-गुड़ियों से कैसा खेलती हैं, जैसे वे जीवित पुतले हैं। बड़ी होने पर इस पुरुष पुतले से वैसे ही खेलती हैं। फिर हम हिन्दू लोग तो ईंट-पत्थर, वृक्ष, नदी सभी को देवता मानते हैं। फिर पुरुषों ही को देवता मानने से क्या नई बात हुई! इसके अतिरिक्त भारतीय पुरुषों को सारी पृथ्वी पर केवल उनके अन्तःपुर में ही सम्मान मिलता है। इसीसे हम उन्हें केवल मालिक ही नहीं, देवता मान लेती हैं। पर यह क्या हम नहीं जानतीं कि वे तृण और मिट्टी के पुतले मात्र हैं। हकीकत में जहां गौरवपूर्ण मनुष्यत्व है, वहां छद्मवेश की आवश्यकता ही नहीं है। जहां मनुष्यत्व की कमी है, वहां देवता का ढोंग रचना पड़ता है।

'परन्तु जो यथार्थ मनुष्य है, उसे देवता का अर्घ्य लेते लज्जा आनी चाहिए। इसके अतिरिक्त जो पूजा ग्रहण करता है, उसे पूजा के योग्य अपने को बनाना चाहिए। परन्तु भारत में तो मैं ऐसा देखती हूं कि पुरुष-सम्प्रदाय अपने इस मिथ्या देवत्व पर ही गर्व करता है। उसकी योग्यता जितनी ही कम है, उतना ही उसका आडम्बर अधिक है। इसीसे वह स्त्रियों को पातिव्रतधर्म और पतिव्रता के माहात्म्य पर जी-जान से उपदेश दे रहा है। चाहिए तो यह कि पत्नियों को पतिपद-पूजा करना सिखाने की अपेक्षा पतियों को देवता होने की वास्तविक शिक्षा दी जाए।'

श्रद्धा हंस पड़ी। उसने कहा—देवता होने की भी कहीं शिक्षा दी जा सकती है? वह तो असल में हमारी मनोकल्पना ही है। फिर पुरुष यदि देवता है तो हम स्त्रियां भी तो देवी हैं। चलो छुट्टी हुई।

'देवीजी! तुम तो केवल कविता की देवी हो। घर के देवता तो पुरुष ही हैं। देवता का सारा भोग तो वही पाते हैं। कहने को तुम सुख-सम्पत्ति की देवी हो, पर सच पूछो तो सारी पृथ्वी पुरुषों की सम्पत्ति है। इसके अतिरिक्त यदि कुछ हो तो वह तुम्हारा हो सकता है। छप्पन भोग उनके लिए हैं और जूठन तुम्हारे लिए। प्रकृति का मुक्ताकाश-विहार उनके लिए है और घर की एक खिड़की का

सहारा तुम्हारे लिए। वे पैर पुजवाते हैं, तुम उनकी लात खाती हो। बस यही तो देवी-देवताओं की बातें हैं। या और कुछ ?'

'और कुछ क्या, बहुत कुछ। ये सब तो केवल भाव-भावनाओं की ही बातें हैं। वास्तविक जीवन की ओर देखो। हमारे देश में गार्हस्थ्य का भार कितना गुरुतर है, उसे तो स्त्रियां ही सदा से ढोती आई हैं। आचार, व्यवहार और भारतीय स्वजनों से भरे परिवार के बोझ को खींच ले जाना क्या ऐसा आसान है ! दूसरे देशों में पुरुष अर्थ और राजनीति के बड़े-बड़े चक्र चलाते हैं। इससे उनके जीवन-क्रम नारी के जीवन-क्रम से बहुत भिन्न हो गए हैं। पर भारतीय पुरुष तो एकदम घरघुस्सू हैं, पत्नीचालित। किसी बड़े क्षेत्र में कब से उनके जीवन का विकास रुक गया है, यह बात अब बिना अतीत का इतिहास पढ़े याद ही नहीं आती। व्यवहार में तो उन्हें आज किसी पुरुषोचित कर्तव्य का पालन करना पड़ता नहीं।'

'बस, देवता बनकर स्त्रियों की पदपूजा ग्रहण करना और वे पतिव्रतधर्म को भूल न जाएं, इसकी याद दिलाते रहना—यही उनका मुख्य कार्य रह गया है। क्यों यही न ? नहीं, बहिन नहीं। हम भारतीय स्त्रियों का यह सौभाग्य ही है कि हमें अपना कर्तव्य खोजने कहीं भटकना नहीं पड़ता। वह हमें हमारे घर के भीतर आप ही आप हमारे हाथों आ जाता है। हम अपने प्यार के दान से अपना कर्तव्य-पालन आरम्भ करती हैं। इसीपर से हमारी सम्पूर्ण चेतना-वृत्ति जाग उठती है। बाहर की कोई बाधा हमें रोक नहीं सकती। हम अधीनता के भीतर अपना तेज सुरक्षित रखती हैं। पुरुषों की बाह्य प्रधानता इसीसे हमें खलती नहीं। वे बाह्य जगत् में तीस-मारखां हों, पर हमारे वे आज्ञाकारी और पालतू अनुगत पति ही हैं।'

'अनुगत क्यों ?'

'देखो रेखा, तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि बुद्धि में भारतीय स्त्रियां पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। इस अनुपात से शिक्षिता स्त्रियां पुरुषों के ऊपर हैं।'

'यह कैसे ?'

'ऐसे कि हमारे देश के शिक्षित पुरुष मूढ़ अहंकार में अभिभूत हैं और उन्होंने शिक्षा और संस्कृति में अपनी वास्तविकता नष्ट कर दी है। इसीसे उनके मनोभाव विकृत हो गए हैं। शिक्षा पाकर वे धरती पर पैर ही नहीं रखते। अहंकार

उनकी बुद्धि को कुंठित कर देता है। पर हम स्त्रियों ने तो अपनी शिक्षा को अपना आभूषण बना लिया है। वह हमारा शृंगार है। उसमें हम संयम और नम्रता का समावेश करके अपने कर्तव्य में जोड़ देती हैं। इसीसे जहां पुरुष घमण्ड में तना हुआ सब जगह प्रभुत्व चाहता है, वहां हम प्रेम और आत्मीयता के सम्बन्ध स्थापित करती हैं।'

'नर-नारी का यह भेद क्या स्त्री-चरित्र की स्वाभाविक कोमलता के कारण है?'

'नहीं बहिन, स्त्री-चरित्र में जो एक प्राकृत सुबुद्धि और सद्विवेचना तथा चरित्र की उच्चता है, वही उसका कारण है।'

'तो तू यह कहना चाहती है कि भारतीय समाज में स्त्री ही की प्रधानता है?'

'नहीं तो क्या, अरी रेखा! ये पुरुष तो मुरचा लगा हुआ रुपया है; वह हमारी ही साख पर चलता है।'

'यहां तक!' रेखा खिलखिलाकर हंस पड़ी। श्रद्धा ने और भी गम्भीर होकर कहा—हंसने की बात नहीं बहिन, सच्ची बात है। देख, हम लोग दिन-रात काम में लगी रहती हैं। इसीसे हम शिक्षा के व्यवहार-दर्शन को सरलता से हृदयंगम कर लेती हैं और उसे अपने जीवन का अंग बना लेती हैं। हमारा चरित्रबल इसमें हमारी सहायता करता है। शिक्षा से चरित्र का यह मेल सोने में सुहागा है। पुरुषों में यह है ही नहीं। इसीसे तुम देखती हो कि हमारे देश में शिक्षिता स्त्रियों के अनुरूप शिक्षित पुरुष मिलने ही दूभर हैं। यदि वे अपने बाह्य आडम्बरों को घटा दें, हमारी तरह गर्वरहित हों, विनम्र-भाव से काम में लग जाएं, चरित्र का विकास करें, विश्वास का आंचल पकड़ें तो आज जो स्त्री-पुरुष के अधिकारों का तुमुल संग्राम छिड़ा है, सहज ही में बन्द हो जाए। एक-दूसरे को आत्मार्पण कर दें; दोनों पृथक् व्यक्ति न रहकर एक इकाई हो जाएं।

'तो बहिन, तू ऐसा कर कि इस पालित पशु के गले में अपने गले की चमकती सोने की ज़ंजीर डाल और उसके लम्बे-लम्बे कान पकड़कर कह कि—बुद्धू मियां, भोजन खाने के लिए है, मुंह पर लपेटने के लिए नहीं। इसी प्रकार शिक्षा मन को उन्नत करने के लिए है, कोट-पतलून की जेबों में भरने के लिए नहीं।'

'मैं तो अपने हिस्से का काम कर चुकी रेखा, अब तेरी बारी है। जरा अच्छे से किसी लम्बे कान वाले को पकड़कर······समझी कि नहीं?'

दोनों सखियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। श्रद्धा ने घड़ी पर दृष्टि डालकर

कहा—ओहो ! बातों ही बातों में कितना वक्त बीत गया, पता ही न चला ! ज़रा उठूं, मुन्नी अब सोकर उठने ही वाली है, उसके लिए दूध गर्म कर दूं। और उनके भी आने का समय हो रहा है, चाय का डौल करूं। अब मैं तुझे आलू के चोप खिलाऊंगी। देख कैसे लगते हैं। अच्छे लगें तो एक अच्छा सा सर्टिफिकेट देना।

'क्या करेगी सर्टिफिकेट ?'

'शीशे में लगाकर घर में लटकाऊंगी। लोग देखेंगे और मेरी इस विद्या की प्रामाणिकता की दाद देंगे।'

'अच्छी बात है, सर्टिफिकेट दूंगी। पर सिर्फ खाकर ही नहीं, मुझे भी चोप बनाना सिखा। पहले अंगीठी जलाने से शुरू करूं।'

'अब गिलहरी रंग लाई ! तो ऐसी जल्दी क्या है, सगाई तो पक्की कर। खाने और सराहना करने वाला आ जाए तब बनाना भी सीख लेना।'

श्रद्धा ने प्रेम भरे नेत्रों से रेखा को देखा और रेखा श्रद्धा से लिपट गई।

# कौतुक कहानियां

- पीर नाबालिग
- तिकड़म
- मास्टर साहब की घड़ी

# पीर नाबालिग

*देश के जागरण में अनगिन उद्ग्रीव तरुणों ने उत्सर्ग किया, पर वे अज्ञात ही रहे। प्रस्तुत कहानी में ऐसे ही एक तरुण का परिचय मनोरंजक भाषा में प्रस्तुत किया गया है।*

कभी-कभी बनारस चला आया करता हूं। काम करते-करते जब बहुत थक जाता हूं–या दिमाग में कोई उलझन पड़ जाती है या बीवी से बिगाड़ हो जाता है–तब बनारस ही एक जगह है जहां आकर दिमाग ठण्डा हो जाता है। दशाश्वमेध से छत वाली एक बड़ी नाव पकड़ और शरद् की प्रभातकालीन धूप में गंगा की निर्मल लहरों पर तैरती हुई किश्ती की छत पर नंगे बदन एक चटाई पर औंधे पड़कर वहां के सिद्धहस्त मालिश करने वालों से बदन में तेल मालिश कराना, दूधिया छानना और फिर किसी साफ-सुथरे घाट पर और कभी-कभी बीच धार ही में गंगा की गोद में चपल बालक की भांति उछल-कूदकर जल-क्रीड़ा करना, फिर उसी गंगा की लहरों पर हंस की भांति तैरती हुई किश्ती की छत पर बैठकर कचौरीगली की गर्मागर्म कचौरियां और रसगुल्ले उड़ाना, रस-भरे सुवासित मघई पानों के दोने पर दोने खाली करना, मन में कितना आनन्द, बेफिक्री, ताजगी और मस्ती भर देता है! रात को बनारस की मलाई और पान की गिलौरियां वह लुत्फ देती हैं जिसकी कल्पना भी दिल्ली के कचालू के पत्ते चाटने वाले नहीं कर सकते।

मित्र-मण्डली भी काफी जुट गई है, यद्यपि मित्रों में न कोई नेकनाम लीडर है, न नामी-गरामी वकील, न कोई रईस। कुछ नौजवान दोस्त हैं; लोग उन्हें गुण्डा कहकर बदनाम करते हैं, पर मुझे उनकी सोहबत चन्द्रोदय, मकरध्वज, च्यवनप्राश और मदनमंजरी वटी से भी ज्यादा ताकत देने वाली साबित हुई है। मेरे ये बेफिक्रे दोस्त जब मेरी जेब के पैसों से दूधिया छान, कचौरियां हज़म कर मलाई चाटकर, पान कचरते हुए, कैप्स्टन के सुगन्धित धुएं का बवण्डर मेरे चारों

ओर उँडेलते हुए, हर तरह मुझे खुश करने और हंसाने के जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं, तब मैं हरगिज अपने को लार्ड वावेल से कम नहीं समझता। और इन दोस्तों की बदौलत एक हफ्ते ही में इस कदर मस्ती और ताज़गी दिमाग और शरीर में भर ले जाता हूं, जो सैकड़ों रुपयों की दवाइयां खाने पर भी नहीं मुअस्सर हो सकती।

जो लोग नैनीताल, मसूरी, कश्मीर और शिमला जाते हैं, मेरी राय में वे झख मारते हैं। मैं उनसे कहूंगा, वे बनारस आएं, चित्रा में पान खाएं, और मेरे बेफिक्रे दोस्तों की सोहबत का मज़ा उठाएं। हां, यह बात ज़रूर है, उन्हें लाज़िम है कि वे अपना बड़प्पन, बुजुर्गी, मनहूसियत और लियाकत को अपने घर पर ही या तो अपनी बीवी के सुपुर्द कर आएं या सेफ में बन्द कर आएं। मेरे दोस्त ऐसे बड़े लोगों के पास नहीं फटक सकते।

इस बार कई महीने बाद बनारस आया था। तमाम गर्मी दिल्ली के जलते हुए मकानों में बितानी पड़ी। काम का बोझा इतना था कि दिमाग का कचूमर निकल गया। अब बनारस में आकर जो गंगा की निर्मल लहरों के ऊपर शरद् के अमल-धवल हिम-श्वेत बादलों के बीच द्वादशी के चांद को आंखमिचौनी करते देखा तो तबियत हरी हो गई। एक दिन गंगा की गोद में सान्ध्य-गोष्ठी की ठहरी। दोस्तों ने लम्बी छुट्टी की कसर निकालने के लिए दूधिया की जगह लाल-परी का प्रोग्राम जड़ दिया।

रात दूध में नहा रही थी, और मेरे बेफिक्रे दोस्त लालपरी के रंग में लाल गुल्लाला हो रहे थे। मैं अलस भाव से उनके बीच चटाई पर पड़ा मन्द-मन्द हिलती हुई किश्ती की थपकियों का आनन्द ले रहा था। इस बार मण्डली में एक नए दोस्त की आमद हुई थी। यह नया अदद ऐसा था कि उसने बरबस मुझे अपनी ओर खींच लिया।

चुचके हुए गाल—सफेद रुई के गोले के समान। लम्बी नाक की नोक नीचे झुककर होंठ से सलाह-सी कर रही थी। उसी नोक पर गिलिट फ्रेम का एक भद्दा सा चश्मा रक्खा था। बिखरे हुए रूखे खिचड़ी बाल, आगे के तीन दांत गायब, पान से बाहर तक रंगे हुए होंठ, बदन पर एक साधारण चैक-डिज़ाइन की कमीज, कमर में बहुत ढीला मैला पायजामा, जिसका एक पायचा फटा हुआ। पैरों में बिना ही मोजे के बहुत भारी शू, जिनमें फीते नदारद, और धूल-गर्द

इतना कि साफ कहा जा सकता है कि फैक्टरी से निकलने के बाद उन्होंने पालिश की सूरत ही नहीं देखी। दुबले-पतले, कोई छटांक-भर के आदमी थे, न हंसते थे, न बोलते थे, न इठलाते थे, न मचलते थे। एक के बाद दूसरी बीड़ी जेब से निकालते और फूंकते जा रहे थे।

मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। परिचय पूछा तो एक दोस्त ने मुस्कराकर सिर्फ इतना ही कहा—

'आप पीर नाबालिग हैं।' दोस्त के होंठ ही नहीं, आंखें भी मुस्करा रही थीं।

मैंने उठकर कहा—तब तो मुझे आपका अदब करना चाहिए।

और मैंने ज़रा उठकर आदाब-अर्ज़ किया।

'पीर नाबालिग' बनकर भी न बने। ठण्डे-ठण्डे सलाम लेकर गम्भीरता से बीड़ियां फूंकते रहे।

मैं ध्यान से उनकी ओर घूरकर देखता रहा। एक दोस्त ने कहा—आपके पास कुछ शिकायत करने आए हैं।

मैंने हैरान होकर कहा—शिकायत?

दोस्त के चेहरे पर शरारत की रेखाएं साफ दीख पड़ रही थीं। उसने नकली गम्भीरता से कहा—जी हां, शिकायत! आपको सुनना होगा, और मुनासिब बन्दोबस्त करना होगा।

मैं समझ गया कि कोई दिलचस्प फिगर है। मैंने भी वैसी ही गम्भीरता से कहा—तो मैं सब कुछ कर गुज़रने पर आमादा हूं, फर्माइए।

पीर नाबालिग ने धीरे से कहा—बनारस में जयप्रकाशनारायण आए हुए हैं, आपने सुना होगा?

'कल रात अखबार में पढ़ा था।'

'बनारस में उन्हें एक लाख की थैली भेंट की जा रही है, यह भी आपको मालूम है।'

'हो सकता है।'

'यह तो एक अन्धेर है।'

मैं कुछ नहीं समझा कि मेरे नए दोस्त क्या कहना चाहते हैं। मैंने अकचकाकर कहा—अन्धेर?

सब दोस्त एकबारगी ही बरस पड़े। बोले—अन्धेर नहीं तो क्या? सोलह आना अन्धेर! फिर हम लोगों के रहते?

मुझे हंसी आ रही थी, परन्तु मैंने उसे रोककर अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा—तब तो अन्धेर को रोकना होगा! मगर मामला क्या है वह भी तो कुछ सुनूं?

पीर नाबालिग ने हाथ की बीड़ी फेंक दी, और ज़रा तेज़ स्वर में कहा—सुनना चाहते हैं तो सुनिए! भला बताइए तो जयप्रकाश बाबू को किस बहादुरी के सिलसिले में इतना रुपया मिल रहा है?

मैंने धीरे से कहा—उनकी बहादुरी और देशभक्ति तो भारत का बच्चा-बच्चा जानता है! उन्होंने कितना त्याग किया, कष्ट सहे! और अब देश की आज़ादी के लिए कितना भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं!

*'तब आपको असल बात का पता ही नहीं है।'*

मैंने बिना हुज्जत यह बात स्वीकार कर ली। कहा—आप ठीक कहते हैं, असल बात का मुझे सचमुच कुछ पता नहीं है! कुछ बताइए न भेद की बात।

दोस्तों ने भी ललकारा—बस भई, अब तुम सब कुछ कह डालो, घोड़े की लात की बात भी न छिपाओ।

मैंने कहा—घोड़े की लात की क्या बात है?

पीर नाबालिग एक मिनट खामोश रहे, फिर कहा—देखिए, ये लीडर लोग सब सिर्फ ज़बांदराज़ी करते हैं! काम कोई और ही करते हैं। बयालिस के अगस्त-आन्दोलन ही को ले लीजिए। क्या आप जानते हैं कि कचहरी से यूनिवर्सिटी तक के तार और खम्भे किसने तोड़े थे? कचहरी पर कलक्टर की नाक पर पैर रखकर तिरंगा झण्डा किसने फहराया था?

मैंने नम्रता से कहा—नहीं, ये सब भारी-भारी बातें मुझे नहीं मालूम हैं। आप उस वीर पुरुष का नाम बताइए तो।

पीर नाबालिग क्षण-भर चुपचाप सिर नीचा किए बैठे रहे। फिर एक दोस्त की तरफ मुंह करके बोले—अब हम क्या कहें, तुम बता दो न बीरबल, सब कुछ तो तुमने देखा था, अब कहते क्यों नहीं?

बीरबल ने बाअदब कहा—आप ही कहिए, आपके मुंह से वे सब कारनामे हम गंगा की पवित्र गोद में बैठकर सुनने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहते हैं।

'तो सुनिए फिर, वह सब आपके इस गुलाम की कार्रवाई थी ! हमारे पास एक ही रस्सी थी ; उसीसे हमने और मोती ने मिलकर एक काण्ड रच डाला। रस्सी हम तार पर फेंकते और उसपर झूल जाते। पचासों तमाशाई हमारा साथ देते, खम्भे और तार अर्राकर टूट जाते—कचहरी से लेकर यूनिवर्सिटी तक का मैदान हम दोनों ने साफ कर डाला।'

सुनकर मैं चमत्कृत हुआ। मैंने कहा—मोती कौन ?

'वह तो अगले ही दिन गोली का शिकार हो गया ! सोचिए, बारह-तेरह बरस का वह लौंडा और उसका यह कलेजा ?'

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे गोली मेरे ही कलेजे में अभी लगी हो। दोस्त लोग तो शरारत ही के रंग में थे, परन्तु मेरे दिल में उस सीधे-साधे युवक के प्रति आदर का भाव बढ़ता जा रहा था। कौतूहल भी कम न था। मैंने कहा—आप इतमीनान से मेरे और पास आकर बैठिए और माजरा विस्तार से सुनाइए, कैसे क्या हुआ था !

एक दोस्त ने कहा—कचहरी पर तिरंगा झंडा चढ़ाने की बात कहो, यार।

'वह भी मोती ही का करिश्मा था। कचहरी के सदर दरवाज़े के लोहे के फाटक बन्द थे। भीतर मशीनगनें तैयार थीं, चारों ओर घुड़सवार फौज और पुलिस लाठियां और बन्दूकें लिए मुस्तैद थी। वरना पुल से कचहरी बाज़ार तक आदमी ही आदमी नजर आ रहे थे। किसीने ललकारकर कहा—है कोई माई का लाल, जो जान पर खेलकर इस कचहरी पर तिरंगा फहरा दे ? बस, मेरा खून खौल उठा। मैंने आगे बढ़ कहा—मैं हूं ! मैंने झण्डा लिया और एक ही छलांग में फाटक के उस पार हो गया। मगर मोती बिल्ली की तरह फाटक के नीचे से घुसकर मुझसे आगे आ खड़ा हुआ, और जब तक पुलिस आए, मैंने उसे कंधे पर खड़ा कर नल पकड़ा दिया और वह नल पर बन्दर की भांति चढ़ गया; जाकर कचहरी पर तिरंगा फहरा दिया ! पूछिए मटरू से, वहीं तो खड़ा तालियां पीट रहा था !'

मटरू ने कहा—कहता तो हूं, इन्हीं आंखों से यह सब कुछ काम मैंने देखा था, जिसके विवरण सोने की कलम से भारत की आजादी के इतिहास में लिखे जाएंगे।

पीर नाबालिग ने एक बीड़ी निकाली। मैंने झटपट सिगरेट पेश करके

कहा—सिगरेट पीजिए और सुनाइए, इसके बाद क्या हुआ ?

'उसके बाद लाठी-चार्ज हुआ। कांग्रेस के लीडरों ने कहा—भागना कोई मत, जमकर लेट आओ और लाठियां खाओ !'

'तो आप भी लेट गए ?'

'जी नहीं, मैं उन बेवकूफों में नहीं हूं जो बैठे-बैठे पिटते हैं। मेरा काम खत्म हो चुका था ; लाठी चली तो मैं वहां से भागा। फिर भी पीठ पर दो पड़ ही गईं। यह देखिए निशान, कोहनी भी उसी दिन टूट गई।'

यार लोग खिलखिलाकर हंस पड़े। परन्तु मैंने दोनों हाथों में उनकी कोहनी दबाकर कहा—खैरियत हुई दोस्त, ज्यादा चोट नहीं लगी ! आपने अच्छा किया, भाग आए।

मटरू ने कहा—अब घोड़े की लात की बात कहो।

पीर नाबालिग ने सहज शान्त स्वर में कहा—लात की क्या बात कहनी है ! सामने एक तबेला था, मैं झपटकर उसीमें घुस गया। उसमें एक घोड़ा बंधा था, मैं उसीपर जा गिरा ! उसने भी दो लातें कस दीं, बस इतनी ही तो बात है।

'इतनी नहीं यार, खाट वाली बात भी कहो !'

'एक खाट वहां पड़ी थी। मैं बाहर तो निकल ही नहीं सकता था; घुड़सवार लोगों को कुचल रहे थे और पुलिस वाले लाठी चला रहे थे। उधर घोड़ा नामाकूल लात पर लात मार रहा था। मैंने वह खाट अपने और घोड़े के बीच खड़ी कर ली। अब मारता रहे वह लात।' इतना कहकर पीर नाबालिग बेबस खिलखिलाकर हंस पड़े। यार लोग भी हंस दिए। परन्तु मैं नहीं हंस सका। मेरी आंखों में आंसू आ गए।

पीर नाबालिग ने दो कश सिगरेट के खींचकर कहा—कहिए, किया है इतना काम जयप्रकाशनारायण ने ?

मेरा इरादा बिल्कुल इस सरलहृदय वीर युवक का मजाक उड़ाने का नहीं रह गया। मैं चुपचाप उसकी ओर देखता रहा। उसने फिर कहा—

'देखिए, क्रान्तिकारियों को क्या मैं नहीं जानता ? उनके लिए मैंने क्या-क्या जोखम नहीं उठाए ? बम और पिस्तौल छिपा-छिपाकर कहां से कहां पहुंचाए ! कितना खतरा था इन कामों में, भला कहिए तो ?'

मैंने कहा—बेशक, बेशक ! आपके इन कामों का तो कोई मूल्य ही नहीं है।

'परन्तु साहब, मेरे जैसे न जाने कितने युवकों ने देश के काम में जोखिम उठाई उनमें कितने गोलियों के शिकार हुए, कितने जेलों में सड़े। उनको न कोई जानता है, न कोई उनके जुलूस निकालता है, न उन्हें थैलियां भेंट की जाती हैं, न अखबार वाले उनकी तारीफें छापते हैं। मरते-खपते हैं हम लोग, और वाहवाही लूटते हैं ये लीडर लोग ! कहिए, यह क्या अन्धेर नहीं है ?'

मैंने वास्तविक गम्भीरता से कहा—निस्सन्देह आप जैसे साहसी और वीर युवक की ओर से उदासीन होना जबर्दस्त अन्धेर है। परन्तु एक दिन आएगा, आप जैसे हज़ारों युवकों का उचित सत्कार होगा।

उन्होंने जोश में आकर कहा—हज़ारों क्यों, लाखों कहिए। परन्तु जहां इन लीडरों को बढ़-बढ़कर बातें बघारने के लिए लाखों रुपयों की थैलियां मिलती हैं और जुलूस निकाले जाते हैं, वहां हम जैसे मामूली आदमी किस कदर सब तरह बर्बाद कर दिए गए हैं, इसे इन नेताओं तक कौन जनावे ? देखिए मेरा बाग, बगीचा ज़मींदारी सभी तो नीलाम-कुर्क हो गई। ये लीडर लोग तो हमें जूते साफ करने को भी शायद नौकर न रखें ! ये आंख उठाकर तो हमारी ओर ताकते ही नहीं ! इतनी चाय-पानी, दावतें होती हैं। कभी बुलाया है हमको ?

युवक के भोलेपन पर मैं मुग्ध हो गया। बहुत रोकने पर भी हंसी आ गई। मैंने कहा—एक दिन आएगा, आपको भी बड़ी-बड़ी दावतें दी जाएंगी, अखबार वाले आपका नाम मोटे-मोटे अक्षरों में छापेंगे।

'तो आप कुछ छपाइए न ! आप तो बड़े भारी लेखक हैं, आप जो लिखकर भेज देंगे—किस अखबार वाले की मजाल है जो न छापे ?'

मैंने हंसकर कहा—लिखूंगा, ज़रूर लिखूंगा दोस्त।

'खूब बढ़िया सी कहानी बनाकर लिखिए।'

'कहानी ही बनाकर लिखूंगा।'

'मेरी फोटो आप छापनी चाहेंगे तो मैं दे दूंगा ; एक-दो मेरे पास हैं।'

'अगर ज़रूरत हुई तो मांग लूंगा।'

'वह अखबार जयप्रकाशनारायण के पास भी भेजना आप।'

'इसकी भी कोशिश करूंगा। परन्तु इस समय तो दोस्त, एक बहुत ही ज़रूरी काम करना मुनासिब है।'

'कौन सा काम ?'

'इसी वक्त आपको एक ठसकदार दावत देना बहुत ही जरूरी है।'

दोस्त लोग टोपियां उछाल-उछालकर हुर्रा-हुर्रा चिल्ला उठे। पीर नाबालिग जरा झेंपकर मुस्कराने लगे। मैंने जेब से दस रुपए का नोट निकालकर मटरू के हवाले किया। थोड़ी ही देर में गर्मागर्म कचौरियों, रसगुल्लों और मलाई पर हाथ साफ होने लगे। बातचीत के दौरान में पीर नाबालिग की बहादुरी की बहुत-बहुत तारीफ की गई। तबेले की लातों का बढ़-बढ़कर ज़िक्र हुआ।

पीर नाबालिग बहुत खुश हो गए। एकदम दोने में से चार बीड़ा पान उठाकर मुंह में ठूंसते हुए बोले—इस दावत की खबर भी अखबार में छपनी चाहिए। जितनी बड़ी-बड़ी दावतें होती हैं, सबकी खबरें अखबार में छपती हैं।

मैंने हंसकर कहा—जरूर, जरूर, मगर अखबार वालों को खबर देने कौन जाएगा ?

पीर नाबालिग एकदम खुश होकर बोले—यह मटरुवा साला वहीं कबीरचौरा ही पर तो रहता है, वहीं तो धड़ाधड़ अखबार छपता है, यही जाएगा।

मैंने कहा—मटरू भाई, तुम्हें अखबार में इस दावत की खबर लेकर जाना होगा।

'जी माफ कीजिए, इतनी भारी दावत की खबर अकेला बन्दा नहीं ढो सकता। हां, सब लोग चलें तो मुजायका नहीं।'

सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े। पीर नाबालिग ने गम्भीरता से कहा—सभी लोग चलें फिर, क्या हर्ज है !

मैंने उठकर उस सरल-तरल युवक को छाती से लगाया। अपना समूचा सिगरेट का बक्स उसके हाथ में थमाकर कहा—अभी सिगरेट पीओ दोस्त, सुबह इस मामले पर विचार करने को दोस्तों की एक चाय-पार्टी होगी, तब देखा जाएगा।

पीर नाबालिग खिलखिलाकर हंस दिए। वे बहुत खुश थे, और जब बहुत रात बीत जाने पर आज की यह दिलचस्प गोष्ठी बिखर रही थी, इसका प्रत्येक सदस्य बाग-बाग था।

# तिकड़म

एक तिकड़मबाज की तिकड़मपूर्ण हास्यास्पद चेष्टा का मनोरंजक वर्णन ।

'अजी, हुआ यह कि एक दोस्त की शादी में मुझे औरंगाबाद जाना पड़ा । छुट्टी नहीं मिलती थी, फिर भी कुछ तिकड़म भिड़ाकर बड़े साहब को झांसा-पट्टी दे छुट्टी वसूल ही ली । सच तो यों है, होनी खींच ले गई !' इतना कहकर मि० रामनाथ ने एक गहरी सांस ली, और मित्रों की ओर एक बार नैराश्यपूर्ण दृष्टि से देखकर आकाश की ओर ताकने लगे ।

मित्र-मण्डल खिलखिलाकर हंस पड़ा । 'आपको दोस्त की शादी में जाना पड़ा, माल उड़ाने पड़े, बारात का मजा लूटना पड़ा । इसके लिए आप लुहार की धोंकनी की तरह सांस खींच रहे हैं, और फर्माते हैं : होनी खींच ले गई ! भई वाह ! वह होनी हम गरीबों की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखती ।'

मि० रामनाथ एकदम गुस्से से बौखला उठे । उन्होंने झुंझलाकर हाथ की सिगरेट फेंक दी और आंखें निकालकर दोस्तों पर बरस पड़े ।

दोस्तों ने कहा—तो कहते क्यों नहीं ? तुम हो तिकड़मबाज, कहीं उलझ पड़े होगे, और चांद गरमा गई होगी, लो हमने कह दिया । पूरब के देहाती जरा बेढब होते हैं ।

रामनाथ ने कहा—अब सुनोगे भी या अपनी ही बके जाओगे ? पहले दिन ब्याह हुआ, दूसरे दिन बढ़ार हुई, तीसरे दिन बिदा । बस, उसी वक्त कयामत बर्पा हो गई !

एक दोस्त ने कहा—हम शर्त बांधते हैं, बस हजरत की आंखें लड़ गईं—और चांद पर······

रामनाथ उठकर जाने लगे । दोस्तों ने मिन्नतें करके कहा—नाराज मत हो यार, सब सुना जाओ, यहां दोस्त लोग हैं, जान पर खेल जाएंगे । लो अब सुना दो कच्चा चिट्ठा !

रामनाथ ने फिर एक सांस ली और कहना शुरू किया—कोई दस बजे का समय था। बाजे बज रहे थे, दूल्हा-दुल्हिन पलंग पर बैठे थे, औरतों ने उन्हें घेर रखा था। कोई गा रही थी, कोई बकवाद कर रही थी। एक चकल्लस मची हुई थी। इतने में एक बाला पर मेरी बदनसीब नज़र पड़ गई!

'वाह दोस्त, हमने क्या कहा था,' एक बोल उठा। दोस्तों ने कहा—ज़रूर वह सैकड़ों में एक होगी, फिर आपने कोई तीर-ऊर फेंका?

'सैकड़ों में? म्यां, लाखों में!' रामनाथ ने जोश में आकर कहा। फिर कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाईं और सिगरेट निकालकर जलाई। दोस्त लोग दम रोके बैठे थे। रामनाथ बोले—बस मैं देखता ही रह गया! वह आंख, वह नाक, वह रंग, वह कद कि क्या कहूं, किससे कहूं, कैसे कहूं, क्योंकर कहूं, तुम सब गधे हो! समझोगे क्या?

एक ने कहा—ठीक कहते हो भई! हम गधे इन बातों को समझ ही नहीं सकते। लेकिन यार, झटपट यह कह दो: कुछ इशारा किया, शेर पढ़े, बातें कीं, पुर्जा लिखा, किसी तरह अपने दिल का हाल-चाल भी उसे बताया, उसके दिल की भी जानी?

'कहता तो हूं, तुम सब गधे हो! तुम होते तो यही करते और चांद पिटाते। मैंने तिकड़म से काम लिया, तिकड़म से!'

'भई वाह, ज़रा हम सुनें वह तिकड़म!' सब दोस्त हंसी रोककर बैठ गए। रामनाथ ने एक कश सिगरेट का खींचा और कहा—यह तो मैं कह ही चुका हूं कि वह बड़ी ही खूबसूरत थी, उम्र १६-१७ साल की थी। वह वास्तव में मेरे दोस्त की साली थी और अभी क्वांरी थी।

एक दोस्त बीच ही में चिल्ला उठे, बोले—अरे यार, यह कहो, थी ही या अभी है? है तो फिर दोस्त के बन जाओ साढ़ू, और यारों को चलने दो बारात में! लो दोस्तो, होनी आपको भी औरंगाबाद खींचने वाली है!

सब दोस्तों ने उसे रोककर कहा—चुप रहो भाई! बकवाद न करो। ज़रा सुनने तो दो। हां जी, उस तिकड़म की बात कहो अब।

'वही तो कह रहा हूं। उस वक्त तो मैं जिगर पर तीर खाकर चला आया। घर आकर मैंने घर वाली का गाजियाबाद रहने का बन्दोबस्त कर दिया। पूछा तो कह दिया कि दिल्ली की आबो-हवा खराब है। मकानों के किराए ज़्यादा

हैं, चीजें महंगी हैं। नौकरों की किल्लत है, गरज़ हर तरह उसका दिल रख दिया। मगर दिल्ली भी मकान कायम रखा। दफ्तर से छुट्टी पाकर गाज़ियाबाद चला आता। कभी-कभी दिल्ली रह जाता। दिल्ली में पड़ोसियों और दोस्तों से कह दिया कि घर वाली बहुत बीमार है। परेशान हूं। डाक्टरों ने आबो-हवा बदलने को कहा है।...कुछ दिन यह धन्धा चला। और एक दिन वह मर गई!'

मित्रगण एकदम चौंक पड़े—क्या मर गई? मगर बीमारी तो महज़ बहाना ही था; फिर...

रामनाथ ने एक कश खींचकर धुंए के बादल बनाए, फिर धीरे से कहा—मतलब यह कि यहां दिल्ली में मशहूर कर दिया गया कि मर गई। बाकायदा क्रिया-कर्म हुए, तेरह ब्राह्मण आए और खा गए, पिताजी आए और रो-पीट गए। उसके भाई, बाप, मां भी सब दस्तूर कर गए।

यारों की समझ में नहीं आ रहा था कि हंसें या रोएं; यह सच कह रहा है या गप उड़ा रहा है? वे आंखें फाड़-फाड़कर रामनाथ की ओर देख रहे थे। और रामनाथ कह रहा था—इस काम से निपटकर अब ब्याह की बात चली। मैंने साफ इन्कार कर दिया। दिन में तीन-चार बार प्याज़ का टुकड़ा आंख में लगा लेता था, आंसू खूब बहते थे; आंखें सूजी रहती थीं। खाना रात को खाता था, दिन में सिर्फ चटाई पर पड़ा रहता था। बलदेव से पूछिए न, यह तो रोज़ ही आता था। बेवकूफ; यह भी मेरे साथ रोता था। बाज़ार से मिठाई ला-लाकर खिलाना चाहता, सिनेमा ले जाना चाहता, मगर मैं था कि चटाई से उठना हराम समझता था।

बलदेव ने कहा—अरे ज़ालिम! तो यह सब मेरा एक्टिंग था? यार, फिर तो किसी फिल्म में जाकर अभिनेता बनो। क्लर्की की कलम घिसने में क्या धरा है! मगर यार, गजब का एक्टिंग था।

'एक्टिंग नहीं था, वह तिकड़म थी!' रामनाथ ने गम्भीरता से कहा।

यारों ने कहा—वह भी तो सुनाओ, तिकड़म क्या थी?

'शादी की चर्चा चलती ही रही। पिताजी सिर खा रहे थे। मैं न-न कर रहा था। मगर मैंने पिताजी से दोस्त की साली की ओर इशारा कर दिया था। यह बैठे हैं हज़रत रघुनाथ, कहते क्यों नहीं? पिताजी से खूब

नमक-मिर्च लगाकर तुम्हींने तो उसकी चर्चा की थी !'

रघुनाथ ने गुर्राकर कहा—मगर मुझे क्या मालूम था कि तुम पक्के पाजी हो ! दगाबाज़; बेईमान···

'पाजी-ऊजी तुम हो ! मैं सिर्फ तिकड़मबाज़ हूं। तुम सुनते हो या मैं चला जाऊं ?'

सबने कहा—सुनाओ यार, यह तुम्हारी तिकड़म बड़ी बेढब रही।

धीर-गंम्भीर स्वर में रामनाथ कहने लगा। सिगरेट बुझ गई थी, उसे फेंक दिया—सगाई पक्की हो गई। सुनकर मेरी बांछें खिल गईं। गाज़ियाबाद अब मैं तीन-चार दिन में जाता था। घरवाली कहती-सुनती तो मैं दो-चार गालियां दफ़्तर वालों को सुना देता था : इतना काम दे रखा है कि नाक में दम हैं ! आखिर सगाई चढ़ी, लगन आई, और सब टेहले भुगते गए। बारात में इने-गिने आदमी थे, भण्डा-फोड़ होने के डर से दिल्ली से दोस्तों का बायकाट कर दिया था। दस-पांच बड़े-बूढ़े ले लिए थे। हमारे साले साहब भी बुलाए गए थे, उन्होंने लिखा था, 'छुट्टी मिल सकी तो आने की कोशिश करूंगा।' गरज ठीक समय पर बारात अली। ज़रा देर की फ़ुरसत निकालकर गाज़ियाबाद हो आया। घरवाली से कहा : एक बारात में जाना पड़ रहा है। दो-तीन दिन लगेंगे, ज़रा होशियार रहना। और फिर मैं उबटना करा, जामा पहिन, झट नौशा बन, नई सुसराल को बारात ले चल दिया !

मि० रामनाथ दिल्ली के एक बैंक में क्लर्क हैं। वे मेरे बहनोई होते हैं। मेरी छोटी बहिन उन्हें ब्याही है। रंगीली तबियत के आदमी हैं। दो महीने पहले खबर मिली थी कि बहिन का इन्तकाल हो गया, बड़ा अफसोस हुआ। मैं तब न आ सका था। पिताजी और बड़े भाई आए थे।

अब जो शादी का निमन्त्रण पहुंचा तो फिर मुझे आना ही पड़ा। टूटे रिश्ते का बहुत ख्याल रखना पड़ता है। पिताजी ने भी लिख दिया कि ज़रूर आना। मैं वक्त के वक्त ही पहुंचा। पता लगा, बारात इसी गाड़ी से जा चुकी है। लाचार मोटर से जाने का इरादा किया और लारी में बैठकर चल दिया। गाज़ियाबाद में लारी कुछ देर को रुकी। गरमी तेज़ थी, सोचा—एक गिलास शर्बत पीकर पान खा लूं। सामने ही दूकान थी। शरबत पी रहा था कि एक

लड़के ने आकर कहा—आपको बीबीजी बुला रही हैं।

मैं बड़ा अकचकाया, पूछा—कौन बीबीजी ?

उसने सामने के चिक पड़े एक दुमंज़िले बरांडे की ओर उंगली उठाई। कोई स्त्री चिक उठाकर हाथ से इशारा करके बुला रही थी। दूर होने के कारण पहचान न पाया। पास जाकर देखा तो बहिन है! पहले आंखों को धोखा हुआ। मैं पैर बढ़ाकर एक ही सांस में ऊपर चढ़ गया। बहिन ही थी। वहां हंस रही थी, और मेरी आंखों से 'धड़ाधड़' आंसू बह रहे थे।

बहिन की हंसी होंठों में रह गई। उसे घर में किसी अनिष्ट की आशंका हुई। उसने घबराकर कहा—भैया, हुआ क्या है, कहो तो? घर में सब अच्छे तो हैं ?

मैंने सिर हिलाकर कहा—सब अच्छे हैं। पर बीबी, तू तो मर गई थी !

'मैं मर गई थी? यह खूब कही! मैं तो यह खड़ी हूं। तुमसे किसने कहा ?'

मैंने आंखें पोंछी, फिर मलीं और आंखें फाड़कर बहिन को देखने लगा।

बहिन ने कहा—भैया, क्या तुम्हारा सिर फिर गया है ?

'तो तुम मरी नहीं हो ?' मैं धम से कुर्सी पर बैठ गया।

बहिन जल्दी से एक गिलास शरबत बना लाई और ज़बरदस्ती मुझे पिला दिया। फिर हंसकर कहा—अब देखो, जिन्दा हूं या नहीं ?

मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, कहा—बेशक तुम जिन्दा हो मगर…

'मगर क्या ?'

'जीजाजी कहां हैं ?'

'वे एक बारात में गए हैं।'

'यहां कब आए थे ?'

'अभी सुबह ही तो गए हैं।'

'वे यहां रोज़ आते हैं ?'

'आजकल दफ्तर में काम बहुत है, इसीसे अक्सर रात को वहीं रह जाते हैं। आजकल नौकरी का मामला ऐसा ही है भैया !'

अब मैं मामला कुछ-कुछ समझा, मैंने कहा—जीजाजी ने तो खेल अच्छा खेला। खैर देखा जाएगा, तुझे अभी मेरे साथ चलना पड़ेगा। अभी।

'कहां ?'

'घर।'

'क्यों ? क्या बात है ?'

'कुछ बात ही है, तू तैयार हो, नीचे मोटर खड़ी है।'

'लेकिन वे तो घर पर हैं नहीं !'

'तू चल तो सही !'

बस, मैं उसे ले सीधा गांव पहुंचा। बहिन को देखते ही पिताजी ने छाती से लगा लिया। मैंने कहा—पिताजी, यह सारी कारिस्तानी नई शादी करने की है। जल्दी चलो, शादी रुकवानी होगी। बस हम लोग गांव के दो-तीन आदमियों को ले बहिन को साथ कर, सीधे औरंगाबाद जा धमके !

'फिर क्या हुआ ?'

'जो होना था, वही हुआ।'

'यानी ?'

'बारात चढ़ चुकी थी। बरोठी हो रही थी, पकवान बन रहे थे। बैंड बज रहे थे। बन्दा मुस्करा रहा था। दिल धड़क रहा था कि सब गुड़-गोबर हो गया ! सालिगराम घरवाली और सुसर साहब को ले धूमधाम से जा धमके ! रंग में भंग पड़ गया। हमारे नए सुसर साहब ज़रा भलेमानुस थे। वे तो सोचते ही रहे, पर हमारे नए तीनों साले और सालिगराम चीते की तरह झपट पड़े। मोहर-वोहर तोड़ डाला। घोड़ी से उतार, जामा फाड़, लात-घूंसों से वह पूजा की कि यह देखो !' रामनाथ ने कुरता उघाड़ अपना बदन दिखा दिया। जगह-जगह नीले दाग पड़े थे। एक घूंसा आंख पर भी पड़ा था, मगर आंख फूटी नहीं, बच गई थी। यार लोग अब ज़ब्त न कर सके। बेतहाशा हंस पड़े। परन्तु रामनाथ निर्विकार रूप से सिगरेट जलाकर चुपचाप पीने लगे। बलबीर ने कहा—यह आंख पर भी शायद घूंसा लगा है, क्यों ?

'हां, छोटे साले के दस्तखत हैं। पता नहीं, हाथ था कि हथौड़ा, देहाती है साला ! अजी बानक ही बिगड़ गया। और दो घण्टे की बात थी कि जय गंगा ! फिर यही साले पैर पूजते।'

दोस्त ने कहा—खैर हुई आंख बच गई। पर यार, यह बुरा हुआ। मगर यह सब तुम्हारा ही गधापन है। तुम कहते हो कि हम गधे हैं, पर हम कहते हैं,

तुम गधे हो।

'मैं गधा क्यों हूं ?'

'इसलिए कि यारों को नहीं ले गए। यार लोग गए होते तो तुम्हारी ऐसी पूजा होना क्या मज़ाक थी ? ले-लेकर हाकीस्टिक जो टूट पड़ते तो कयामत बर्पा कर देते और लाखों में ब्याह रचाकर आते !'

'मगर यार, तुम घरवाली और पुराने साले-सुसरों को देखकर झेंप क्यों गए ? कह देते—तुम भी मुकर्रिर रहो, ये भी रहें ! विशाल-उदार हिन्दू-धर्म में सबके लिए जगह है, अंग्रेज़ों ने भी कानून में दरवाज़े-खिड़कियां छोड़ रखी हैं !'

'मैंने बहुत कहा यार, मगर साले लोगों ने अंधेर मचा दिया। समझदार तो थे नहीं, बस लगे चरनदास से पूजा करने ! एक तो देहाती, दूसरे जवान हट्टे-कट्टे, तीसरे उनका घर। लाचारी हो गई !'

दोस्तों ने मूंछें मरोड़ी और आस्तीनें चढ़ाईं—वाह यार, चलो एक बार फिर। लाखों में शादी कराएं। नहीं तो डोला उठा लाएं। भला जिसका तेल-बान चढ़ गया उसकी शादी कहीं और हो सकती है ?

रामनाथ का चेहरा सफेद हो गया। सिगरेट फेंककर उसने कहा—वह मौका अब नहीं रहा। दोनों सुसरों ने मिल-मिलाकर झगड़ा खत्म कर लिया। सुसर नम्बर दो कहने लगे—मेरी इज़्ज़त अब कैसे बचे ? इसी मंढे पर लड़की की शादी अब कैसे हो ? सुसर नम्बर एक बोले—आपकी इज्ज़त हमारी इज़्ज़त है। मेरा लड़का हाज़िर है। झट देखते-देखते पाजी साले को जामा पहिना दिया गया। घोड़ी पर चढ़ाया गया, बाजे बजने लगे। सब नेग टेहले भुगतने लगे—मुझे जैसे सब भूल ही गए !

'फिर तुमने क्या किया ? क्या भाग आए ?'

'भाग कैसे सकता था ! सुसर नम्बर एक ने एक न सुनी ; कहने लगे—तुम हमारे मान हो, जा कैसे सकते हो ?'

'भई वाह, तो तुम सालिगराम के ब्याह में दूल्हे से बराती बन गए। भई रहा खूब !'

रामनाथ बिगड़ गए। कहने लगे—तुम्हें भी यही करना पड़ता।

एक बार फिर दोस्तों में कहकहा मचा। और मि० रामनाथ ठण्डी सांस भरते, आह-ऊंह करते उठकर रफूचक्कर हुए।

# डाक्टर साहब की घड़ी

एक अद्‌भुत घड़ी की चोरी का मनोरंजक किस्सा, जिसका चोर एक प्रतिष्ठित सद्‌गृहस्थ था।

डाक्टर वेदी एम० डी० रियासत के पुराने और प्रख्यात डाक्टर हैं। अपने गत पचास वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बड़े-बड़े मार्के के इलाज किए हैं। सिर्फ अपनी ही रियासत में नहीं, रियासत से बाहर भी अनेक राजपरिवारों में उनकी वैसी ही प्रतिष्ठा और धूमधाम है। उन्होंने बहुत धन कमाया; एक से एक बढ़-कर अनूठी चीज़ें रईसों से इनामों और भेंटों में लीं। उनका ड्राइंगरूम उन चीज़ों से ठसाठस भरा हुआ है। वे फुरसत के वक्त अक्सर इसी ड्राइंगरूम में बैठकर अपने दोस्तों को उन भेंटों में पाई हुई चीजों के सम्बन्ध में एक से एक बढ़कर अद्‌भुत बातें सुनाया करते हैं। कोई-कोई बात तो बड़ी ही सनसनी-भरी, आश्चर्यजनक और अत्यन्त प्रभावशाली होती है। अब वे प्रेक्टिस नहीं करते, यों कोई पुराना प्रेमी घसीट ले जाए तो बात जुदी है। आने-जाने वालों का तो उनके यहां तांता ही लगा रहता है; क्योंकि वे मिलनसार, खुशमिज़ाज, उदार और 'नेकी कर कुएं में डाल' वाली कहावत को चरितार्थ करने वाले पुरुष हैं। उनका लम्बा-चौड़ा डीलडौल साढ़े तेरह इंच की बड़ी मूंछें, मोटी और भरी हुई भौंहें, तेज़ नुकीली नाक और मर्मभेदिनी दृष्टि असाधारण है। छोटे से बड़े तक उनका रुआब है, पर वे छोटे-बड़े सब पर प्रेम-भाव रखते हैं। वे वास्तव में एक सहृदय और दयावान् पुरुष हैं; भाग्यवान् भी कहना चाहिए। उनका जीवन सदा मज़े में कटा और अब भी मज़े में ही कट रहा है। वे सब प्रकार के शोक, सन्ताप, चिन्ता और वेदना से मुक्त आनन्दी पुरुष की भांति रहते हैं। बूढ़े भी उनके दोस्त हैं और जवान भी; बालक भी दोस्त हैं। अपने पास आते ही वे सबको निर्भय कर देते हैं; ऐसा ही उनका सरल स्वभाव है।

हां, तो मैं यह कह रहा था कि उन्होंने बड़े-बड़े मार्के के इलाज किए हैं और

बड़े-बड़े इनाम-इकराम और भेंटें प्राप्त की हैं, और इनाम और भेंटों की ये सब अनोखी चीज़ें उनके ड्राइंग-रूम में सजी हुई हैं। बड़ी-बड़ी शेरों और चीतलों की खालें, मगर के ढांचे, असाधारण लम्बे पशुओं के सींग, बहुमूल्य कालीन, अलभ्य कारीगरी की चीज़ें, दुर्लभ चित्र और भारी-भारी मूल्य की रत्नजटित अंगूठियां, पिनें और क़लमें। परन्तु इन सब में अधिक आश्चर्यजनक और बहुमूल्य वस्तु एक घड़ी है। यह घड़ी उन्हें एक इलाज के सिलसिले में नैपाल जाने पर वहां के दरबार से मिली थी। इसका आकार एक बड़े नींबू के समान है और यह नींबू के ही समान गोल है। उसमें कहीं भी घण्टे या मिनट की सुई नहीं, न अंक ही अंकित हैं। सारी घड़ी कीमती प्लाटिनम की महीन कारीगरी से कटी बूटियों से परिपूर्ण है और उसमें उज्ज्वल असल ब्रेज़ील के हीरे जड़े हैं। सिर्फ दो हीरे, जो सबसे बड़े हैं और जिनमें एक बहुत हलकी नीली आभा झलकती है, ऐसे मनोमोहक और कीमती हैं कि उन्हींसे एक छोटी-मोटी रियासत खरीद ली जाती है। उनमें जो बड़ा और तेजस्वी हीरा है उसपर उंगली की पोर का एक हलके से स्पर्श का दबाव पड़ते ही घड़ी अत्यन्त-मोहक सुरीली तान में घंटा, मिनट, सैकिंड सब बजा देती है। उस तान की गूंज समाप्त होते-होते ऐसा मालूम देता है मानो अभी-अभी यहां कोई स्वर्गीय वातावरण छाया रहा हो। दूसरे हीरे को तनिक दबा देने से दिन, तिथि, तारीख-पक्ष, मास, संवत् सब ध्वनित हो जाते हैं। यही नहीं, घड़ी में हज़ार वर्ष का कैलेण्डर भी निहित है; हज़ार वर्ष पहले और आगे के चाहे भी जिस सन् का दिन, मास और तारीख आप मालूम कर सकते हैं। ऐसी ही वह आश्चर्यजनक घड़ी है, जिसे डाक्टर साहब अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। कहते हैं—एक बार हुज़ूर आलीजाह महाराज ने पचास हज़ार रुपए इस घड़ी का डाक्टर साहब को देना चाहा था, तिसपर डाक्टर साहब ने घड़ी महाराज के चरणों में डालकर कहा था—अन्नदाता, मेरा तन, मन, धन सब आपका है, फिर घड़ी की क्या औक़ात है; पर इसे मैं बेच तो सकता ही नहीं! और महाराज हंसते हुए चले गए थे। यह घड़ी स्वीडन के एक नामी कलाकार से नैपाल के लोक-विख्यात महाराज चन्द्रशमशेर जंगबहादुर ने, जब वे विलायत गए थे, मुंहमांगा दाम देकर खरीदी थी और अपने इकलौते पुत्र के प्राण बचाने पर सन्तुष्ट होकर उन्होंने वह डाक्टर को दे डाली थी। वह घड़ी वास्तव में नैपाल के उत्तराधिकारी के प्राणों के मूल्य की थी। कमरे के बीचों-बीच बिल्लौर

की एक गोल मेज़ थी। यह मेज़ ठोस बिल्लौर की थी, उसका ढांचा ही बिल्लौर का था। सर्पाकार एक पाए के ऊपर मेज़ रक्खी थी। यह मेज़ खास इसी मकसद के लिए डाक्टर साहब ने खास लन्दन से खरीदी थी। उस मेज़ पर इटली की बनी एक अति भव्य मार्बल की स्त्री-मूर्ति थी। यह मूर्ति रोमन कला की प्रतीक-रूप थी, जिसे डाक्टर साहब ने बड़ी खोज-जांच से खरीदकर उसके हाथ में एक चतुर कारीगर से एक स्प्रिंग लगवाया था, जिसकी ऐसी व्यवस्था थी कि घड़ी हमेशा उस पुतली के उसी हाथ में रक्खी रहती थी। ठीक समय पर घड़ी के हीरे पर स्प्रिंग का दबाव पड़ता तो घड़ी में ताल-स्वर-युक्त मधुर संगीत की ध्वनि निकलती। उस समय जैसे वह प्रस्तर-मूर्ति ही मुखरित हो उठती थी। मित्रगण घड़ी का यह चमत्कार देख, जब आश्चर्य-सागर में गोते खाने लगते तो डाक्टर गर्वोन्नत नेत्रों से कभी घड़ी को और कभी मित्रों को घूर-घूरकर मन्द-मन्द मुस्कराया करते थे।

सावन का महीना था। रिमझिम वर्षा हो रही थी। ठण्डी हवा बह रही थी। काले-काले मेघ आकाश में छा रहे थे; बीच-बीच में गम्भीर गर्जन हो रहा था। चारों ओर हरियाली अपनी छटा दिखा रही थी। दिन का तीसरा प्रहर था। डाक्टर साहब अपने तीन घनिष्ठ मित्रों के साथ उसी ड्राइंगरूम में बैठे आनन्द से धीरे-धीरे वार्तालाप कर रहे थे। उन मित्रों में एक मेजर भार्गव थे, दूसरे दीवान पारख थे, और तीसरे एक नवयुवक मिस्टर चक्रवर्ती आई० सी० एस० थे। एकाएक घड़ी में से मधुर गूंज उठी। मित्र-मण्डली चकित होकर घड़ी की ओर देखने लगी। डाक्टर साहब आंखें बन्द किए सोफे पर ओढ़क कर उस मधुर स्वरलहरी को जैसे कानों से पीने लगे। जब घड़ी का संगीत बन्द हुआ तो मिस्टर चक्रवर्ती ने कपाल पर आंखें चढ़ाकर कहा—अद्भुत घड़ी है। यह आपकी डाक्टर साहब! यह तो मानो घड़ी की कुछ तारीफ ही न थी। डाक्टर ने सिर्फ मुस्करा दिया। मेजर साहब ने कहा—अद्भुत! अजी, इस घड़ी का तो एक इतिहास है! फिर उन्होंने डाक्टर की ओर मुंह करके कहा—वह सूबेदार साहब वाली घटना तो इसी घड़ी से सम्बन्ध रखती है न?

डाक्टर साहब जैसे चौंक पड़े। एक वेदना का भाव उनके होंठों पर आया और उन्होंने धीमे स्वर से कहा—जी हां, वह दुःखदायी घटना इसी घड़ी से

सम्बन्ध रखती है।

मित्र-गण चौकन्ने हो गए। मिस्टर चक्रवर्ती बोल उठे—क्या मैं इस घटना का वर्णन सुन सकता हूं?

डाक्टर ने उदास होकर कहा—जाने दीजिए मिस्टर चक्रवर्ती, उस दारुण घटना को भूल जाना ही अच्छा है, खासकर जब उसका सम्बन्ध मेरी इस परम प्यारी घड़ी से है।

परन्तु मिस्टर चक्रवर्ती नहीं माने, उन्होंने कहा—यह तो अत्यन्त कौतूहल की बात मालूम होती है। यदि कष्ट न हो तो कृपा कर अवश्य सुनाइए। यह ज़रूर कोई असाधारण घटना रही होगी, तभी उससे आप ऐसे विचलित हो गए हैं।

'असाधारण तो है ही!' कहकर कुछ देर डाक्टर चुप रहे फिर उन्होंने एक-एक करके प्रत्येक मित्र के मुख भर दृष्टि डाली। सब कोई सन्नाटा बांधे डाक्टर के मुंह की ओर देख रहे थे। सबके मुख पर से उनकी दृष्टि हटकर घड़ी पर अटक गई। वे बड़ी देर तक एकटक घड़ी को देखते रहे, फिर एक ठण्डी सांस लेकर बोले—आपका ऐसा ही आग्रह है, तो सुनिए!

धीरे-धीरे डाक्टर ने कहना शुरू किया—चौदह साल पुरानी बात है। सूबेदार कर्नल ठाकुर शार्दूलसिंह मेरे बड़े मुरब्बी और पुराने दोस्त थे। वे महाराज के रिश्तेदारों में होते थे। उनका रियासत में बड़ा नाम और दरबार में प्रतिष्ठा थी। उनकी अपनी एक अच्छी जागीर भी थी। वह देखिए, सामने जो लाल हवेली चमक रही है, वह उन्हींकी है। बड़े ठाट और रुआब के आदमी थे, अपने ठाकुरपने का उन्हें बड़ा घमण्ड था। उनके बाप-दादों ने मराठों की लड़ाई में कैसी-कैसी वीरता दिखाई थी—वे सब बड़ी दिलचस्पी से सुनाया करते थे। वे बहुत कम लोगों से मिलते थे, सिर्फ मुझीपर उनकी भारी कृपादृष्टि थी। जब भी वे अवकाश पाते, आ बैठते थे। बहुधा शिकार को साथ ले जाते थे। और हफ्ते में एक बार तो बिना उनके यहां भोजन किए जान छूटती ही न थी। उनके परिवार में मैं ही इलाज किया करता था। मैं तो मित्रता का नाता निबाहना चाहता था और उनसे कुछ नहीं लेना चाहता था, पर वे बिना दिए कभी न रहते थे। वे हमेशा मुझे अपनी औकात और मेरे मिहनताने से अधिक देते

रहे। मेरे ऊपर उन्होंने और भी बहुत अहसान किए थे, यहां तक कि रियासत में मेरी नौकरी उन्होंने लगवाई थी और महाराज आलीजाह की कृपादृष्टि भी उन्हींकी बदौलत मुझपर थी।

एक दिन सदा की भांति वे इसी बैठकखाने में मेरे पास बैठे थे। हम लोग बड़े प्रेम से धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। वास्तव में बात यह थी कि मैं उनका बहुत अदब करता था, उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था, फिर मुझपर तो उनके बहुत से अहसान थे। एकाएक मुझे जरूरी 'कॉल' आ गई। पहले तो सूबेदार साहब को छोड़कर जाना मुझे नहीं रुचा; परन्तु जब उन्होंने कहा कि कोई हर्ज नहीं, आप मरीज़ को देख आइए, मैं यहां बैठा हूं तब मैंने कहा—इसी शर्त पर जा सकता हूं कि आप जाएं नहीं। तो उन्होंने हंसकर मंज़ूर किया और पैर फैलाकर मजे में बैठ गए।

मैंने झटपट कपड़े पहने, स्टेथस्कोप हाथ में लिया और रोगी देखने चला गया। रोगी का घर दूर न था। झटपट ही उससे निपटकर चला आया। देखा तो सूबेदार साहब सोफे पर बैठे मजे से ऊंघ रहे हैं। मैंने हंसकर कहा—वाह, आपने तो अच्छी-खासी झपकी ले ली। सूबेदार भी हंसने लगे। हम लोग फिर बैठकर गपशप उड़ाने लगे।

उसी दिन पांच बजे मुझे महलों में जाना था। एकाएक मुझे यह बात याद हो आई और मैंने अभ्यास के अनुसार मेज़ पर घड़ी को टटोला। तब यह बिल्लौर मेज़ मैंने नहीं खरीदी थी, वह जो आफिस-टेबिल है, उसीपर एक जगह यह घड़ी मेरी आंखों के सामने रक्खी रहती थी। परन्तु उस समय जो देखता हूं तो घड़ी का कहीं न पता था! कलेजा धक् से हो गया। अपनी बेवकूफी पर पछताने लगा कि इतनी कीमती घड़ी ऐसी अरक्षित जगह रक्खी ही क्यों? मैं तनिक व्यस्त होकर घड़ी को ढूंढने लगा, मेरी घड़ी कितनी बहुमूल्य है, यह तो आप जानते ही हैं। सूबेदार साहब भी घबरा गए। वे भी व्यस्त होकर मेरे साथ घड़ी ढूंढने में लग गए। बीच में भांति-भांति के प्रश्न करते जाते थे। परन्तु यह निश्चय था कि थोड़ी ही देर पहले जब मैं बाहर गया था, घड़ी वहां रक्खी थी। मैंने उसे भली भांति अपनी आंखों से देखा था। पर यह बात मैं साफ-साफ सूबेदार साहब से नहीं कह सकता था, क्योंकि वे तब से अब तक यहीं बैठे थे, कहीं वे यह न समझने लगें कि हमींपर शक किया जा रहा है। खैर,

घड़ी वहां न थी, वह नहीं मिलनी थी और नहीं मिली। मैं निराश होकर धम्म से सोफे पर बैठ गया पर ऐसी बहुमूल्य घड़ी गुमा देना और सब्र कर बैठना आसान न था। भांति-भांति के कुलावे बांधने लगा। सूबेदार साहब भी पास आ बैठे और आश्चर्य तथा चिन्ता प्रकट करने लगे। उन्होंने पुलिस में भी खबर करने की सलाह दी, नौकर-चाकरों की भी छानबीन की।

परन्तु मेरा सिर्फ एक ही नौकर था। वह बहुत पुराना और विश्वासी नौकर था। गत पन्द्रह वर्षों से वह मेरे पास था, तब से एक बार भी उसने शिकायत का मौका नहीं दिया। फिर इतनी असाधारण चोरी वह करने का साहस कैसे कर सकता था! पर सूबेदार साहब उससे बराबर जिरह कर रहे थे और वह बराबर मेज़ पर उंगली टेक-टेककर कह रहा था—यहां उसने झाड़-पोंछकर घड़ी अपने हाथ से सुबह रक्खी है। मैं आंखें छत पर लगाए सोच रहा था कि घड़ी आखिर गई तो कहां गई?

एकाएक सूबेदार साहब का हाथ उनकी पगड़ी पर जा पड़ा; उसकी एक लट ढीली सी हो गई थी, वे उसीको शायद ठीक करने लगे थे। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात है, पगड़ी के छूते ही वही मधुर तान पगड़ी में से निकलने लगी! पहले तो मैं कुछ समझ ही न पाया। नौकर भी हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखने लगा। सूबेदार साहब के चेहरे पर घबराहट के चिह्न साफ दीख पड़ने लगे। क्षण-भर बाद ही नौकर ने चीते की भांति छलांग मारकर सूबेदार साहब के सिर पर से पगड़ी उतार ली और उससे घड़ी निकालकर हथेली पर रखकर कहा—यह रही हजूर आपकी घड़ी! अब आप ही इन्साफ कीजिए कि चोर कौन है? उसके चेहरे की नसें उत्साह से उमड़ आई थीं और आंखें आग बरसा रही थीं। वह जैसे सूबेदार साहब को निगल जाने के लिए मेरी आज्ञा मांग रहा था। सब माजरा मैं भी समझ गया। सूबेदार साहब का चेहरा सफेद मिट्टी की माफिक हो गया था और वे मुर्दे की भांति आंखें फाड़-फाड़कर मेरी तरफ देख रहे थे। कुछ ही क्षणों में मैं स्थिर हो गया। मैंने लपककर खूंटी से चाबुक उतारा और एकाएक पांच-सात नौकर की पीठ पर जमा दिए। घड़ी उसके हाथ से मैंने छीन ली।

इसके बाद जितना कुछ स्वर बनाया जा सकता था उतना क्रुद्ध होकर मैंने कहा—

'सुअर, इतने दिन मेरे पास रहकर तूने अभी यह नहीं सीखा कि बड़े आदमी का अदब कैसे किया जा सकता है, क्या दुनिया में मेरे ही पास घड़ी है ? सूबेदार साहब के पास वैसी पच्चीस घड़ी हो सकती हैं।'

नौकर गाली और मार खाकर चुपचाप मेरा मुंह ताकता रहा। मेरा यह व्यवहार उसके लिए सर्वथा अतर्कित था। वह एक शब्द भी नहीं बोला।

इसके बाद मैं सूबेदार साहब के पास गया। उनका चेहरा सफेद, मुर्दे के समान हो रहा था। वे आंखें फाड़-फाड़कर मेरी ओर ताक रहे थे। मैंने नम्रता से उनसे कहा—

'सूबेदार साहब, मेरे नौकर ने जो आपके साथ बेअदबी की है वह उसका कसूर नहीं है, मेरा है; परन्तु पुराने ताल्लुकात और उन कृपाओं का ख्याल करके, जो आपने हमेशा मेरे ऊपर की हैं, मैं आपसे क्षमा की आशा करता हूं। यह कहकर मैंने घड़ी उनके हाथ पर रख दी।

सूबेदार साहब ने चुपचाप घड़ी ले ली। और वे यन्त्रचालित से उठकर चुपचाप ही अपने घर को चल दिए। मैं द्वार तक उनके पीछे दौड़ा, परन्तु उन्होंने फिर मेरी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा।

मेरा मन कैसा कुछ हो गया था, कह नहीं सकता। परन्तु मुझे महल अवश्य जाना था और पांच बजने में अब देर नहीं थी। मैंने झटपट कपड़े पहने और घर से निकला। अभी मैंने गाड़ी में पैर ही किया था कि सूबेदार साहब का आदमी हांफता हुआ बदहवास-सा आया। उसने कहा—जल्दी चलिए डाक्टर साहब, सूबेदार साहब ने ज़हर खा लिया है और हालत बहुत खराब है!

मैं घबराकर सीधा उनके घर पहुंचा। एक कोहराम मचा था। भीड़ को पार करके मैं सूबेदार साहब के पलंग के पास गया। अभी वे होश में थे। मुझे देखकर टूटते स्वर में उन्होंने कहा—घड़ी मैंने आपकी चुराई थी डाक्टर साहब, परन्तु जीवन-भर में जो कुछ मैंने आपकी भलाई की थी मेरी इज़्ज़त बचाकर उसका पूरा बदला आपने चुका दिया। लीजिए मेरे हाथ से अपनी घड़ी ले जाइए। अब मैं जिन्दा नहीं रह सकता। परन्तु आप इस चोर सूबेदार को भूलिएगा नहीं और उसे माफ कर देने की कोशिश कीजिएगा।

सूबेदार साहब की आंखें उल्टी-सीधी होने लगीं। अब वास्तव में कुछ भी नहीं हो सकता था। मैंने चुपके से घड़ी जेब में डाल ली, और सबकी नज़र

बचाकर आंखें पोंछ लीं। कुछ मिनटों में ही सूबेदार ने दम तोड़ा और मैं जैसे तैसे उनके घर वालों को दम-दिलासा देकर डाक्टरी गम्भीरता बनाए अपने घ आ गया।'''

डाक्टर ने एक गहरी सांस ली और एक बार मित्रों की ओर, और फि उस घड़ी की ओर देखा। सभी मित्रों की आंखें गीली थीं और देर तक किर के मुंह से आवाज़ नहीं निकली।